जुलाई, 2023

I.S.S.N. 2457-0494

उच्चतम न्यायालय
निर्णय पत्रिका

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

संपादक-मंडल

डा. रीटा वशिष्ट,
सचिव, विधायी विभाग

श्री उदय कुमारा,
अपर सचिव, विधायी विभाग,
(विभागाध्यक्ष) वि.सा.प्र.

डा. अनुराग दीप, एसोसिएट प्रोफेसर,
भारतीय विधि संस्थान

डा. आर्येन्दु द्विवेदी,
प्राचार्य, मां वैष्णों देवी ला कालेज
फैजाबाद रोड, चिनहट, लखनऊ, उ.प्र.

श्री कुलदीप चौहान,
चेयरमैन, एस.आर.सी. ला कालेज
129, सेक्टर-1, मंगल पाण्डेय नगर,
मेरठ, उ.प्र.

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
सेवानिवृत्त प्रधान संपादक,
वि.सा.प्र.

श्री दयाल चन्द ग्रोवर,
सेवानिवृत्त उप-संपादक,
वि.सा.प्र.

श्री कमला कान्त,
प्रधान संपादक

श्री अविनाश शुक्ला,
संपादक

श्री असलम खान,
संपादक

श्री पुण्डरीक शर्मा,
संपादक

उप-संपादक : सर्वश्री महीपाल सिंह, जसवन्त सिंह, जाहन्वी शेखर शर्मा और अमर्त्य हेम विप्र पाण्डेय

ISSN 2457-0494

कीमत : **डाक-व्यय सहित**

एक प्रति : ₹ 195/-

वार्षिक : ₹ 2,100/-

© 2023 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रधान संपादक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

आई.एस.एस.एन. 2457-0494

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

जुलाई, 2023 अंक - 7

प्रधान संपादक

कमला कान्त

संपादक

अविनाश शुक्ला

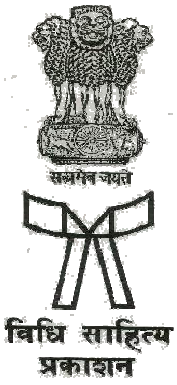

[2023] 3 उम. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन

विधायी विभाग

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

Online selling of law Patrikas/Books is available on

Website → https://bharatkosh.gov.in/product/product

विक्रय कार्यालय : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001. दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in

संपादकीय

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका प्रतिमाह आपके अवलोकनार्थ उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित प्रतिवेद्य निर्णय, जो न्यायाधीशों, अधिवक्ताओं, विधि छात्रों और अकादमीशियनों के लिए महत्वपूर्ण होते हैं, का प्रकाशन करता है । आप लोगों से प्राप्त सुझावों के आधार पर हमको अपनी पत्रिका की गुणवत्ता सुधारने और अपने कार्य को और अधिक निखारने की शक्ति प्राप्त होती है । कृपया अपने अमूल्य सुझावों से हमें अवगत कराते रहें और हमारा मार्गदर्शन करते रहें ।

इस अंक के माध्यम से हमने आपके अवलोकनार्थ माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **जी. विक्रम कुमार** बनाम **स्टेट बैंक आफ हैदराबाद और अन्य** [2023] 3 उम. नि. प. 1 वाले मामले में तारीख 2 मई, 2023 को पारित निर्णय का हिंदी पाठ प्रस्तुत किया है । इस मामले में एक भवन निर्माणकर्ता (बिल्डर) द्वारा बहुमंजिला आवासीय परियोजना के विकास के लिए बैंक से ऋण लिया गया था । ऋण की रकम के प्रतिसंदाय में विफल रहने पर प्रत्यर्थी सं. 1 बैंक ने ऋणी निर्माणकर्ता की संपत्तियों की कुर्की के लिए सूचना जारी की । ऋण वसूली अधिकरण द्वारा प्रत्यर्थी सं. 1 बैंक को सात फ्लैटों को छोड़कर शेष फ्लैटों की बिक्री की अनुज्ञा प्रदान कर दी गई । ऋण लेने वाले ने एक अन्य फ्लैट के विक्रय के लिए ऋण वसूली अधिकरण और प्रत्यर्थी सं. 1 बैंक को सूचित किए बिना विक्रय करार कर लिया । प्रत्यर्थी सं. 1 बैंक ने इस फ्लैट समेत ऋण लेने वाले की संपत्तियों की ई-नीलामी की सूचना जारी की । ऋण लेने वाले ने ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष बैंक की कार्यवाहियों पर रोक लगाए जाने हेतु आवेदन फाइल किया । आवेदन खारिज कर दिया गया और अपीलार्थी को उक्त फ्लैट का सफल बोलीदाता घोषित कर दिया गया । प्रत्यर्थी संख्या 1 बैंक द्वारा उक्त फ्लैट के बाबत ई-नीलामी की सूचना को उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई । उच्च न्यायालय ने उक्त फ्लैट के संबंध में नीलामी पर रोक लगा दी । इसके साथ ही अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी संख्या 1 बैंक के पक्ष में विक्रय को अपास्त किए जाने के

प्रयोजनार्थ उच्च न्यायालय के समक्ष आवेदन प्रस्तुत किया । उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी के आवेदन को खारिज कर दिया और प्रत्यर्थी संख्या 1 बैंक की रिट याचिका को मंजूर कर लिया । तत्पश्चात् अपीलार्थी द्वारा फाइल किए गए पुनरीक्षण आवेदन को भी खारिज कर दिया गया । अपीलार्थी ने इससे व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय के समक्ष वर्तमान अपील फाइल की । माननीय उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यर्थी संख्या 1 बैंक द्वारा सरफेसी अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन की गई कार्रवाई के विरुद्ध अपीलार्थी ने ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष धारा 17 के अधीन अपील फाइल करके आवेदन प्रस्तुत करने का अनुकल्पिक उपचार उपलब्ध होने के बावजूद ई-नीलामी की सूचना को ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष चुनौती न देकर संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका फाइल की और उच्च न्यायालय द्वारा उस रिट याचिका को विचारार्थ ग्रहण किया गया, जो न्यायोचित नहीं कहा जा सकता क्योंकि यदि प्रत्यर्थी संख्या 1 बैंक द्वारा ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष अपील फाइल की गई होती तो ऋण वसूली अधिकरण द्वारा उस अपील को अपने पूर्ववर्ती आदेश को ध्यान में रखते हुए खारिज कर दिया गया होता और इसलिए प्रत्यर्थी संख्या 1 बैंक या उसके उत्तराधिकारियों को उनकी स्वयं की गलती का लाभ नहीं दिया जा सकता और अपीलार्थी को उक्त फ्लैट पर कब्जा प्रदान किया जाना उचित होगा ।

इस अंक में आपदा प्रबन्धन अधिनियम, 2005 को भी ज्ञानार्थ प्रकाशित किया जा रहा है । इस संपूर्ण अंक का परिशीलन करने के पश्चात् आपकी बहुमूल्य प्रतिक्रियाएं ईप्सित हैं ।

अविनाश शुक्ला
संपादक

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

जुलाई, 2023

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
जी. विक्रम कुमार **बनाम** स्टेट बैंक आफ हैदराबाद और अन्य	1
प्रदीप **बनाम** हरियाणा राज्य	24
मो. सिद्दीक (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि **बनाम** महंत सुरेश दास और अन्य	1
संसद् के अधिनियम	
आपदा प्रबंधन अधिनियम, 2005 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	1 – 18

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45)

– धारा 302 और 449 [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 118 और शपथ अधिनियम, 1969 की धारा 4] – हत्या और गृह-अतिचार – घटना के एकमात्र प्रत्यक्षदर्शी अप्राप्तवय साक्षी का साक्ष्य – दोषसिद्धि – घटना के प्रत्यक्षदर्शी बाल साक्षी की दशा में विचारण न्यायाधीश का यह कर्तव्य है कि वह अपनी यह राय अभिलिखित करे कि बाल साक्षी उससे किए गए प्रश्नों को समझने में समर्थ है या नहीं और सत्य बोलने के कर्तव्य को समझता है या नहीं और जहां ऐसे बाल साक्षी से पूछे गए प्रश्न दिखावाभर हों, उसके साक्ष्य की संपुष्टि के समर्थन में कोई अन्य साक्ष्य न हो, अन्य नातेदार साक्षियों के साक्ष्य और प्रत्यक्षदर्शी बाल साक्षी के साक्ष्य में विरोधाभास हो, कई महत्वपूर्ण साक्षियों की परीक्षा न कराई गई हो, वहां ऐसे बाल साक्षी को सिखाने-पढ़ाने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता और उसका परिसाक्ष्य विश्वासोत्पादक न होने के कारण उसके एकमात्र साक्ष्य के आधार पर अभियुक्त को दोषसिद्ध करना सुरक्षित नहीं होने के कारण उसे दोषमुक्त करना उचित होगा ।

प्रदीप बनाम **हरियाणा राज्य** 24

वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन तथा प्रतिभूति हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 (2002 का 54)

– धारा 13 और 17 – प्रतिभूति हित का प्रवर्तन – निर्माणकर्ता (बिल्डर) द्वारा बहु-मंजिला आवासीय परियोजना

पृष्ठ संख्या

के विकास के लिए बैंक से उधार लिया जाना – उधार का प्रतिसंदाय करने में असफल रहने पर बैंक द्वारा उधार लेने वाले की संपत्तियों को कुर्क किए जाने की सूचना जारी किया जाना – ऋण वसूली अधिकरण द्वारा बैंक को सात फ्लैटों को छोड़कर नीलामी द्वारा विक्रय करने के लिए अनुज्ञात किया जाना – उधार लेने वाले के द्वारा एक अन्य फ्लैट के विक्रय के लिए अधिकरण और बैंक को सूचित किए बिना प्रत्यर्थी सं. 1 से विक्रय करार कर लिया जाना – बैंक द्वारा प्रश्नगत फ्लैट सहित उधार लेने वाले की संपत्तियों की ई-नीलामी की सूचना जारी किया जाना – उधार लेने वाले द्वारा ऋण वसूली अधिकरण में बैंक की कार्यवाहियों पर रोक लगाए जाने के लिए आवेदन फाइल किया जाना – आवेदन खारिज कर दिया जाना – अपीलार्थी को उक्त फ्लैट के लिए सफल बोलीदाता घोषित किया जाना – प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा उक्त फ्लैट के संबंध में ई-नीलामी की सूचना को उच्च न्यायालय में रिट याचिका फाइल करके चुनौती दिया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा उक्त फ्लैट के संबंध में नीलामी पर रोक लगा दिया जाना – अपीलार्थी द्वारा प्रत्यर्थी सं. 1 के पक्ष में विक्रय को अपास्त करने के लिए उच्च न्यायालय में समावेदन किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा अपीलार्थी के समावेदन को खारिज और प्रत्यर्थी सं. 1 की रिट याचिका को मंजूर किया जाना – पुनरीक्षण आवेदन भी खारिज कर दिया जाना – उच्चतम न्यायालय में अपील – बैंक द्वारा सरफेसी अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन की गई कार्यवाही के विरुद्ध व्यथित पक्षकार को धारा 17 के अधीन ऋण वसूली अधिकरण में अपील फाइल करके समावेदन करने का आनुकल्पिक उपचार उपलब्ध होते हुए ई-नीलामी की सूचना को ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष

पृष्ठ संख्या

चुनौती न देकर सोच-समझकर संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका फाइल करना और उच्च न्यायालय द्वारा इसे ग्रहण करना न्यायोचित नहीं कहा जा सकता क्योंकि यदि प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा अधिकरण के समक्ष अपील फाइल की गई होती तो उसे अधिकरण द्वारा अपने पूर्ववर्ती आदेश को ध्यान में रखते हुए खारिज कर दिया गया होता इसलिए प्रत्यर्थी सं. 1 या उसके उत्तराधिकारियों को स्वयं उनकी गलती का फायदा नहीं दिया जा सकता और अपीलार्थी को उक्त फ्लैट पर काबिज करना उचित होगा ।

जी. विक्रम कुमार बनाम **स्टेट बैंक आफ हैदराबाद और अन्य** 1

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 142 – 'न्याय, समता और सद्विवेक' के सिद्धांतों का अवलंब – उच्चतम न्यायालय द्वारा 'पूर्ण न्याय' प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ शक्ति का प्रयोग कब और किस सीमा तक अनुज्ञेय है – सामान्य विधियों में समाविष्ट प्रतिषेध या परिसीमाएं या उपबंध किस सीमा तक 'संपूर्ण न्याय' प्रदान किए जाने की शक्ति के प्रयोग को सीमित करते हैं ।

मो. सिद्दीक (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि बनाम **महंत सुरेश दास और अन्य** 1

– अनुच्छेद 142 – न्यायिक शक्ति की परिधि और इतिहास में घटित उचित और अनुचित घटनाएं – इतिहास में प्रभुसत्ताओं/शासनों में परिवर्तन – पूर्ववर्ती प्रभुसत्ताओं/ विधिक शासनों द्वारा कारित ऐतिहासिक त्रुटियां और उनके विधिक परिणाम – सांपत्तिक अधिकारों को सम्मिलित करते हुए पूर्ववर्ती प्रभुसत्ताओं/विधिक शासनों के अंतर्गत किए गए कार्य और उन कार्यों से उद्भूत अधिकार वर्तमान

पृष्ठ संख्या

विधिक शासन की सीमा तक लागू होते हैं और उनसे विधिक परिणाम भी उद्भूत होते हैं – न्यायालय को ऐतिहासिक त्रुटियों में सुधार की शक्ति तब तक प्राप्त नहीं होती, जब तक कि यह दर्शित न कर दिया जाए कि उन ऐतिहासिक त्रुटियों के विधिक परिणामों का प्रवर्तन उत्तरोत्तर प्रभुसत्ताओं/विधिक शासनों या वर्तमान प्रभुसत्ता/विधिक शासन द्वारा किया गया ।

मो. सिद्दीक (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि बनाम **महंत सुरेश दास और अन्य** 1

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1)

– धारा 57, 81 और 37 – वर्ष 1528 से 1856-57 तक बाबरी मस्जिद में कब्जा, उपयोग या नमाज अदा किया जाना दर्शित किए जाने के प्रयोजनार्थ किसी साक्ष्य का उपलब्ध न होना – वर्ष 1528 से 1856-57 तक राम जन्मभूमि स्थल पर हिंदुओं द्वारा उपासना – यात्रावृत्तांतों, इतिहास की पुस्तकों, राजपत्रों और गज़ेटियरों में समाविष्ट कथन – ऐतिहासिक पाठ से नकारात्मक अनुमान निकाला जाना अर्थात् किसी ऐतिहासिक पाठ में किसी तथ्य पर विश्वास किए जाने या न किए जाने के कारक के रूप में किसी घटना के निदेश की अनुपस्थिति – न्यायालय को ऐसे किसी नकारात्मक अनुमान, जो ऐतिहासिक पाठ में समाविष्ट न हो, निकालते हुए सावधान रहना चाहिए – यह उपयुक्त होगा कि कतिपय अवसरों पर खामोशी को उसी स्थान पर छोड़ दिया जाए, जहां से वे संबंधित हैं अर्थात् खामोशी के संसार में ।

मो. सिद्दीक (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि बनाम **महंत सुरेश दास और अन्य** 1

– धारा 57, 81 और 37 वर्ष 1528 से 1856-57 तक बाबरी मस्जिद में कब्जा, उपयोग या नमाज अदा

पृष्ठ संख्या

किया जाना दर्शित किए जाने के प्रयोजनार्थ किसी साक्ष्य का उपलब्ध न होना – वर्ष 1528 से 1856-57 तक राम जन्मभूमि स्थल पर हिंदुओं द्वारा उपासना – ईंट की दीवार और उसके ऊपर लोहे की जाली स्थापित किया जाना – 1858 से 1873 के मध्य निहंग सिख की घटना और मस्जिद/भीतरी बरामदे के भीतर चबूतरे का निर्माण – उक्त चबूतरे को हटाए जाने के लिए मुस्लिम पक्ष द्वारा शिकायतें – चबूतरे पर मूर्तियों का रखा जाना – यह सभी तथ्य विवादित परिसर में हिंदुओं की अनुपस्थिति और उनके द्वारा उपासना के निर्वहन की पुष्टि करते हैं ।

मो. सिद्दीक (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि बनाम **महंत सुरेश दास और अन्य** 1

– धारा 110 [सपठित परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 64] – स्वामित्व और हक – कब्जाधारी हक का दावा – कब्जाधारी हक साबित किए जाने के प्रयोजनार्थ सिविल विचारण में अधिसंभाव्यताओं की प्रबलता के सबूत का स्तरमान – संघटकों का संक्षेपण – कब्जाधारी हक अनन्य और अबाधित कब्जे और उपयोग पर आधारित होना चाहिए और इस तथ्य को अधिसंभाव्यताओं की प्रबलता के आधार पर साक्ष्य द्वारा साबित किया जाना चाहिए – कब्जाधारी हक के विनिर्धारण के प्रयोजनार्थ न्यायालय को मुकदमे के पक्षों द्वारा संपूर्ण संबद्ध संपत्ति के प्रयोग की प्रकृति का विनिर्धारण करना चाहिए – न्यायालय को संपत्ति के प्रयोग की प्रकृति का विनिर्धारण करते हुए उसके प्रयोग की अवधि और सीमा के कारक पर भी विचार करना चाहिए ।

मो. सिद्दीक (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि बनाम **महंत सुरेश दास और अन्य** 1

– धारा 110 – स्वामित्व और हक – कब्जाधारी हक

पृष्ठ संख्या

– कब्जाधारी हक साबित किए जाने के प्रयोजनार्थ कब्जा और उपयोग साबित करना आवश्यक होता है ।

मो. सिद्दीक (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि बनाम **महंत सुरेश दास और अन्य** 1

– धारा 110 – आस्था और विश्वास – उपासना के प्रतीकों की उपस्थिति के साथ योजित उपासना से संबंधित कार्य – उपासना से संबंधित कार्य कब्जा या हक के प्रश्न से सुसंगत नहीं होते – उपासना के वास्तविक स्वरूप और प्रतीक कुछ भी हों, चाहे वे हिंदुओं से संबंधित पूजा, आरती या परिक्रमा इत्यादि के स्वरूप में हों या छवियों, मूर्तियों, उत्कीर्णित स्तंभों, चबूतरा इत्यादि के स्वरूप में या नमाज या अल्लाह के शिलालेख इत्यादि के स्वरूप में, वे भूमि के उपयोग के स्वरूप होते हैं और कब्जाधारी हक के प्रश्न के विनिर्धारण के प्रयोजनार्थ सुसंगत होते हैं ।

मो. सिद्दीक (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि बनाम **महंत सुरेश दास और अन्य** 1

– धारा 110 – उपधारणा – वर्तमान मामले में इस धारा के अधीन उपधारणा का अवलंब किसी भी पक्ष द्वारा लिया जा सकता था – विशेष रूप से इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि प्रश्नगत भूमि नजूल भूमि (राज्य की संपत्ति) थी, किंतु जिसमें राज्य हितबद्ध नहीं था ।

मो. सिद्दीक (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि बनाम **महंत सुरेश दास और अन्य** 1

– धारा 110, 57, 81 और 37 – संपत्ति का स्वामित्व और हक – कब्जाधारी हक – विनिर्धारण – स्वामित्व या हक के सम्बन्ध में ऐतिहासिक अभिलेखों/ दस्तावेजी साक्ष्य की अनुपस्थिति – हक के बाबत किसी अन्य मालिकाना दावे का तर्कसंगत न पाया जाना – सम्मिश्र विवादित संपत्ति, जिसे ईंट की दीवार और उसके

पृष्ठ संख्या

ऊपर लोहे की जाली स्थापित किए जाने के द्वारा भीतरी बरामदे, जिसमें तीन गुम्बदों वाला ढांचा स्थित था और बाहरी बरामदे में विभाजित तो किया गया था, किन्तु विधितः बंटवारा नहीं किया गया था – यद्यपि मुकदमे के पक्षों में से एक पक्ष द्वारा विवादित संपत्ति पर ढांचे/भवन का निर्माण किया गया था, किन्तु किसी भी पक्ष ने बंटवारे का वाद फाइल नहीं किया/बंटवारे के अनुतोष की ईप्सा नहीं की – चूंकि मुकदमे के प्रत्येक पक्ष ने सम्पूर्ण सम्मिश्र संपत्ति के हक का दावा किया, इसलिए लंबी अवधि तक, निरंतरता में और सार्वजनिक रूप से अनन्य और अबाधित कब्जे और उपयोग के परीक्षण के आधार पर सम्पूर्ण संपत्ति के कब्जाधारी हक के विनिर्धारण की ईप्सा किया जाना – अभिनिर्धारित – न्यायालय को कब्जाधारी हक के विनिर्धारण के प्रयोजनार्थ मुकदमे के पक्षों द्वारा सम्पूर्ण विवादित संपत्ति के उपयोग की प्रकृति का विनिर्धारण करना चाहिए – न्यायालय को संपत्ति के उपयोग की प्रकृति का विनिर्धारण करते हुए उसके उपयोग की अवधि और सीमा के तथ्य पर भी विचार करना चाहिए ।

मो. सिद्दीक (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि बनाम **महंत सुरेश दास और अन्य** 1

– धारा 110, 57, 81 और 37 – विवाद के एक पक्ष द्वारा निर्मित ढांचे/भवन की विद्यमानता के बावजूद सम्पूर्ण सम्मिश्र संपत्ति पर कब्जाधारी हक साबित किए जाने के प्रयोजनार्थ विभाजनकारी दीवार के निर्माण के पूर्व संपत्ति का लम्बी अवधि तक अनन्य रूप से उपयोग किए जाने और विभाजनकारी दीवार के निर्माण के पश्चात् उसके एक भाग पर लम्बी अवधि तक निरंतर और सार्वजनिक रूप से अनन्य और अबाधित कब्जा रखे जाने और उसका उपयोग किए जाने और शेष भाग का अनन्य रूप से उपयोग न किए जाने को साबित किया जाना कब पर्याप्त होगा, विशेष रूप से

पृष्ठ संख्या

तब जबकि संपत्ति के बंटवारे के लिए किसी अनुतोष की ईप्सा न की गई हो/संपत्ति के बंटवारे के लिए कोई वाद फाइल न किया गया हो ।

मो. सिद्दीक (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि बनाम **महंत सुरेश दास और अन्य** 1

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– आदेश 26, नियम 10-क, 10(2) और धारा 75 – न्यायालय द्वारा भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा प्राचीन ढांचे का उत्खनन सम्मिलित करते हुए वैज्ञानिक अन्वेषण के लिए निर्देशित किया जाना – भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की रिपोर्ट में समाविष्ट निष्कर्ष – न्यायालय द्वारा मूल्यांकन – न्यायालय की आयुक्त, जिसका सामर्थ, विश्वसनीयता, संपूर्णता और सावधानी अविवादित हैं, जैसे कि वर्तमान मामले में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की रिपोर्ट, द्वारा निकाले गए निष्कर्षों/रिपोर्ट पर अविश्वास किए जाने/निरस्त किए जाने की शक्ति और सीमा – न्यायालय द्वारा विज्ञान और कला के क्षेत्र में पुरातत्व की भूमिका को स्पष्ट किया जाना – विशेषज्ञ साक्ष्य को प्रदान किया गया महत्व उस विज्ञान की प्रकृति पर आधारित होता है, जिस पर साक्ष्य आधारित होता है – अभिनिर्धारित – पुरातात्विक निष्कर्ष व्यक्तिपरक रूप से इतने अनुमानात्मक नहीं होते कि उन्हें सत्यापन योग्य और विश्वसनीय निष्कर्ष प्रस्तुत किए जाने के प्रयोजनार्थ असमर्थ माना जाए – न्यायालय को यह निर्णीत करने की अधिकारिता प्राप्त है कि क्या निष्कर्ष, जो आयुक्त की रिपोर्ट/भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की रिपोर्ट में समाविष्ट हैं, सुसंगतता और अधिसंभाव्यताओं की प्रबलता के आधार पर सत्य और न्याय के प्रयोजन को संतुष्ट करते हैं ।

मो. सिद्दीक (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि बनाम **महंत सुरेश दास और अन्य** 1

[2023] 3 उम. नि. प. 1

जी. विक्रम कुमार

बनाम

स्टेट बैंक आफ हैदराबाद और अन्य

[2023 की सिविल अपील सं. 3152-3153]

2 मई, 2023

न्यायमूर्ति एम. आर. शाह और न्यायमूर्ति सी. टी. रविकुमार

वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन तथा प्रतिभूति हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 (2002 का 54) – धारा 13 और 17 – प्रतिभूति हित का प्रवर्तन – निर्माणकर्ता (बिल्डर) द्वारा बहु-मंजिला आवासीय परियोजना के विकास के लिए बैंक से उधार लिया जाना – उधार का प्रतिसंदाय करने में असफल रहने पर बैंक द्वारा उधार लेने वाले की संपत्तियों को कुर्क किए जाने की सूचना जारी किया जाना – ऋण वसूली अधिकरण द्वारा बैंक को सात फ्लैटों को छोड़कर नीलामी द्वारा विक्रय करने के लिए अनुज्ञात किया जाना – उधार लेने वाले के द्वारा एक अन्य फ्लैट के विक्रय के लिए अधिकरण और बैंक को सूचित किए बिना प्रत्यर्थी सं. 1 से विक्रय करार कर लिया जाना – बैंक द्वारा प्रश्नगत फ्लैट सहित उधार लेने वाले की संपत्तियों की ई-नीलामी की सूचना जारी किया जाना – उधार लेने वाले द्वारा ऋण वसूली अधिकरण में बैंक की कार्यवाहियों पर रोक लगाए जाने के लिए आवेदन फाइल किया जाना – आवेदन खारिज कर दिया जाना – अपीलार्थी को उक्त फ्लैट के लिए सफल बोलीदाता घोषित किया जाना – प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा उक्त फ्लैट के संबंध में ई-नीलामी की सूचना को उच्च न्यायालय में रिट याचिका फाइल करके चुनौती दिया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा उक्त फ्लैट के संबंध में नीलामी पर रोक लगा दिया जाना – अपीलार्थी द्वारा प्रत्यर्थी सं. 1 के पक्ष में विक्रय को अपास्त करने के लिए उच्च न्यायालय में समावेदन किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा अपीलार्थी के समावेदन को खारिज और

प्रत्यर्थी सं. 1 की रिट याचिका को मंजूर किया जाना – पुनरीक्षण आवेदन भी खारिज कर दिया जाना – उच्चतम न्यायालय में अपील – बैंक द्वारा सरफेसी अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन की गई कार्यवाही के विरुद्ध व्यथित पक्षकार को धारा 17 के अधीन ऋण वसूली अधिकरण में अपील फाइल करके समावेदन करने का आनुकल्पिक उपचार उपलब्ध होते हुए ई-नीलामी की सूचना को ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष चुनौती न देकर सोच-समझकर संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका फाइल करना और उच्च न्यायालय द्वारा इसे ग्रहण करना न्यायोचित नहीं कहा जा सकता क्योंकि यदि प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा अधिकरण के समक्ष अपील फाइल की गई होती तो उसे अधिकरण द्वारा अपने पूर्ववर्ती आदेश को ध्यान में रखते हुए खारिज कर दिया गया होता इसलिए प्रत्यर्थी सं. 1 या उसके उत्तराधिकारियों को स्वयं उनकी गलती का फायदा नहीं दिया जा सकता और अपीलार्थी को उक्त फ्लैट पर काबिज करना उचित होगा ।

इन अपीलों के तथ्य इस प्रकार हैं कि निर्माणकर्ता (बिल्डर), इस अपील में प्रत्यर्थी सं. 3, ने बहु-मंजिला आवासीय परियोजना के विकास के लिए बैंक-प्रत्यर्थी सं. 2 से उधार लिया था । प्रत्यर्थी सं. 3 (जिसे इसमें इसके पश्चात् उधार लेने वाला कहा गया है) बैंक को प्रतिभूति हित का प्रतिसंदाय करने में समर्थ नहीं रहा, इसलिए बैंक ने उधार लेने वाले के विरुद्ध वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन तथा प्रतिभूति हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'सारफेसी अधिनियम, 2012' कहा गया है) की धारा 13 के अधीन कार्यवाहियां आरंभ कीं । बैंक ने सारफेसी अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन उधार लेने वाले की संपत्तियों को कुर्क कर लिया । उधार लेने वाले ने बैंक द्वारा की गई कार्यवाही के विरुद्ध ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष आवेदन फाइल किया । ऋण वसूली अधिकरण द्वारा मामला सूचीबद्ध होने पर उधार लेने वाले को संपत्ति के आशयित क्रेताओं की सूची फाइल करने की स्वतंत्रता दी गई जिससे अधिकरण बैंक के शोध्यों का प्रतिसंदाय करने हेतु उन पर विचार करने के लिए समर्थ हो सके । ऋण वसूली अधिकरण ने आदेश पारित करके बैंक को यथा प्रस्तावित विक्रय हेतु उन फ्लैटों को छोड़कर कार्यवाही करने के लिए अनुज्ञात किया जिनकी पहचान की जाए बशर्ते शेष फ्लैट शोध्यों की वसूली के लिए पर्याप्त हों और उधार लेने वाले को बैंक को ऐसे सभी क्रेताओं का शपथपत्र पर पूरा ब्यौरा संसूचित करने का आदेश

दिया जिससे बैंक के अधिकारी उन फ्लैटों को छोड़ने के लिए समर्थ हो सके । अधिकरण ने निदेश दिया कि बैंक विक्रय की कार्यवाही कर सकता है किंतु सुनवाई की अगली तारीख तक विक्रय की पुष्टि नहीं करेगा । प्रत्यर्थी सं. 1 और उधार लेने वाले के बीच एक फ्लैट सं. 6401 के विक्रय के संबंध में एकमुश्त चालीस लाख रुपए के प्रतिफल के लिए एक सहमति-पत्र तैयार किया गया । उक्त विक्रय करार उधार लेने वाले द्वारा ऋण वसूली अधिकरण तथा बैंक को सूचित किए बिना/कोई सहमति अभिप्राप्त किए बिना किया गया था और पूर्व में उधार लेने वाले को यदि कोई अनुज्ञा दी गई थी तो वह केवल उन सात फ्लैटों के लिए अभिप्राप्त की गई थी जिनकी ऋण वसूली अधिकरण द्वारा पहले ही पहचान की गई थी । उसके पश्चात् बैंक ने उधार लेने वाले की संपत्तियों की नीलामी करने के लिए एक सार्वजनिक सूचना जारी की । प्रश्नगत संपत्ति अर्थात् फ्लैट सं. 6401 की भी नीलामी की जानी थी । उधार लेने वाले ने नीलामी सूचना के अनुसरण में बैंक की सभी कार्यवाहियों को रोक देने का निवेदन करते हुए ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष एक आवेदन फाइल किया । ऋण वसूली अधिकरण ने कार्यवाहियों को रोक देने के लिए उधार लेने वाले के द्वारा फाइल किए गए आवेदन को नामंजूर कर दिया । उसके पश्चात् बैंक द्वारा ई-नीलामी की गई जिसमें अपीलार्थी ने भी भाग लिया । अपीलार्थी को फ्लैट सं. 6401 के संबंध में सफल बोलीदाता के रूप में घोषित किया गया । तद्नुसार, उसने बोली की रकम के 25 प्रतिशत का संदाय कर दिया । उसके पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 1 ने ई-नीलामी सूचना को उस सीमा तक जहां तक इसका संबंध फ्लैट सं. 6401 से था, चुनौती देते हुए उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका फाइल की । उक्त रिट याचिका नीलामी के पूर्ण हो जाने और अपीलार्थी को सफल बोलीदाता के रूप में घोषित किए जाने के काफी पश्चात् फाइल की गई थी । प्रत्यर्थी सं. 1 ने रिट याचिका में यह प्रकटन नहीं किया कि नीलामी पहले ही की जा चुकी है । इस अपील में अपीलार्थी को भी पक्षकार नहीं बनाया गया था । उच्च न्यायालय ने ई-नीलामी की विक्रय सूचना के अधीन यथाअधिसूचित फ्लैट सं. 6401 के संबंध में नीलामी पर इस शर्त के अध्यधीन रोक लगा दी कि प्रत्यर्थी सं. 1 (मूल रिट याची) नीलामी की अधिसूचित तारीख और समय से पूर्व 25.81 लाख से अन्यून रकम का बैंक को संदाय करेगा जिसमें असफल रहने पर बैंक नीलामी की कार्यवाही करने के लिए स्वतंत्र होगा । बैंक ने अपीलार्थी

को यह उल्लेख करते हुए पत्र लिखा कि उच्च न्यायालय ने फ्लैट सं. 6401 के संबंध में नीलामी कार्यवाहियों को रोक दिया है और इस अपील में प्रत्यर्थी सं. 1 ने उच्च न्यायालय द्वारा निदेशित अनुसार बैंक को रकम का संदाय कर दिया है । इस अपील में अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका में लंबित कार्यवाहियों का पता चलने पर उक्त रिट याचिका में पक्षकार बनाए जाने के लिए आवेदन फाइल किया और प्रति-शपथपत्र फाइल किया । प्रति-शपथपत्र में विनिर्दिष्ट रूप से यह कथन किया गया कि ऋण वसूली अधिकरण ने प्रत्यर्थी सं. 1 और उधार लेने वाले के बीच निष्पादित किए गए विक्रय करार को शून्य घोषित कर दिया है और अपीलार्थी सफल नीलाम क्रेता है और प्रत्यर्थी सं. 1 ने मामले के पूर्ण और सही तथ्यों का प्रकटीकरण नहीं किया था । यह भी कहा गया कि प्रत्यर्थी सं. 1 (मूल रिट याची) को उपलब्ध अधिकार, यदि कोई है, सारफेसी अधिनियम की धारा 17 के अधीन होगा न कि उसके द्वारा फाइल की गई रिट याचिका द्वारा । बैंक ने भी रिट याचिका की खारिजी की प्राथमिक रूप से इस आधार पर ईप्सा करते हुए प्रति-शपथपत्र फाइल किया कि सारफेसी अधिनियम की धारा 17 के अधीन आनुकल्पिक उपचार उपलब्ध था । उच्च न्यायालय ने पक्षकार बनाए जाने के आवेदन को मंजूर किया । उपरोक्त के बावजूद, उच्च न्यायालय द्वारा इस अपील में प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा फाइल की गई रिट याचिका मंजूर की गई । उसके पश्चात् इस अपील में अपीलार्थी, नीलाम क्रेता ने पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया जिसे उच्च न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया । नीलाम क्रेता ने उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेशों से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपीलें फाइल की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलें मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका में जिस बात को चुनौती दी गई थी वह ई-नीलामी की सूचना थी जो बैंक द्वारा सारफेसी अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए आरंभ की गई कार्रवाई के अनुसरण में जारी की गई थी । इस प्रक्रम पर यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि ई-नीलामी तारीख 31 अगस्त, 2016 को की गई थी/आयोजित की गई थी जिसमें अपीलार्थी ने भाग लिया था और उसे एक सफल बोलीदाता घोषित किया गया था तथा उसने उसी दिन अर्थात् तारीख 31 अगस्त, 2016 को ही बोली की रकम के 25 प्रतिशत का

संदाय कर दिया था । तथापि, उसके पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 1 ने तारीख 28 जुलाई, 2016 की ई-नीलामी सूचना को चुनौती देते हुए उच्च न्यायालय के समक्ष तारीख 14 सितंबर, 2016 को अर्थात् नीलामी हो जाने के पश्चात् रिट याचिका फाइल की । यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि बैंक द्वारा सारफेसी अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन की गई किसी कार्रवाई के विरुद्ध व्यथित पक्षकार को सारफेसी अधिनियम की धारा 17 के अधीन अपील के द्वारा ऋण वसूली अधिकरण में समावेदन करने का उपचार प्राप्त है । अत: सारफेसी अधिनियम की धारा 17 के अधीन कार्यवाहियों/अपील के द्वारा उपलब्ध आनुकल्पिक कानूनी उपचार की उपलब्धता को ध्यान में रखते हुए उच्च न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ग्रहण नहीं कर सकता था जिसमें ई-नीलामी की सूचना को चुनौती दी गई थी । अत: उच्च न्यायालय ने बैंक द्वारा सारफेसी अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए जारी की गई ई-नीलामी की सूचना को चुनौती देते हुए भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका को ग्रहण करके एक बहुत ही गंभीर गलती की है । अन्यथा भी, यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि प्रत्यर्थी सं. 1-मूल रिट याची ने प्रश्नगत फ्लैट के विक्रय करार के धारक के रूप में रिट याचिका फाइल की थी । इस प्रक्रम पर यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि बैंक द्वारा सारफेसी अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन अपनाए गए उपायों के विरुद्ध उधार लेने वाले ने पहले ऋण वसूली अधिकरण, हैदराबाद के समक्ष 2012 का एस. ए. सं. 2012 फाइल किया था । ऋण वसूली अधिकरण, हैदराबाद ने तारीख 19 दिसंबर, 2016 के आदेश द्वारा उधार लेने वाले को संपत्ति के आशयित क्रेताओं की सूची फाइल करने और क्रेताओं को प्रकट करने की स्वतंत्रता दी थी जिससे कि अधिकरण बैंक के शोध्यों का प्रतिसंदाय करने के लिए उन पर विचार करने हेतु समर्थ हो सके । उसके पश्चात् तारीख 25 फरवरी, 2016 को ऋण वसूली अधिकरण ने निम्नलिखित आदेश पारित किया – "बैंक को निदेश दिया जाता है कि वह उन फ्लैटों को छोड़कर यथा प्रस्तावित विक्रय की कार्यवाही करने के लिए अग्रसर हो, जिनकी पहचान की जाए और उधार लेने वाले द्वारा तारीख 29 फरवरी, 2016 तक बैंक को सभी क्रेताओं का शपथपत्र पर पूरा ब्योरा बैंक के अधिकारियों को संसूचित किया जाए जिससे बैंक के अधिकारी उन फ्लैटों को अपवर्जित करने के

लिए समर्थ हो सके बशर्ते शेष फ्लैट शोध्यों की वसूली के लिए पर्याप्त हों । बैंक विक्रय की कार्यवाही कर सकता है किंतु सुनवाई की अगली तारीख तक विक्रय की पुष्टि नहीं करेगा ।" इस प्रक्रम पर यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि प्रश्नगत फ्लैट अर्थात् फ्लैट सं. 6401 उन सात फ्लैटों में नहीं था जिनकी उधार लेने वाले द्वारा नीलामी कार्यवाहियों से बाहर रखे जाने के लिए पहचान की गई थी । सुसंगत समय पर प्रश्नगत फ्लैट का विक्रय अधिकरण के समक्ष वर्णित सात फ्लैटों के साथ नहीं किया गया था । उसके पश्चात् 2012 के एस. ए. सं. 253 के लंबित रहने के दौरान और ऋण वसूली अधिकरण से और यहां तक कि बैंक से पूर्व अनुमोदन अभिप्राप्त किए बिना और/या सूचना दिए बिना उधार लेने वाले ने तारीख 16 जून, 2016 को प्रत्यर्थी सं. 1 के साथ विक्रय करार कर लिया । इस प्रक्रम पर, यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि उधार लेने वाले और प्रत्यर्थी सं. 1 के बीच तारीख 10 अप्रैल, 2016 के सहमति-पत्र के खंड सं. 4 में विनिर्दिष्ट रूप से यह उपबंधित था कि प्रथम पक्षकार द्वारा ऋण वसूली अधिकरण/स्टेट बैंक आफ हैदराबाद से विक्रय के लिए अनापत्ति अभिप्राप्त की जाए जिससे वे विक्रय करार की आगामी प्रक्रिया कर सकें । इस प्रकार, प्रत्यर्थी सं. 1 को सुसंगत समय पर ऋण वसूली अधिकरण में कार्यवाहियों के लंबित रहने के बारे में जानकारी थी । फिर भी प्रत्यर्थी सं. 1 ने तारीख 16 जून, 2016 को उधार लेने वाले के साथ विक्रय करार कर लिया । इस प्रक्रम पर, यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि उसके पश्चात् जब बैंक ने उधार लेने वाली की संपत्तियों की नीलामी करने के लिए तारीख 18 जुलाई, 2016 को सार्वजनिक सूचना जारी की तब नीलामी की तारीख से पूर्व तारीख 24 अगस्त, 2016 को उधार लेने वाले ने बैंक की तारीख 18 जुलाई, 2016 की नीलामी सूचना के अनुसरण में सभी कार्यवाहियों को रोक देने का निवेदन करते हुए ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष एक आवेदन फाइल किया । ऋण वसूली अधिकरण ने तारीख 24 अगस्त, 2016 के आदेश द्वारा उक्त आवेदन को यह मत व्यक्त करते हुए खारिज कर दिया कि बैंक या अधिकरण की अनुज्ञा के बिना प्रश्नगत फ्लैट का विक्रय शून्य है । तारीख 24 अगस्त, 2016 के आदेश को इसमें ऊपर उद्धृत किया गया है । इस प्रकार, फ्लैट सं. 6401 के संबंध में प्रत्यर्थी सं. 1 के पक्ष में संव्यवहार को पहले ही ऋण वसूली अधिकरण द्वारा शून्य ठहराया गया था । उसके पश्चात्, उधार लेने वाले द्वारा कोई आदेश अभिप्राप्त करने में

असफल रहने के पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 1 ने उस ई-नीलामी सूचना को चुनौती देते हुए सीधे रिट याचिका फाइल कर दी जिसके लिए उधार लेने वाला ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष कोई अनुतोष प्राप्त करने में असफल रहा था । यदि प्रत्यर्थी सं. 1 ने ई-नीलामी सूचना के विरुद्ध ऋण वसूली अधिकरण में समावेदन किया होता तो ऋण वसूली अधिकरण द्वारा तारीख 24 अगस्त, 2016 को पारित किए गए पूर्ववर्ती आदेश को ध्यान में रखते हुए उसके दावे को खारिज कर दिया गया होता । अत: प्रत्यर्थी सं. 1 ने सुविचारित रूप से ई-नीलामी सूचना को चुनौती देते हुए और वह भी तारीख 31 अगस्त, 2016 को ई-नीलामी हो जाने और अपीलार्थी के पक्ष में विक्रय की पुष्टि किए जाने के पश्चात् उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका फाइल की । पूर्वोक्त तथ्यों का उच्च न्यायालय के समक्ष उल्लेख किया गया था और इसके बावजूद उच्च न्यायालय ने रिट याचिका मंजूर की जो कतई संधार्य नहीं है । आक्षेपित आदेश द्वारा प्रत्यर्थी सं. 1 ने वह अनुतोष प्राप्त किया जो उधार लेने वाला ऋण वसूली अधिकरण से प्राप्त करने में असफल रहा था । उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया निर्णय और आदेश पूर्वोक्त आधारों पर असंधार्य है । अन्यथा भी, यह बहुत ही विवादास्पद है कि क्या सारफेसी अधिनियम की धारा 13(8) उस व्यक्ति के पक्ष में लागू होगी जो केवल विक्रय करार का धारक है या सारफेसी अधिनियम की धारा 13(8) केवल ऐसे उधार देने वाले के मामले में लागू होगी जो संपूर्ण उधार का संदाय करने के लिए तैयार और इच्छुक है । प्रस्तुत मामले में उधार लेने वाला ऋण वसूली अधिकरण से कोई अनुतोष पाने में असफल रहा था । उधार लेने वाले ने धारा 13(8) के अधीन आवेदन नहीं किया और/या इसका अवलंब नहीं लिया और संपूर्ण शोध्यों का भुगतान करने के लिए सहमत नहीं था । इसलिए भी उच्च न्यायालय ने रिट याचिका को मंजूर करके गलती की है । अन्यथा भी, यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि यह स्पष्ट नहीं है कि उच्च न्यायालय द्वारा सुनिश्चित रूप से क्या अनुतोष प्रदान किया गया है । उच्च न्यायालय ने केवल यह कहा है कि रिट याचिका मंजूर की जाती है । तथापि, यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि उच्च न्यायालय के समक्ष जो चुनौती दी गई थी वह तारीख 28 जुलाई, 2016 की ई-नीलामी की सूचना थी जो कि पहले ही 31 अगस्त, 2016 को की गई थी । अत: रिट याचिका तारीख 31 अगस्त, 2016 की ई-नीलामी करने के बहुत बाद फाइल की गई थी । उच्च

न्यायालय द्वारा कोई पारिणामिक अनुतोष प्रदान नहीं किया गया है । इसलिए भी उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया आक्षेपित निर्णय और आदेश असंधार्य है । (पैरा 8, 8.1, 8.2, 8.3 और 8.4)

अब जहां तक प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से इस दलील का संबंध है कि प्रत्यर्थी सं. 1 ने विक्रय प्रतिफल की रकम को संदत्त/जमा कर दिया था और अब प्रत्यर्थी सं. 1 की मृत्यु हो गई है और उसके उत्तराधिकारियों को प्रश्नगत फ्लैट खाली करना पड़ेगा और दूसरी ओर अपीलार्थी नीलामी विक्रय के प्रतिफल के 25 प्रतिशत के रूप में सुसंगत समय पर जमा की गई 6,45,250/- रुपए की रकम को ब्याज सहित वापस लेने का हकदार होगा, आरंभ में यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि तारीख 16 जून, 2016 के विक्रय करार के अनुसरण में प्रत्यर्थी सं. 1 और उधार लेने वाले के बीच संव्यवहार पूर्णतया अवैध था और यह संव्यवहार अधिकरण तथा बैंक की पीठ के पीछे और अधिकरण के समक्ष कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान किया गया था । अधिकरण ने तारीख 24 अगस्त, 2016 के आदेश में वास्तव में पहले ही विक्रय संव्यवहार को शून्य ठहराया था । जैसा कि पहले ही ऊपर मत व्यक्त किया गया है, यहां तक कि उस समय पर भी जब प्रत्यर्थी सं. 1 ने विक्रय करार/सहमति पत्र निष्पादित किया था, उसे ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष कार्यवाहियों के लंबित होने के बारे में जानकारी थी जो कि इसमें ऊपर निर्दिष्ट सहमति-पत्र के खंड 4 से स्पष्ट है । अत: प्रत्यर्थी सं. 1 और/या उसके उत्तराधिकारियों को उनकी स्वयं की गलती का फायदा लेने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता और एक शून्य संव्यवहार का फायदा लेने के लिए भी अनुज्ञात नहीं किया जा सकता । उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए और ऊपर उल्लिखित कारणों से, उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए आक्षेपित निर्णय और आदेश को तद्द्वारा अभिखंडित और अपास्त किया जाता है । यह निदेश दिया जाता है कि अपीलार्थी द्वारा नीलामी विक्रय के प्रतिफल का पूर्ण संदाय करने पर (पूर्व में पहले ही जमा की गई 25 प्रतिशत रकम की कटौती करने के पश्चात्) नीलामी की तारीख से रकम का वास्तव में संदाय किए जाने तक 9 प्रतिशत ब्याज के साथ आज से चार सप्ताह के भीतर संदाय किए जाने पर अपीलार्थी के पक्ष में फ्लैट सं. 6401 के संबंध में विक्रय प्रमाणपत्र जारी किया जाए । प्रत्यर्थी सं. 1/उसके उत्तराधिकारियों द्वारा पहले ही जो कुछ

रकम जमा की गई है, वह प्रत्यर्थी सं. 1 को (अब उसके उत्तराधिकारियों को) जमा करने की तारीख से वास्तव में वापस करने की तारीख तक 9 प्रतिशत ब्याज के साथ वापस की जाएगी और उसे आज से चार सप्ताह के भीतर वापस किया जाएगा । मूल प्रत्यर्थी सं. 1 के उत्तराधिकारियों को प्रश्नगत फ्लैट को खाली करने के लिए तीन माह का समय दिया जाता है और निदेश दिया जाता है कि ऊपर आदेशित अनुसार आज से तीन माह के भीतर अपीलार्थी को फ्लैट सं. 6401 का शांतिपूर्ण और खाली कब्जा सौंप दिया जाए । वर्तमान अपीलें मंजूर की जाती हैं । तथापि, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाएगा । (पैरा 8.5 और 9)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2021] 2021 एस. सी. सी. ऑनलाइन पी. एंड एच. 2733 : **पाल अलॉएज एंड मेटल इंडिया प्रा. लि. और अन्य** बनाम **इलाहाबाद बैंक और अन्य** ; 5.2

[2014] (2014) 5 एस. सी. सी. 610 : **मैथ्यू वर्गीस** बनाम **एम. अमृता कुमार** ; 5.2

[2012] 2012 एस. सी. सी. ऑनलाइन ए.पी. 205 : **मैसर्स इंडिया फिनलीज सिक्योरिटीज लि.** बनाम **प्रसाद इंडियन ओवरसीज बैंक** ; 5.2

[2007] (2007) 5 एस. सी. सी. 745 : **बी. अरविन्द कुमार** बनाम **भारत सरकार और अन्य** ; 5.2

[1977] (1977) 3 एस. सी. सी. 247 : **नारणदास कर्सनदास** बनाम **एस. ए. कामतम** । 5.2

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2023 की सिविल अपील सं. 3152-3153.

2016 की रिट याचिका सं. 31098 में तारीख 8 सितंबर, 2017 को और 2017 के पुनरीक्षण आवेदन सं. 45031 में हैदराबाद उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 8 दिसंबर, 2017 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपीलें ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री ए. सिराजुद्दीन, ज्येष्ठ अधिवक्ता, वेंकटेश्वर राव अनुमोलू, सन्नी कुमार और तन्मय अग्रवाल

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री बड्डी ए. रंगनाधन, (सुश्री) नंदिनी तोमर, ए. वी. रंगम, अनंग भट्टाचार्य, मैसर्स वेरिटास लेजिस, (सुश्री) देवाहुति तामुली और वत्सल आनंद

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एम. आर. शाह ने दिया ।

न्या. शाह – तेलंगाना और आंध्र प्रदेश राज्य के लिए हैदराबाद उच्च न्यायालय द्वारा 2016 की रिट याचिका सं. 31098 में तारीख 8 सितंबर, 2017 को पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश तथा 2016 की रिट याचिका सं. 31098 में 2017 के पुनरीक्षण आवेदन सं. 45031 में तारीख 8 दिसंबर, 2017 को पारित पश्चात्वर्ती आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर अपीलार्थी और नीलाम क्रेता ने वर्तमान अपीलें फाइल की हैं ।

2. वर्तमान अपीलों के तथ्य संक्षेप में निम्नलिखित हैं –

2.1 इस अपील में प्रत्यर्थी सं. 3 निर्माणकर्ता (बिल्डर) ने बहु-मंजिला आवासीय परियोजना के विकास के लिए प्रत्यर्थी सं. 2 बैंक से उधार लिया था । प्रत्यर्थी सं. 3 (जिसे इसमें इसके पश्चात् उधार लेने वाला कहा गया है) बैंक को प्रतिभूति हित का प्रतिसंदाय करने में समर्थ नहीं था इसलिए बैंक ने उधार लेने वाले के विरुद्ध वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन तथा प्रतिभूति हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'सारफेसी अधिनियम, 2012' कहा गया है) की धारा 13 के अधीन कार्यवाहियां आरंभ कीं । बैंक ने सारफेसी अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन उधार लेने वाले की संपत्तियों को कुर्क कर लिया । उधार लेने वाले ने बैंक द्वारा सारफेसी अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन किए गए उपायों के विरुद्ध ऋण वसूली अधिकरण, हैदराबाद के समक्ष 2012 का एस. ए. सं. 253 फाइल किया । जब ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष तारीख 19 फरवरी, 2016 को 2012 का एस. ए. सं. 253 सूचीबद्ध किया गया, तब उधार लेने वाले को संपत्ति के आशयित क्रेताओं की सूची फाइल करने और ऐसे क्रेताओं को प्रस्तुत

करने की स्वतंत्रता दी गई जिससे अधिकरण बैंक के शोध्यों का प्रतिसंदाय करने हेतु उन पर विचार करने के लिए समर्थ हो सके । ऋण वसूली अधिकरण ने तारीख 25 फरवरी, 2016 को आदेश पारित करके बैंक को यथा प्रस्तावित विक्रय हेतु कार्यवाही करने के लिए, उन फ्लैटों को छोड़कर जिनकी पहचान की जाए बशर्ते शेष फ्लैट शोध्यों की वसूली के लिए पर्याप्त हों, अनुज्ञात किया और उधार लेने वाले द्वारा तारीख 29 फरवरी, 2016 तक बैंक को ऐसे सभी क्रेताओं का शपथपत्र पर पूरा ब्योरा संसूचित करने का आदेश दिया जिससे बैंक के अधिकारी उन फ्लैटों को छोड़ने के लिए समर्थ हो सके । अधिकरण ने निदेश दिया कि बैंक विक्रय की कार्यवाही कर सकता है किंतु सुनवाई की अगली तारीख तक विक्रय की पुष्टि नहीं करेगा । इस प्रक्रम पर यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि अधिकरण द्वारा पूर्वोक्त आदेश उधार लेने वाले द्वारा किए गए इन निवेदनों को ध्यान में रखते हुए पारित किया गया था कि उसने 37 फ्लैटों में से 7 फ्लैटों का कुछ पर-व्यक्तियों को विक्रय कर दिया है जो बैंक द्वारा विक्रय किए जाने थे । प्रश्नगत फ्लैट सं. 6401 उक्त सात फ्लैटों में नहीं था ।

2.2 प्रत्यर्थी सं. 1 और उधार लेने वाले के बीच फ्लैट सं. 6401 के विक्रय के संबंध में एकमुश्त चालीस लाख रुपए के प्रतिफल के लिए तारीख 10 अप्रैल, 2016 को एक सहमति-पत्र तैयार किया गया था । यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि स्वयं सहमति-पत्र में ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष चल रही कुछ कार्यवाहियों का हवाला दिया गया था और बैंक तथा उधार लेने वाला विक्रय करार की प्रक्रिया को पूरा करने के लिए अनापत्ति अभिप्राप्त करेंगे । बैंक और उधार लेने वाले के बीच फ्लैट सं. 6401 के विक्रय के लिए तारीख 16 जून, 2016 को एक विक्रय करार निष्पादित किया गया । इस प्रक्रम पर, यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि उक्त विक्रय करार उधार लेने वाले द्वारा ऋण वसूली अधिकरण तथा बैंक को सूचित किए बिना/कोई सहमति अभिप्राप्त किए बिना किया गया था और पूर्व में उधार लेने वाले को यदि कोई अनुज्ञा दी गई थी तो वह केवल उन सात फ्लैटों के लिए अभिप्राप्त की गई थी जिनकी ऋण वसूली अधिकरण द्वारा तारीख 25 फरवरी, 2016 को पहले ही पहचान की गई थी ।

2.3 उसके पश्चात् बैंक ने तारीख 18 जुलाई, 2016 को उधार लेने वाले की संपत्तियों की नीलामी करने के लिए एक सार्वजनिक सूचना जारी की । उक्त सूचना तारीख 29 जुलाई, 2016 को समाचार पत्र में प्रकाशित की गई थी । प्रश्नगत संपत्ति अर्थात् फ्लैट सं. 6401 की भी नीलामी की जानी थी । इसे लाट सं. 1 में रखा गया था जिसके लिए ई-नीलामी तारीख 30 अगस्त, 2016 को की जानी प्रस्तावित थी ।

2.4 उधार लेने वाले ने तारीख 18 जुलाई, 2017 की नीलामी सूचना के अनुसरण में बैंक की सभी कार्यवाहियों को रोक देने का निवेदन करते हुए ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष एक आवेदन फाइल किया । ऋण वसूली अधिकरण ने तारीख 24 अगस्त, 2016 को कार्यवाहियों को रोक देने के लिए उधार लेने वाले द्वारा फाइल किए गए आवेदन को नामंजूर कर दिया । ऋण वसूली अधिकरण ने कार्यवाहियों को रोक देने के लिए आवेदन को नामंजूर करते हुए और निवेदन किए गए अनुसार रोक प्रदान करने से इनकार करते हुए निम्नलिखित मत व्यक्त किया :–

> "..... विनिश्चय के लंबित रहते हुए, इस अधिकरण ने संपत्ति का विक्रय करने का निदेश दिया था और आवेदक ने अब कुछ अन्य फ्लैटों का विक्रय किए जाने का करार किया है । यह सारफेसी कार्रवाई के साथ-साथ अधिकरण के निदेश का भी पूरी तरह से अतिक्रमण है ।
>
> 7. जैसा कि इसमें ऊपर उल्लेख किया गया है, यह भी अत्यधिक चिंता का विषय है कि आवेदक ने प्रत्यर्थी बैंक या इस अधिकरण की अनुज्ञा के बिना कुछ अन्य फ्लैटों अर्थात् फ्लैट सं. 3202, 6401, 7101, 7202 और 3201 के संबंध में पर-पक्षकार से करार किया है । अत: ऐसे किसी संव्यवहार को शून्य घोषित किया जाता है ।"

2.5 उसके पश्चात् बैंक द्वारा तारीख 31 अगस्त, 2016 को ई-नीलामी की गई जिसमें अपीलार्थी ने भी भाग लिया । अपीलार्थी को लाट सं. 1 में फ्लैट सं. 6401 के संबंध में सफल बोलीदाता के रूप में घोषित किया गया । तद्नुसार, उसने बोली की रकम अर्थात् 6,45,250/- रुपए

के 25 प्रतिशत का संदाय कर दिया । बैंक ने भी तारीख 31 अगस्त, 2016 को अपीलार्थी को एक पुष्टि रसीद जारी की ।

2.6 उसके पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 1 ने तारीख 28 जुलाई, 2016 की ई-नीलामी सूचना को उस सीमा तक जहां तक इसका संबंध फ्लैट सं. 6401 से था, चुनौती देते हुए तारीख 14 सितंबर, 2016 को उच्च न्यायालय के समक्ष 2016 की रिट याचिका सं. 31098 फाइल की । उक्त रिट याचिका नीलामी के पूर्ण हो जाने और अपीलार्थी को सफल बोलीदाता के रूप में घोषित किए जाने के काफी पश्चात् फाइल की गई थी । प्रत्यर्थी सं. 1 ने रिट याचिका में यह प्रकटन नहीं किया कि नीलामी पहले ही की जा चुकी है । इस अपील में अपीलार्थी को भी पक्षकार नहीं बनाया गया था । उच्च न्यायालय ने तारीख 15 सितंबर, 2016 के आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा ई-नीलामी की विक्रय सूचना के अधीन यथा अधिसूचित फ्लैट सं. 6401 के संबंध में नीलामी पर इस शर्त के अध्यधीन रोक लगा दी कि प्रत्यर्थी सं. 1 (मूल रिट याची) नीलामी की अधिसूचित तारीख और समय से पूर्व 25.81 लाख से अन्यून रकम का बैंक को संदाय करेगा जिसमें असफल रहने पर बैंक नीलामी की कार्यवाही करने के लिए स्वतंत्र होगा । बैंक ने अपीलार्थी को तारीख 20 सितंबर, 2016 को यह उल्लेख करते हुए पत्र लिखा कि उच्च न्यायालय ने फ्लैट सं. 6401 के संबंध में नीलामी कार्यवाहियों को रोक दिया है और इस अपील में प्रत्यर्थी सं. 1 ने उच्च न्यायालय द्वारा निर्देशानुसार बैंक को रकम का संदाय कर दिया है ।

2.7 इस अपील में अपीलार्थी ने 2016 की रिट याचिका सं. 31098 में लंबित कार्यवाहियों का पता चलने पर उक्त रिट याचिका में पक्षकार बनाए जाने के लिए आवेदन फाइल किया और प्रति-शपथपत्र फाइल किया । प्रति-शपथपत्र में विनिर्दिष्ट रूप से यह कथन किया गया कि ऋण वसूली अधिकरण ने प्रत्यर्थी सं. 1 और उधार लेने वाले के बीच निष्पादित किए गए विक्रय करार को शून्य घोषित कर दिया है और अपीलार्थी सफल नीलाम क्रेता है और प्रत्यर्थी सं. 1 ने मामले के पूर्ण और सही तथ्यों का प्रकटीकरण नहीं किया था । यह भी कहा गया कि

प्रत्यर्थी सं. 1 (मूल रिट याची) को उपलब्ध अधिकार, यदि कोई है, सारफेसी अधिनियम की धारा 17 के अधीन होगा न कि उसके द्वारा फाइल की गई रिट याचिका द्वारा । यह भी कहा गया कि प्रत्यर्थी सं. 1 ने न्यायालय को यह सूचित नहीं किया था कि जब रोक आदेश पारित किया गया था उस समय नीलामी कार्यवाहियां पहले ही समाप्त हो गई थीं । बैंक ने भी रिट याचिका की खारिजी की प्राथमिक रूप से इस आधार पर ईप्सा करते हुए प्रति-शपथपत्र फाइल किया कि सारफेसी अधिनियम की धारा 17 के अधीन आनुकल्पिक उपचार उपलब्ध था । उच्च न्यायालय ने पक्षकार बनाए जाने के आवेदन को मंजूर किया । उपरोक्त के बावजूद, उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा इस अपील में प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा फाइल की गई रिट याचिका मंजूर की । उसके पश्चात् इस अपील में अपीलार्थी, नीलाम क्रेता ने पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया जिसे उच्च न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया । इसलिए मुख्य रिट याचिका में इसे इस अपील में प्रत्यर्थी सं. 1 के पक्ष में मंजूर करते हुए और अपीलार्थी द्वारा फाइल किए गए पुनरीक्षण आवेदन को नामंजूर करते हुए उच्च न्यायालय के अंतिम विनिश्चय के विरुद्ध अपीलार्थी-सफल नीलाम क्रेता ने वर्तमान अपीलें फाइल की हैं ।

3. विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री ए. सिराजुद्दीन अपीलार्थी की ओर से हाजिर हुए । विद्वान् काउंसेल श्री बड्डी ए. रंगनाधन प्रत्यर्थी सं. 1-मूल रिट याची की ओर से हाजिर हुए और विद्वान् काउंसेल श्री अनंग भट्टाचार्या प्रत्यर्थी सं. 3 की ओर से हाजिर हुए ।

4. अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री ए. सिराजुद्दीन ने निम्नलिखित दलीलें दीं –

(i) उच्च न्यायालय ने प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा फाइल की गई रिट याचिका, जो बैंक द्वारा सारफेसी अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन की गई कार्रवाई अर्थात् ई-नीलामी सूचना के विरुद्ध फाइल की गई थी, को ग्रहण करके तात्विक रूप से गलती की है ;

(ii) प्रत्यर्थी सं. 1 को विक्रय करार धारक होने के कारण प्रश्नगत फ्लैट में किसी हक का अधिकार नहीं था और इसलिए उसके पक्ष में विक्रय करार के आधार पर ई-नीलामी सूचना को चुनौती देते हुए रिट याचिका फाइल नहीं कर सकता था ;

(iii) यदि प्रत्यर्थी सं. 1 को कोई अधिकार था भी, तो उस दशा में भी उसके पास ई-नीलामी सूचना को चुनौती देने के लिए सारफेसी अधिनियम की धारा 17 के अधीन आनुकल्पिक प्रभावकारी उपचार उपलब्ध था ;

(iv) प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से तात्विक तथ्यों को छिपाया गया था जिनका अपीलार्थी द्वारा प्रति-शपथपत्र में विनिर्दिष्ट रूप से उल्लेख किया गया था कि उस समय जब रिट याचिका फाइल की गई थी और अंतरिम अनुतोष अभिप्राप्त किया गया था तब नीलामी हो चुकी थी जिसमें अपीलार्थी को सफल बोलीदाता घोषित किया गया था ;

(v) वास्तव में ऋण वसूली अधिकरण ने तारीख 24 अगस्त, 2016 के पूर्ववर्ती आदेश में उधार लेने वाले द्वारा प्रत्यर्थी सं. 1 के पक्ष में किए गए विक्रय करार को शून्य घोषित कर दिया था क्योंकि वह ऋण वसूली अधिकरण या यहां तक कि बैंक की पूर्व अनुज्ञा के बिना किया गया था ; और

(vi) उच्च न्यायालय ने सारफेसी अधिनियम की धारा 13(8) का अवलंब लेकर तात्विक रूप से गलती की है ।

4.1 अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल द्वारा यह भी दलील दी गई कि उच्च न्यायालय ने इस तथ्य का उचित रूप से मूल्यांकन नहीं किया कि कोई विक्रय करार धारक संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 91 के अधीन किसी संपत्ति के मोचन की ईप्सा नहीं कर सकता और उसे संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 54 के अधीन नीलाम-विक्रय क्रेता के समतुल्य नहीं समझा जा सकता, इससे स्पष्ट हो जाता है कि किसी संपत्ति पर केवल विक्रय करार के द्वारा कोई हक/प्रभार सृजित नहीं होता है । यह कहा गया कि वास्तव में उच्च

न्यायालय द्वारा पारित किया गया यह आक्षेपित निर्णय कि प्रत्यर्थी सं. 1 उस विषयांतर्गत संपत्ति के मोचन की ईप्सा करने के योग्य होगा जो बैंक द्वारा कुर्क की गई थी । यह दलील दी गई कि बैंक ने उधार लेने वाले के विरुद्ध संपत्ति की कुर्की की थी और प्रत्यर्थी सं. 1 केवल विक्रय करार धारक था । यह दलील दी गई कि इसलिए आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा उच्च न्यायालय ने उस विक्रय करार के विनिर्दिष्ट पालन की डिक्री प्रदान की है जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए अनुज्ञेय नहीं है ।

4.2 अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल द्वारा यह भी दलील दी गई कि उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त करके तात्विक रूप से गलती की है कि साम्या प्रत्यर्थी सं. 1 के पक्ष में होगा क्योंकि उसने यथा निदेशित संपूर्ण रकम को जमा कर दिया है । यह दलील दी गई कि उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त करके तात्विक गलती की है कि यदि विक्रय की पुष्टि की जाती है तो प्रत्यर्थी सं. 1 को भारी कठिनाई होगी और यदि विक्रय की पुष्टि नहीं की जाती है तो अपीलार्थी को अधिक से अधिक 6,45,250/- रुपए पर ब्याज की हानि हो सकती है ।

4.3 यह भी दलील दी गई कि इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए आक्षेपित निर्णय और आदेश में इस पर कोई स्पष्टता नहीं है कि उच्च न्यायालय ने ठीक-ठीक क्या अनुतोष प्रदान किया गया है सिवाय यह मत व्यक्त करने कि रिट याचिका मंजूर की जाती है ।

5. वर्तमान अपील का विरोध करते हुए प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने जोरदार रूप से यह दलील दी कि वर्तमान मामले में सारफेसी अधिनियम की धारा 13(8) लागू होगी और इसलिए जब प्रत्यर्थी सं. 1 प्रश्नगत फ्लैट के विक्रय करार का धारक होने के कारण संपूर्ण विक्रय प्रतिफल का संदाय/जमा करने के लिए सहमत था तो ई-नीलामी सूचना को चुनौती देते हुए रिट याचिका को उच्च न्यायालय ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन ग्रहण करके कोई गलती कारित नहीं की है ।

5.1 यह दलील दी गई कि जैसे ही प्रत्यर्थी सं. 1 को पता चला कि प्रश्नगत फ्लैट, जिसको प्रत्यर्थी सं. 1 के पक्ष में विक्रय किए जाने के लिए करार किया गया था और जिसके लिए भागत: प्रतिफल का संदाय किया गया था, की नीलामी की गई है, उसने तुरंत विक्रय प्रतिफल की संपूर्ण रकम जमा करने के लिए अपनी तैयारी, जो सारफेसी अधिनियम की धारा 13(8) के अधीन अनुज्ञेय है, दर्शित करते हुए रिट याचिका फाइल की । यह दलील दी गई कि यदि उधार लेने वाला और/या संपत्ति में हितबद्ध व्यक्ति शोध्यों को चुका देने के लिए सहमत है तो सारफेसी अधिनियम की धारा 13(8) का उद्देश्य और प्रयोजन संपत्ति को नीलाम होने से बचाना है ।

5.2 यह दलील दी गई कि प्रस्तुत मामले में सुसंगत समय पर अपीलार्थी के पक्ष में कोई पूर्ण विक्रय नहीं था क्योंकि सुसंगत समय पर अपीलार्थी ने नीलाम विक्रय के प्रतिफल का केवल 25 प्रतिशत जमा किया था । यह दलील दी गई कि अनेक विनिश्चयों के अनुसार जब तक पूर्ण विक्रय प्रतिफल का संदाय नहीं किया जाता है, नीलाम क्रेता के पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित नहीं किया जाता है और/या विक्रय प्रमाणपत्र जारी नहीं किया जाता है तब तक विक्रय समाप्त नहीं होता है । यह दलील दी गई कि यदि विक्रय समाप्त नहीं होता है तो सारफेसी अधिनियम की धारा 13(8) लागू होगी और/या इसका अवलंब लिया जा सकता है । उन्होंने अपनी दलील के समर्थन में **मैथ्यू वर्गीस** बनाम **एम. अमृता कुमार**[1]; **नारणदास कर्सनदास** बनाम **एस. ए. कामतम**[2]; **बी. अरविन्द कुमार** बनाम **भारत सरकार और अन्य**[3] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चयों का अवलंब लिया । उन्होंने **पाल अलॉएज एंड मेटल इंडिया प्रा. लि. और अन्य** बनाम **इलाहाबाद बैंक और अन्य**[4] वाले मामले में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के विनिश्चय का तथा **मैसर्स इंडिया फिनलीज सिक्योरिटीज लि.** बनाम **प्रसाद इंडियन**

---

[1] (2014) 5 एस. सी. सी. 610.

[2] (1977) 3 एस. सी. सी. 247.

[3] (2007) 5 एस. सी. सी. 745.

[4] 2021 एस. सी. सी. ऑनलाइन पी. एंड एच. 2733.

ओवरसीज बैंक[1] वाले मामले में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के विनिश्चय का भी अवलंब लिया ।

5.3 प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल द्वारा यह भी दलील दी गई कि प्रत्यर्थी सं. 1 की बाद में मृत्यु हो गई और उसके उत्तराधिकारी, जिसमें उसकी विधवा भी है, लंबे समय से प्रश्नगत फ्लैट में रह रहे हैं और उन्होंने संपूर्ण विक्रय प्रतिफल को संदत्त/जमा कर दिया है और इसलिए यदि अब अपील मंजूर की जाती है तो उस दशा में उन्हें परिसर को खाली करना पड़ेगा जो कि साम्यपूर्ण नहीं होगा । अत: यह निवेदन किया गया कि वर्तमान अपील को खारिज किया जाए ।

6. बैंक की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने यद्यपि उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका का विरोध किया था किंतु यह कहा था कि जो भी विनिश्चय किया जाएगा, बैंक उसका पालन करेगा ।

7. संबंधित पक्षकारों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेलों को विस्तारपूर्वक सुना ।

8. आरंभ में, यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका में जिस बात को चुनौती दी गई थी वह ई-नीलामी की सूचना थी जो बैंक द्वारा सारफेसी अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए आरंभ की गई कार्रवाई के अनुसरण में थी । इस प्रक्रम पर यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि ई-नीलामी तारीख 31 अगस्त, 2016 को की गई थी/आयोजित की गई थी जिसमें अपीलार्थी ने भाग लिया था और उसे एक सफल बोलीदाता घोषित किया गया था तथा उसने उसी दिन अर्थात् तारीख 31 अगस्त, 2016 को ही बोली की रकम के 25 प्रतिशत का संदाय कर दिया था । तथापि, उसके पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 1 ने तारीख 28 जुलाई, 2016 की ई-नीलामी सूचना को चुनौती देते हुए उच्च न्यायालय के समक्ष तारीख 14

---

[1] 2012 एस. सी. सी. ऑनलाइन ए.पी. 205.

सितंबर, 2016 को अर्थात् नीलामी हो जाने के पश्चात् रिट याचिका फाइल की । यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि बैंक द्वारा सारफेसी अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन की गई किसी कार्रवाई के विरुद्ध व्यथित पक्षकार को सारफेसी अधिनियम की धारा 17 के अधीन अपील के द्वारा ऋण वसूली अधिकरण में समावेदन करने का उपचार प्राप्त है । अत: सारफेसी अधिनियम की धारा 17 के अधीन कार्यवाहियों/ अपील के द्वारा उपलब्ध आनुकल्पिक कानूनी उपचार की उपलब्धता को ध्यान में रखते हुए उच्च न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ग्रहण नहीं कर सकता था जिसमें ई-नीलामी की सूचना को चुनौती दी गई थी । अत: उच्च न्यायालय ने बैंक द्वारा सारफेसी अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए जारी की गई ई-नीलामी की सूचना को चुनौती देते हुए भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका को ग्रहण करके एक बहुत ही गंभीर गलती की है ।

8.1 अन्यथा भी, यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि प्रत्यर्थी सं. 1-मूल रिट याची ने प्रश्नगत फ्लैट के विक्रय करार के धारक के रूप में रिट याचिका फाइल की थी । इस प्रक्रम पर यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि बैंक द्वारा सारफेसी अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन अपनाए गए उपायों के विरुद्ध उधार लेने वाले ने पहले ऋण वसूली अधिकरण, हैदराबाद के समक्ष 2012 का एस. ए. सं. 2012 फाइल किया था । ऋण वसूली अधिकरण, हैदराबाद ने तारीख 19 दिसंबर, 2016 के आदेश द्वारा उधार लेने वाले को संपत्ति के आशयित क्रेताओं की सूची फाइल करने और क्रेताओं को प्रकट करने की स्वतंत्रता दी थी जिससे कि अधिकरण बैंक के शोध्यों का प्रतिसंदाय करने के लिए उन पर विचार करने हेतु समर्थ हो सके । उसके पश्चात् तारीख 25 फरवरी, 2016 को ऋण वसूली अधिकरण ने निम्नलिखित आदेश पारित किया :–

> "बैंक को निदेश दिया जाता है कि वह उन फ्लैटों को छोड़कर यथा प्रस्तावित विक्रय की कार्यवाही करने के लिए अग्रसर हो, जिनकी पहचान की जाए और उधार लेने वाले द्वारा तारीख 29

फरवरी, 2016 तक बैंक को सभी क्रेताओं का शपथपत्र पर पूरा ब्यौरा बैंक के अधिकारियों को संसूचित किया जाए जिससे बैंक के अधिकारी उन फ्लैटों को अपवर्जित करने के लिए समर्थ हो सके बशर्ते शेष फ्लैट शोध्यों की वसूली के लिए पर्याप्त हों । बैंक विक्रय की कार्यवाही कर सकता है किंतु सुनवाई की अगली तारीख तक विक्रय की पुष्टि नहीं करेगा ।"

8.2 इस प्रक्रम पर यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि प्रश्नगत फ्लैट अर्थात् फ्लैट सं. 6401 उन सात फ्लैटों में नहीं था जिनकी उधार लेने वाले द्वारा नीलामी कार्यवाहियों से बाहर रखे जाने के लिए पहचान की गई थी । सुसंगत समय पर प्रश्नगत फ्लैट का विक्रय अधिकरण के समक्ष वर्णित सात फ्लैटों के साथ नहीं किया गया था । उसके पश्चात् 2012 के एस. ए. सं. 253 के लंबित रहने के दौरान और ऋण वसूली अधिकरण से और यहां तक कि बैंक से पूर्व अनुमोदन अभिप्राप्त किए बिना और/या सूचना दिए बिना उधार लेने वाले ने तारीख 16 जून, 2016 को प्रत्यर्थी सं. 1 के साथ विक्रय करार कर लिया । इस प्रक्रम पर, यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि उधार लेने वाले और प्रत्यर्थी सं. 1 के बीच तारीख 10 अप्रैल, 2016 के सहमति-पत्र के खंड सं. 4 में विनिर्दिष्ट रूप से यह उपबंधित था कि प्रथम पक्षकार द्वारा ऋण वसूली अधिकरण/स्टेट बैंक आफ हैदराबाद से विक्रय के लिए अनापत्ति अभिप्राप्त की जाए जिससे वे विक्रय करार की आगामी प्रक्रिया कर सकें । इस प्रकार, प्रत्यर्थी सं. 1 को सुसंगत समय पर ऋण वसूली अधिकरण में कार्यवाहियों के लंबित रहने के बारे में जानकारी थी । फिर भी प्रत्यर्थी सं. 1 ने तारीख 16 जून, 2016 को उधार लेने वाले के साथ विक्रय करार कर लिया । इस प्रक्रम पर, यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि उसके पश्चात् जब बैंक ने उधार लेने वाले की संपत्तियों की नीलामी करने के लिए तारीख 18 जुलाई, 2016 को सार्वजनिक सूचना जारी की तब नीलामी की तारीख से पूर्व तारीख 24 अगस्त, 2016 को उधार लेने वाले ने बैंक की तारीख 18 जुलाई, 2016 की नीलामी सूचना के अनुसरण में सभी कार्यवाहियों को रोक देने का निवेदन करते हुए ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष एक आवेदन

फाइल किया । ऋण वसूली अधिकरण ने तारीख 24 अगस्त, 2016 के आदेश द्वारा उक्त आवेदन को यह मत व्यक्त करते हुए खारिज कर दिया कि बैंक या अधिकरण की अनुज्ञा के बिना प्रश्नगत फ्लैट का विक्रय शून्य है । तारीख 24 अगस्त, 2016 के आदेश को इसमें ऊपर उद्धृत किया गया है । इस प्रकार, फ्लैट सं. 6401 के संबंध में प्रत्यर्थी सं. 1 के पक्ष में संव्यवहार को पहले ही ऋण वसूली अधिकरण द्वारा शून्य ठहराया गया था । उसके पश्चात्, उधार लेने वाले द्वारा कोई आदेश अभिप्राप्त करने में असफल रहने के पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 1 ने उस ई-नीलामी सूचना को चुनौती देते हुए सीधे रिट याचिका फाइल कर दी जिसके लिए उधार लेने वाला ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष कोई अनुतोष प्राप्त करने में असफल रहा था । यदि प्रत्यर्थी सं. 1 ने ई-नीलामी सूचना के विरुद्ध ऋण वसूली अधिकरण में समावेदन किया होता तो ऋण वसूली अधिकरण द्वारा तारीख 24 अगस्त, 2016 को पारित किए गए पूर्ववर्ती आदेश को ध्यान में रखते हुए उसके दावे को खारिज कर दिया गया होता । अत: प्रत्यर्थी सं. 1 ने सुविचारित रूप से ई-नीलामी सूचना को चुनौती देते हुए और वह भी तारीख 31 अगस्त, 2016 को ई-नीलामी हो जाने और अपीलार्थी के पक्ष में विक्रय की पुष्टि किए जाने के पश्चात् उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका फाइल की । पूर्वोक्त तथ्यों का उच्च न्यायालय के समक्ष उल्लेख किया गया था और इसके बावजूद उच्च न्यायालय ने रिट याचिका मंजूर की जो कतई संधार्य नहीं है । आक्षेपित आदेश द्वारा प्रत्यर्थी सं. 1 ने वह अनुतोष प्राप्त किया जो उधार लेने वाला ऋण वसूली अधिकरण से प्राप्त करने में असफल रहा था । उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया निर्णय और आदेश पूर्वोक्त आधारों पर असंधार्य है ।

8.3 अन्यथा भी, यह बहुत ही विवादास्पद है कि क्या सारफेसी अधिनियम की धारा 13(8) उस व्यक्ति के पक्ष में लागू होगी जो केवल विक्रय करार का धारक है या सारफेसी अधिनियम की धारा 13(8) केवल ऐसे उधार देने वाले के मामले में लागू होगी जो संपूर्ण उधार का संदाय करने के लिए तैयार और इच्छुक है । प्रस्तुत मामले में उधार लेने वाला ऋण वसूली अधिकरण से कोई अनुतोष पाने में असफल रहा था । उधार

लेने वाले ने धारा 13(8) के अधीन आवेदन नहीं किया और/या इसका अवलंब नहीं लिया और संपूर्ण शोध्यों का भुगतान करने के लिए सहमत नहीं था । इसलिए भी उच्च न्यायालय ने रिट याचिका को मंजूर करके गलती की है ।

8.4 अन्यथा भी, यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि यह स्पष्ट नहीं है कि उच्च न्यायालय द्वारा सुनिश्चित रूप से क्या अनुतोष प्रदान किया गया है । उच्च न्यायालय ने केवल यह कहा है कि रिट याचिका मंजूर की जाती है । तथापि, यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि उच्च न्यायालय के समक्ष जो चुनौती दी गई थी वह तारीख 28 जुलाई, 2016 की ई-नीलामी की सूचना थी जो कि पहले ही 31 अगस्त, 2016 को की गई थी । अत: रिट याचिका तारीख 31 अगस्त, 2016 की ई-नीलामी करने के बहुत बाद फाइल की गई थी । उच्च न्यायालय द्वारा कोई पारिणामिक अनुतोष प्रदान नहीं किया गया है । इसलिए भी उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया आक्षेपित निर्णय और आदेश असंधार्य है ।

8.5 अब जहां तक प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से इस दलील का संबंध है कि प्रत्यर्थी सं. 1 ने विक्रय प्रतिफल की रकम को संदत्त/जमा कर दिया था और अब प्रत्यर्थी सं. 1 की मृत्यु हो गई है और उसके उत्तराधिकारियों को प्रश्नगत फ्लैट खाली करना पड़ेगा और दूसरी ओर अपीलार्थी नीलामी विक्रय के प्रतिफल के 25 प्रतिशत के रूप में सुसंगत समय पर जमा की गई 6,45,250/- रुपए की रकम को ब्याज सहित वापस लेने का हकदार होगा, आरंभ में यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि तारीख 16 जून, 2016 के विक्रय करार के अनुसरण में प्रत्यर्थी सं. 1 और उधार लेने वाले के बीच संव्यवहार पूर्णतया अवैध था और यह संव्यवहार अधिकरण तथा बैंक की पीठ के पीछे और अधिकरण के समक्ष कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान किया गया था । अधिकरण ने तारीख 24 अगस्त, 2016 के आदेश में वास्तव में पहले ही विक्रय संव्यवहार को शून्य ठहराया था । जैसा कि पहले ही ऊपर मत व्यक्त किया गया है, यहां तक कि उस समय पर भी जब प्रत्यर्थी सं. 1 ने

विक्रय करार/सहमति पत्र निष्पादित किया था, उसे ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष कार्यवाहियों के लंबित होने के बारे में जानकारी थी जो कि इसमें ऊपर निर्दिष्ट सहमति-पत्र के खंड 4 से स्पष्ट है । अत: प्रत्यर्थी सं. 1 और/या उसके उत्तराधिकारियों को उनकी स्वयं की गलती का फायदा लेने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता और एक शून्य संव्यवहार का फायदा लेने के लिए भी अनुज्ञात नहीं किया जा सकता ।

9. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए और ऊपर उल्लिखित कारणों से, उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए आक्षेपित निर्णय और आदेश को तद्द्वारा अभिखंडित और अपास्त किया जाता है । यह निदेश दिया जाता है कि अपीलार्थी द्वारा नीलामी विक्रय के प्रतिफल का पूर्ण संदाय करने पर (पूर्व में पहले ही जमा की गई 25 प्रतिशत रकम की कटौती करने के पश्चात्) नीलामी की तारीख से रकम का वास्तव में संदाय किए जाने तक 9 प्रतिशत ब्याज के साथ आज से चार सप्ताह के भीतर संदाय किए जाने पर अपीलार्थी के पक्ष में फ्लैट सं. 6401 के संबंध में विक्रय प्रमाणपत्र जारी किया जाए । प्रत्यर्थी सं. 1/उसके उत्तराधिकारियों द्वारा पहले ही जो कुछ रकम जमा की गई है, वह प्रत्यर्थी सं. 1 को (अब उसके उत्तराधिकारियों को) जमा करने की तारीख से वास्तव में वापस करने की तारीख तक 9 प्रतिशत ब्याज के साथ वापस की जाएगी और उसे आज से चार सप्ताह के भीतर वापस किया जाएगा । मूल प्रत्यर्थी सं. 1 के उत्तराधिकारियों को प्रश्नगत फ्लैट को खाली करने के लिए तीन माह का समय दिया जाता है और निदेश दिया जाता है कि ऊपर आदेशानुसार आज से तीन माह के भीतर अपीलार्थी को फ्लैट सं. 6401 का शांतिपूर्ण और खाली कब्जा सौंप दिया जाए । वर्तमान अपीलें मंजूर की जाती हैं । तथापि, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाएगा ।

अपीलें मंजूर की गईं ।

जस.

प्रदीप

बनाम

हरियाणा राज्य

[2012 की दांडिक अपील सं. 553]

5 जुलाई, 2023

न्यायमूर्ति अभय एस. ओका और न्यायमूर्ति राजेश बिंदल

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 और 449 [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 118 और शपथ अधिनियम, 1969 की धारा 4] – हत्या और गृह-अतिचार – घटना के एकमात्र प्रत्यक्षदर्शी अप्राप्तवय साक्षी का साक्ष्य – दोषसिद्धि – घटना के प्रत्यक्षदर्शी बाल साक्षी की दशा में विचारण न्यायाधीश का यह कर्तव्य है कि वह अपनी यह राय अभिलिखित करे कि बाल साक्षी उससे किए गए प्रश्नों को समझने में समर्थ है या नहीं और सत्य बोलने के कर्तव्य को समझता है या नहीं और जहां ऐसे बाल साक्षी से पूछे गए प्रश्न दिखावाभर हों, उसके साक्ष्य की संपुष्टि के समर्थन में कोई अन्य साक्ष्य न हो, अन्य नातेदार साक्षियों के साक्ष्य और प्रत्यक्षदर्शी बाल साक्षी के साक्ष्य में विरोधाभास हो, कई महत्वपूर्ण साक्षियों की परीक्षा न कराई गई हो, वहां ऐसे बाल साक्षी को सिखाने-पढ़ाने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता और उसका परिसाक्ष्य विश्वासोत्पादक न होने के कारण उसके एकमात्र साक्ष्य के आधार पर अभियुक्त को दोषसिद्ध करना सुरक्षित नहीं होने के कारण उसे दोषमुक्त करना उचित होगा ।

इस अपील के तथ्य इस प्रकार हैं कि मृतका और उसका सबसे छोटा पुत्र (अजय), जो सुसंगत समय पर 11 वर्ष का था, अपने मकान में सो रहे थे । अजय का बड़ा भाई शिक्षा के लिए गाजियाबाद में रह रहा था और उसका दूसरा भाई अपने मामा के पास रहने के लिए गया था । अजय का पिता एक मंदिर के महंत के रूप में कार्य कर रहा था और वह मंदिर के निकट रहता था । वह मृतका के साथ नहीं रहता था । लगभग 1.00 बजे

पूर्वाह्न में अजय ने अपनी माता की आवाज सुनी । जागने पर उसने देखा कि अभियुक्त सं. 1 और 2 उसकी माता के साथ हाथापाई कर रहे थे । अभियुक्त सं. 1 ने चाकू से मृतका के उदर और छाती पर 6 से 7 प्रहार किए । उस समय पर अपीलार्थी-अभियुक्त सं. 2 उसकी माता के हाथों को पकड़े हुए था । जब अजय ने अपनी माता को बचाने की कोशिश की, तो अभियुक्त सं. 1 ने उसी चाकू से उसे क्षतियां कारित कीं । उसके पश्चात् दोनों अभियुक्त भाग गए । वे मकान में एक खिड़की से घुसे थे और वे उसी खिड़की से वापस गए थे । अजय के अनुसार, वह डर के कारण मकान में छुप गया था । लगभग 5.00 बजे अपराह्न में जब सुरेन्द्र नामक दूधिया मकान पर आया तब अजय बाहर आया और उक्त दूधिया को बताया कि अभियुक्तों ने चाकू से उसकी माता की हत्या कर दी है । उक्त दूधिया ने घटना के बारे में अजय के चाचा को बताया जो घटनास्थल पर आया । उसके पश्चात्, अजय का पिता भी आया । क्षतिग्रस्त अजय को अस्पताल ले जाया गया जहां उसका कथन अभिलिखित किया गया । उसके कथन के आधार पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की गई । अजय ने अपनी शिकायत में कथन किया कि पूर्ववर्ती दिन को अभियुक्त उसके मकान पर आए थे और भैंस खोल दी थी । जब मृतका ने शिकायत की तो दोनों ने मृतका पर हमला करने की कोशिश की । अजय ने यह भी कथन किया कि घटना से छह से सात माह पूर्व दोनों अभियुक्त उसके परिवार के खेत में घुसे थे और उन्होंने उनके खेत की "डोल" काट दी थी । चूंकि अपीलार्थी के पिता ने क्षमा-याचना कर ली थी इसलिए शिकायत फाइल नहीं की गई थी । सेशन न्यायालय द्वारा अभियुक्तों को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302, 449 और 324 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया गया । अभियुक्तों द्वारा व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की गई जिसे उच्च न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया । अभियुक्तों में से एक अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा उच्च न्यायालय के निर्णय के विरूद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह एक सुस्थिर सिद्धांत है कि किसी बाल साक्षी के परिसाक्ष्य की संपुष्टि करना एक नियम नहीं है अपितु सावधानी और

समझदारी का एक उपाय है । अवयस्क आयु के बाल साक्षी को आसानी से सिखाने-पढ़ाने की संभावना रहती है । तथापि, केवल यह बात किसी बाल साक्षी के साक्ष्य को नामंजूर करने का आधार नहीं है । न्यायालय को बाल साक्षी के साक्ष्य की सावधानीपूर्वक संवीक्षा करनी चाहिए । न्यायालय को इस प्रश्न पर अपने विवेक का प्रयोग अवश्य करना चाहिए कि क्या बाल साक्षी को सिखाने-पढ़ाने की संभावना है । इसलिए न्यायालय द्वारा किसी बाल साक्षी के साक्ष्य की संवीक्षा सावधानीपूर्वक किया जाना अपेक्षित है । किसी अप्राप्तवय के साक्ष्य को अभिलिखित करने से पूर्व, न्यायिक अधिकारी का कर्तव्य है कि वह यह अभिनिश्चित करने की दृष्टि से अप्राप्तवय से यह आरंभिक प्रश्न पूछे कि क्या वह उससे किए गए प्रश्नों को समझ सकता है और युक्तिसंगत उत्तर देने की स्थिति में है । न्यायाधीश का अवश्य यह समाधान हो जाना चाहिए कि अप्राप्तवय प्रश्नों को समझने और उनका उत्तर देने में समर्थ है और सत्य बोलने के महत्व को समझता है । अत: न्यायाधीश, जो साक्ष्य अभिलिखित करता है, की भूमिका अति महत्वपूर्ण है । उसे यह अभिनिश्चित करने के लिए कि क्या अप्राप्तवय उससे किए गए प्रश्नों को समझने में समर्थ है और युक्तिसंगत उत्तर देने योग्य है, अप्राप्तवय से युक्तियुक्त प्रश्न पूछकर उचित आरंभिक परीक्षा करनी चाहिए । आरंभिक प्रश्नों और उत्तरों को अभिलिखित करना उचित होगा जिससे कि अपील न्यायालय विचारण न्यायालय की राय की शुद्धता पर विचार कर सके । इस मामले के तथ्यों में, अप्राप्तवय की आरंभिक परीक्षा बहुत ही दिखावाभर है । अप्राप्तवय से केवल तीन प्रश्न पूछे गए थे जिनके आधार पर विद्वान् सेशन न्यायाधीश इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि साक्षी प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देने में समर्थ है । अत: उसे शपथ दिलाई गई थी । इस न्यायालय का मत है कि विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने अपना कर्तव्य नहीं निभाया था । तो भी, इस न्यायालय ने अप्राप्तवय साक्षी अजय के साक्ष्य की सावधानीपूर्वक संवीक्षा की है । उसने मुख्य परीक्षा में कहा था कि तारीख 30 दिसंबर, 2002 की रात्रि में अभियुक्त एक खिड़की तोड़कर उसके मकान में घुसे । अपीलार्थी उसकी माता को अपने हाथों से पकड़े हुए था, जबकि अभियुक्त सं. 1 ने चाकू से उस पर हमला किया था । जब उसने अपनी माता को बचाने की कोशिश की, तो अभियुक्त सं. 1 ने उसकी पीठ पर चाकू से प्रहार

किया । उसने कथन किया कि अभियुक्तों के भाग जाने के पश्चात् वह मकान में छुप गया था और उसने दूधिया सुरेन्द्र को घटना बताई थी जो 5.00 बजे पूर्वाह्न में मकान पर आया था । मुख्य परीक्षा में उसने उनके परिवार की भूमि पर अभियुक्त सं. 1 और 2 द्वारा फसल काटने की घटना के बारे में अभिसाक्ष्य दिया था जो अपराध करने की तारीख से 6 से 7 माह पूर्व घटी थी । उसने कथन किया कि यद्यपि अभियुक्त उक्त कृत्य में संलिप्त थे किंतु कोई कार्रवाई नहीं की गई थी क्योंकि अपीलार्थी के पिता ने क्षमा-याचना कर ली थी । प्रतिपरीक्षा में जब इस साक्षी का पुलिस द्वारा अभिलिखित किए गए उसके कथन से सामना कराया गया, तो उसने स्वीकार किया कि इस घटना को उसमें अभिलिखित नहीं किया गया था । प्रतिपरीक्षा में इस साक्षी ने यह माना कि न्यायालय में मौजूद अभियुक्तों ने उसकी माता की हत्या की थी और उन्होंने शराब पी हुई थी । तथापि, उसने स्वीकार किया कि इस अभिकथन को पुलिस द्वारा अभिलिखित किए गए उसके कथन में अभिलिखित नहीं किया गया था कि अभियुक्तों ने शराब पी हुई थी । घटना अर्द्ध-रात्रि के पश्चात् घटी थी । प्रतिपरीक्षा में इस साक्षी ने कथन किया कि अभियुक्तों ने उसके मकान पर आने से पूर्व बिजली काट दी थी । उसने इस सुझाव को सही होने से इनकार किया कि अंधेरे के कारण उसने हमलावरों की शनाख्त नहीं की थी जिन्होंने उसकी माता पर हमला किया था । उसने प्रतिपरीक्षा में यह सुधार किया हुआ बयान दिया कि अभियुक्त सं. 1 ने माचिस की एक तिल्ली जलाई थी और माचिस की तिल्ली की रोशनी में उसने हमलावरों की शनाख्त की थी । यह स्वीकार करना बहुत मुश्किल है कि अभियुक्त सं. 1, जिसने मृतका के शरीर पर अपने चाकू से 6 से 7 प्रहार किए थे, मृतका पर हमला करते समय एक माचिस की तिल्ली जलाएगा । इस प्रक्रम पर, यह न्यायालय अभि. सा. 6 राजिन्द्र सिंह, अजय के चाचा के साक्ष्य का हवाला दे सकता है । उसने दावा किया कि तारीख 31 दिसंबर, 2002 को लगभग 5.00 बजे पूर्वाह्न में जब वह पशुओं के बाड़े में गया हुआ था, तब उसने दूधिया गोलू से सुना था कि सतपाल की पत्नी की हत्या कर दी गई है । उसने दावा किया कि वह दौड़ कर मृतका के मकान पर आया । चूंकि अभि. सा. 1 अजय ने दरवाजा नहीं खोला, इसलिए वह दीवार फांदकर मकान में घुसा । अभि. सा. 1 अजय ने कथन किया है कि

अभि. सा. 6 दीवार फांदकर नहीं घुसा था क्योंकि उसने अभि. सा. 6 को अंदर आने के लिए दरवाजा खोल दिया था । तथापि, अभि. सा. 6 ने दावा किया है कि पुलिस को सूचना उसके भाई सतपाल (मृतका के पति) के पहुंचने के पश्चात् ही दी गई थी । अभि. सा. 6 एक प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है । अभियोजन के पक्षकथन के अनुसार, 5.00 बजे पूर्वाह्न तक अभि. सा. 1 अजय अपने घर में छिपा रहा था और केवल जब दूधिया गोलू/सुरेन्द्र 5.00 बजे पूर्वाह्न में आया, तब उसने उस दूधिया को घटना के बारे में बताया था । वास्तव में, अभि. सा. 6 ने भी यह कथन किया है कि उसे घटना के बारे में उक्त दूधिया से पता चला था । अभियोजन पक्ष ने यह स्पष्ट नहीं किया है कि दूधिया की एक साक्षी के रूप में क्यों परीक्षा नहीं की गई थी, यद्यपि वह उपलब्ध था । वह एक अति महत्वपूर्ण साक्षी था और पहला व्यक्ति था जिसको अभि. सा. 1 अजय ने वह सब बताया था जो उसने अभिकथित रूप से देखा था । दूधिया के आने तक वहां कोई नहीं था जो अजय को सिखा-पढ़ा सकता था । अत: इस साक्षी ने दूधिया को क्या बताया था, वह सिखाने-पढ़ाने के अभिकथन के संदर्भ में महत्वपूर्ण हो सकता था । वह एक उपलब्ध महत्वपूर्ण साक्षी था जिसकी परीक्षा से इस साक्षी के सिखाने-पढ़ाने की संभाव्यता को नकारा जा सकता था क्योंकि घटना के पश्चात् इस अप्राप्तवय साक्षी से मिलने वाला वह पहला व्यक्ति था । उसके पश्चात्, अप्राप्तवय अपने चाचा (अभि. सा. 6) और अपने पिता के साथ था और अभियोजन के पक्षकथन के अनुसार, अजय के परिवार और अभियुक्तों के बीच संपत्ति को लेकर कुछ विवाद था । उसका कथन अस्पताल में उसके पिता की मौजूदगी में अभिलिखित किया गया था । अभि. सा. 6 ने प्रतिपरीक्षा में कहा था कि दूधिया उस समय न्यायालय के बाहर मौजूद था जब उसका साक्ष्य अभिलिखित किया गया था । उसका साक्ष्य तारीख 22 दिसंबर, 2003 को अभिलिखित किया गया था । उसी दिन विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने लोक अभियोजक का यह अभिकथन अभिलिखित किया था कि वह अनावश्यक होने के कारण सतपाल की परीक्षा नहीं करा रहा है और वह गोलू (दूधिया) को छोड़ रहा है क्योंकि उसने उसे अपने पक्ष में कर लिया है । यहां तक कि अपीलार्थी का पिता भी एक महत्वपूर्ण साक्षी था । यह ऐसा मामला है जहां दूधिया और अपीलार्थी के पिता की परीक्षा न करने के लिए अभियोजन पक्ष

के विरुद्ध एक प्रतिकूल निष्कर्ष निकालना होगा । (पैरा 8, 9, 10, 11, 12, 13 और 14)

एक अन्य परिस्थिति है जो अपीलार्थी के संबंध में सुसंगत है । अभियोजन पक्ष के अनुसार, उस मकान के निकट जहां घटना घटी थी, अभियुक्तों के जूतों/पादुकाओं के चिह्न थे । अभियोजन पक्ष ने अभियोजन 6 द्वारा दिए गए साक्ष्य के अनुसार पैरों के चिह्न उठाए थे । अभि. सा. 6 की मौजूदगी में दोनों अभियुक्तों की पादुका/जूते अभिरक्षा में लिए गए थे । किंतु अभियोजन पक्ष द्वारा ली गई छाप के सांचे का वर्तमान अपीलार्थी के जूतों से मेल नहीं खाया था । दूधिया की परीक्षा न कराने के अतिरिक्त, अभि. सा. 11 मेहर सिंह, अन्वेषण अधिकारी ने अजय के बड़े भाइयों के कथनों को अभिलिखित करके यह सत्यापन करने के लिए अन्वेषण नहीं किया था कि क्या वे घटना की तारीख को मकान से दूर थे । अभि. सा. 1 अजय के साक्ष्य की गहराई से संवीक्षा करने के पश्चात् और जो हमने पहले ही मत व्यक्त किया है उस पर विचार करते हुए, इस साक्षी को सिखाने-पढ़ाने की संभाव्यता से इनकार नहीं किया जा सकता । अभियोजन के पक्षकथन में अन्य कमियों के अतिरिक्त, जो ऊपर बताई गई हैं, अभि. सा. 1 अजय के परिसाक्ष्य का समर्थन या संपुष्टि करने के लिए कुछ नहीं है । इस मामले के तथ्यों में, केवल अभि. सा. 1 अजय के परिसाक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि करना सुरक्षित नहीं होगा जिससे विश्वास प्रेरित नहीं होता है । (पैरा 15 और 16)

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2012 की दांडिक अपील सं. 553.

2005 की दांडिक अपील सं. 227-डीपी में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ द्वारा तारीख 12 जनवरी, 2009 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री सुनील कुमार वर्मा, युगल किशोर प्रसाद और विरेन्द्र कुमार

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री विरेन्द्र कुमार चौधरी, अपर महाधिवक्ता, समर विजय सिंह, केशव मित्तल, (सुश्री) सबर्णी सोम और पूर्वा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति अभय एस. ओका ने दिया ।

न्या. ओका – वर्तमान अपील अभियुक्त सं. 2 द्वारा की गई है । अपीलार्थी-अभियुक्त सं. 2 ने पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के तारीख 12 जनवरी, 2009 के उस निर्णय और आदेश को चुनौती दी है जिसके द्वारा अपीलार्थी और अभियुक्त सं. 1 द्वारा सेशन न्यायालय के दोषसिद्धि के आदेश के विरुद्ध फाइल की गई अपील को खारिज कर दिया गया । सेशन न्यायालय ने अपीलार्थी और अभियुक्त सं. 1 को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 और भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 449 और 324 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया था । अपीलार्थी और अभियुक्त सं. 1 को धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए आजीवन कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया था । धारा 34 के साथ पठित धारा 449 के अधीन अपराध के लिए उन्हें सात वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का निदेश दिया गया था । भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 324 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए उन्हें एक वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया था । अपीलार्थी और अभियुक्त सं. 1 देवेन्द्र **उर्फ** विक्की दोनों ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की जिसे आक्षेपित निर्णय द्वारा खारिज कर दिया गया ।

2. प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभि. सा. 1 अजय, जो सुसंगत समय पर 11 वर्ष का था, के कथन के आधार पर रजिस्ट्रीकृत की गई थी । वह मृतका भानमति और सतपाल के तीन पुत्रों में से सबसे छोटा है । अभियोजन के पक्षकथन के अनुसार, तारीख 30 दिसंबर, 2002 को अजय और उसकी माता (मृतका) अपने मकान में अंदर से दरवाजा बंद करके सो रहे थे । अजय का बड़ा भाई शिक्षा के लिए गाजियाबाद में रह रहा था और उसका दूसरा भाई अपने मामा के पास रहने के लिए गया था । अजय का पिता सतपाल एक मंदिर के महंत के रूप में कार्य कर रहा था और वह मंदिर के निकट रहता था । वह मृतका के साथ नहीं रहता था । अभियोजन के पक्षकथन के अनुसार, लगभग 1.00 बजे पूर्वाह्न में अजय ने अपनी माता की आवाज सुनी । जागने पर उसने देखा कि अभियुक्त सं. 1 और 2 उसकी माता के साथ हाथापाई कर रहे

थे । अभियुक्त सं. 1 विक्की ने चाकू से मृतका के उदर और छाती पर 6 से 7 प्रहार किए । उस समय पर अपीलार्थी सं. 2 उसकी माता के हाथों को पकड़े हुए था । जब अजय ने अपनी माता को बचाने की कोशिश की, तो अभियुक्त सं. 1 ने उसी चाकू से उसे क्षतियां कारित कीं । उसके पश्चात् दोनों अभियुक्त भाग गए । वे मकान में एक खिड़की से घुसे थे और वे उसी खिड़की से वापस गए थे । अजय के अनुसार, वह डर के कारण मकान में छुप गया था । लगभग 5.00 बजे अपराह्न में जब सुरेन्द्र, दूधिया, जिसे अभि. सा. 6 द्वारा गोलू के रूप में वर्णित किया गया है, मकान पर आया, अजय बाहर आया और उक्त दूधिया को बताया कि अभियुक्तों ने चाकू से उसकी माता की हत्या कर दी है । उक्त दूधिया ने घटना के बारे में अजय के चाचा राजिन्द्र सिंह (अभि. सा. 6) को बताया जो घटनास्थल पर आया । उसके पश्चात्, अजय का पिता सतपाल भी आया । क्षतिग्रस्त अजय को अस्पताल ले जाया गया जहां उसका कथन अभिलिखित किया गया । उसके कथन के आधार पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की गई ।

3. अजय ने अपनी शिकायत में कथन किया कि पूर्ववर्ती दिन को अभियुक्त उसके मकान में आए थे और भैंस खोल दी थी । जब मृतका ने शिकायत की तो दोनों ने मृतका पर हमला करने की कोशिश की । अजय ने यह भी कथन किया कि घटना से छह से सात माह पूर्व दोनों अभियुक्त उसके परिवार के खेत में घुसे थे और उन्होंने उनके खेत की "डोल" काट दी थी । चूंकि अपीलार्थी के पिता ने सतपाल से क्षमा-याचना कर ली थी इसलिए शिकायत फाइल नहीं की गई थी ।

4. अभि. सा. 1 अजय के अतिरिक्त, अभियोजन पक्ष ने अभि. सा. 6 राजिन्द्र (अजय के चाचा) और अभि. सा. 10 डा. वर्षा, जिसने अजय का परीक्षण किया था, की परीक्षा की । अभियोजन पक्ष ने अभि. सा. 12 डा. अरुण गर्ग की भी परीक्षा की, जिसने मृतका के शव की मरणोत्तर परीक्षा की थी ।

दलीलें

5. अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने तात्विक अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य की ओर हमारा ध्यान दिलाया ।

विद्वान् काउंसेल ने दलील दी कि अजय के साक्ष्य की सावधानीपूर्वक जांच करनी होगी क्योंकि वह एक अप्राप्तवय साक्षी है । उन्होंने बताया कि इस अप्राप्तवय साक्षी के परिसाक्ष्य की कतई कोई संपुष्टि नहीं की गई है जिसका साक्ष्य तात्विक विरोधाभासों और सुधारों से भरा पड़ा है । उन्होंने दलील दी कि अभि. सा. 1 अजय का साक्ष्य भरोसेमंद नहीं है । उन्होंने बताया कि अभियोजन के पक्षकथन के अनुसार, अजय ने सुबह होने तक किसी को भी घटना के बारे में नहीं बताया था । उसने इसके बारे में पहली बार दूधिया गोलू **उर्फ** सुरेन्द्र को बताया था जो लगभग 5.00 बजे पूर्वाह्न में उसके मकान पर आया था । वास्तव में, अभि. सा. 6 ने यह भी दावा किया है कि उसने उक्त दूधिया को यह कहते हुए सुना था कि मृतका की हत्या कर दी गई है । उन्होंने दलील दी कि अभियोजन पक्ष ने दूधिया की परीक्षा नहीं की थी, जो अभियोजन के पक्षकथन के लिए घातक है । उन्होंने दलील दी कि घटना के समय पर अजय की मौजूदगी अत्यधिक संदेहास्पद है । उन्होंने दलील दी कि सुसंगत समय पर मकान में पूरी तरह अंधेरा था और इसलिए साक्षी अजय के लिए अभियुक्तों को देखना संभव नहीं था । उन्होंने दलील दी कि पूरी संभावना है कि साक्षी अजय को सिखाया-पढ़ाया गया था । उन्होंने दलील दी कि किसी भी स्थिति में, अपीलार्थी पर आरोपित एक बहुत ही सीमित भूमिका यह है कि वह उस समय मृतका के हाथों को पकड़े हुआ था जब अभियुक्त सं. 1 ने चाकू से मृतका पर हमला किया था ।

6. राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने आक्षेपित निर्णयों का समर्थन करते हुए दलील दी कि ऐसा कोई नियम नहीं है कि किसी अप्राप्तवय साक्षी के एकमात्र परिसाक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि कायम रखने के लिए संपुष्टि आवश्यक हो । उन्होंने दलील दी कि अप्राप्तवय साक्षी अजय के परिसाक्ष्य में अभिकथित विरोधाभास और सुधार पूरी तरह से महत्वहीन हैं जिससे उसका साक्ष्य अविश्वसनीय नहीं हो जाता है । अत: उन्होंने दलील दी कि दोनों न्यायालयों द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण में हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है ।

हमारा निष्कर्ष

7. हमने दलीलों पर सावधानीपूर्वक विचार किया । मामले का परिणाम

अप्राप्तवय साक्षी अजय (अभि. सा. 1) के परिसाक्ष्य पर निर्भर करता है । साक्ष्य अधिनियम, 1872 (संक्षेप में "साक्ष्य अधिनियम") की धारा 118 के अधीन बाल साक्षी अभिसाक्ष्य देने के लिए सक्षम है जब तक कि न्यायालय का यह विचार न हो कि वह अपने कोमल अवयस्क के कारण उससे किए गए प्रश्नों को समझने से या उन प्रश्नों के युक्तिसंगत उत्तर देने से निवारित है । बाल साक्षी को शपथ दिलाने के संबंध में शपथ अधिनियम, 1969 (संक्षेप में "शपथ अधिनियम") की धारा 4 सुसंगत है । धारा 4 इस प्रकार है :–

> **"4. साक्षियों, दुभाषियों और जूरी-सदस्यों द्वारा शपथ लिया जाना या प्रतिज्ञान किया जाना** – (1) निम्नलिखित व्यक्तियों द्वारा शपथ ली जाएंगी या प्रतिज्ञान किए जाएंगे, अर्थात् –
>
> (क) सब साक्षी, अर्थात् सब व्यक्ति, जो किसी न्यायालय द्वारा या उसके समक्ष अथवा ऐसे व्यक्तियों की परीक्षा करने या साक्ष्य लेने के लिए विधि अनुसार या पक्षकारों की सम्मति से प्राधिकृत व्यक्ति द्वारा या उसके समक्ष विधिपूर्वक परीक्षित किए जा सकते हैं अथवा साक्ष्य दे सकते हैं या देने के लिए अपेक्षित किए जा सकते हैं ;
>
> (ख) साक्षियों से किए गए प्रश्नों और उनके द्वारा दिए गए साक्ष्य के दुभाषिए ; तथा
>
> (ग) जूरी-सदस्य :
>
> परंतु जहां साक्षी बारह वर्ष से कम आयु का बालक हो और उस न्यायालय या व्यक्ति को, जिसे उस साक्षी की परीक्षा करने का प्राधिकार हो, यह राय हो कि यद्यपि साक्षी सत्य बोलने के कर्तव्य को समझता है किंतु वह शपथ या प्रतिज्ञान की प्रकृति को नहीं समझता वहां इस धारा के पूर्वगामी उपबंध और धारा 5 के उपबंध उस साक्षी को लागू नहीं होंगे ; किंतु ऐसे किसी मामले में शपथ या प्रतिज्ञान का अभाव न तो किसी ऐसे साक्षी द्वारा दिए गए साक्ष्य को अग्राह्य बनाएगा और न उस साक्षी की सत्य कथन करने की बाध्यता पर प्रभाव डालेगा ।
>
> (2) ..... ।"

धारा 4 की उपधारा (1) के परंतुक के अधीन यह अधिकथित है कि बारह वर्ष से कम आयु के बाल साक्षी की दशा में, जब तक उक्त परंतुक द्वारा यथा अपेक्षित समाधान को अभिलिखित नहीं किया जाता है, बाल साक्षी को शपथ नहीं दिलाई जा सकती । इस मामले में, अभि. सा. 1 अजय के अभिसाक्ष्य में यह उल्लिखित है कि साक्ष्य अभिलिखित करने के समय पर उसकी आयु बारह वर्ष थी । अत: इस मामले में शपथ अधिनियम की धारा 4 का परंतुक लागू नहीं होगा । तथापि, साक्ष्य अधिनियम की धारा 118 की अपेक्षा को ध्यान में रखते हुए, विद्वान् विचारण न्यायाधीश अपनी यह राय अभिलिखित करने के लिए कर्तव्याधीन थे कि बालक उसे किए गए प्रश्नों को समझने में समर्थ है और वह उससे किए गए प्रश्नों के युक्तिसंगत उत्तर देने में समर्थ है । विचारण न्यायाधीश को अवश्य अपनी यह राय अभिलिखित करनी चाहिए कि बाल साक्षी सत्य बोलने के कर्तव्य को समझता है और उल्लेख करना चाहिए कि क्यों उसकी यह राय है कि बालक सत्य बोलने के कर्तव्य को समझता है ।

8. यह एक सुस्थिर सिद्धांत है कि किसी बाल साक्षी के परिसाक्ष्य की संपुष्टि करना एक नियम नहीं है अपितु सावधानी और समझदारी का एक उपाय है । अवयस्क आयु के बाल साक्षी को आसानी से सिखाने-पढ़ाने की संभावना रहती है । तथापि, केवल यह बात किसी बाल साक्षी के साक्ष्य को नामंजूर करने का आधार नहीं है । न्यायालय को बाल साक्षी के साक्ष्य की सावधानीपूर्वक संवीक्षा करनी चाहिए । न्यायालय को अवश्य इस प्रश्न पर अपने विवेक का प्रयोग करना चाहिए कि क्या बाल साक्षी को सिखाने-पढ़ाने की संभावना है । इसलिए न्यायालय द्वारा किसी बाल साक्षी के साक्ष्य की संवीक्षा सावधानीपूर्वक किया जाना अपेक्षित है ।

9. किसी अप्राप्तवय के साक्ष्य को अभिलिखित करने से पूर्व, न्यायिक अधिकारी का कर्तव्य है कि वह यह अभिनिश्चित करने की दृष्टि से अप्राप्तवय से यह आरंभिक प्रश्न पूछे कि क्या वह उससे किए गए प्रश्नों को समझ सकता है और युक्तिसंगत उत्तर देने की स्थिति में है । न्यायाधीश का अवश्य यह समाधान हो जाना चाहिए कि अप्राप्तवय प्रश्नों को समझने और उनका उत्तर देने में समर्थ है और सत्य बोलने के महत्व को समझता है । अत: न्यायाधीश, जो साक्ष्य अभिलिखित

करता है, की भूमिका अति महत्वपूर्ण है । उसे यह अभिनिश्चित करने के लिए कि क्या अप्राप्तवय उससे किए गए प्रश्नों को समझने में समर्थ है और युक्तिसंगत उत्तर देने योग्य है, अप्राप्तवय से युक्तियुक्त प्रश्न पूछकर उचित आरंभिक परीक्षा करनी चाहिए । आरंभिक प्रश्नों और उत्तरों को अभिलिखित करना उचित होगा जिससे कि अपील न्यायालय विचारण न्यायालय की राय की शुद्धता पर विचार कर सके ।

10. इस मामले के तथ्यों में, अप्राप्तवय की आरंभिक परीक्षा बहुत ही दिखावाभर है । अप्राप्तवय से केवल तीन प्रश्न पूछे गए थे जिनके आधार पर विद्वान् सेशन न्यायाधीश इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि साक्षी प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देने में समर्थ है । अत: उसे शपथ दिलाई गई थी । उससे पूछे गए प्रश्न निम्नलिखित हैं :–

> "प्र. आप किस विद्यालय में पढ़ रहे हो ?
> उ. मैं राजकीय प्राथमिक विद्यालय, बड़वासनी में पढ़ रहा हूं ।
> प्र. आपके पिता क्या करते हैं ?
> उ. मेरे पिता गोहाना में हनुमान मंदिर में पुजारी है ।
> प्र. सच बोलना चाहिए या झूठ ?
> उ. सच ।"

11. हमारा मत है कि विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने अपना कर्तव्य नहीं निभाया था । तो भी, हमने अप्राप्तवय साक्षी अजय के साक्ष्य की सावधानीपूर्वक संवीक्षा की है । उसने मुख्य परीक्षा में कहा था कि तारीख 30 दिसंबर, 2002 की रात्रि में अभियुक्त एक खिड़की तोड़कर उसके मकान में घुसे । अपीलार्थी उसकी माता को अपने हाथों से पकड़े हुए था, जबकि अभियुक्त सं. 1 ने चाकू से उस पर हमला किया था । जब उसने अपनी माता को बचाने की कोशिश की, तो अभियुक्त सं. 1 ने उसकी पीठ पर चाकू से प्रहार किया । उसने कथन किया कि अभियुक्तों के भाग जाने के पश्चात् वह मकान में छुप गया था और उसने दूधिया सुरेन्द्र को घटना बताई थी जो 5.00 बजे पूर्वाह्न में मकान पर आया था । मुख्य परीक्षा में उसने उनके परिवार की भूमि पर अभियुक्त सं. 1 और 2 द्वारा फसल काटने की घटना के बारे में अभिसाक्ष्य दिया था जो अपराध करने की तारीख से 6 से 7 माह पूर्व घटी थी । उसने कथन

किया कि यद्यपि अभियुक्त उक्त कृत्य में संलिप्त थे किंतु कोई कार्रवाई नहीं की गई थी क्योंकि अपीलार्थी के पिता ने क्षमा-याचना कर ली थी । प्रतिपरीक्षा में जब इस साक्षी का पुलिस द्वारा अभिलिखित किए गए उसके कथन से सामना कराया गया, तो उसने स्वीकार किया कि इस घटना को उसमें अभिलिखित नहीं किया गया था । प्रतिपरीक्षा में इस साक्षी ने यह माना कि न्यायालय में मौजूद अभियुक्तों ने उसकी माता की हत्या की थी और उन्होंने शराब पी हुई थी । तथापि, उसने स्वीकार किया कि इस अभिकथन को पुलिस द्वारा अभिलिखित किए गए उसके कथन में अभिलिखित नहीं किया गया था कि अभियुक्तों ने शराब पी हुई थी ।

12. घटना अर्द्ध-रात्रि के पश्चात् घटी थी । प्रतिपरीक्षा में इस साक्षी ने कथन किया कि अभियुक्तों ने उसके मकान पर आने से पूर्व बिजली काट दी थी । उसने इस सुझाव को सही होने से इनकार किया कि अंधेरे के कारण उसने हमलावरों की शनाख्त नहीं की थी जिन्होंने उसकी माता पर हमला किया था । उसने प्रतिपरीक्षा में यह सुधार किया हुआ बयान दिया कि अभियुक्त सं. 1 ने माचिस की एक तिल्ली जलाई थी और माचिस की तिल्ली की रोशनी में उसने हमलावरों की शनाख्त की थी । यह स्वीकार करना बहुत मुश्किल है कि अभियुक्त सं. 1, जिसने मृतका के शरीर पर अपने चाकू से 6 से 7 प्रहार किए थे, मृतका पर हमला करते समय एक माचिस की तिल्ली जलाएगा ।

13. इस प्रक्रम पर, हम अभि. सा. 6 राजिन्द्र सिंह, अजय के चाचा के साक्ष्य का हवाला दे सकते हैं । उसने दावा किया कि तारीख 31 दिसंबर, 2002 को लगभग 5.00 बजे पूर्वाह्न में जब वह पशुओं के बाड़े में गया हुआ था, तब उसने दूधिया गोलू से सुना था कि सतपाल की पत्नी की हत्या कर दी गई है । उसने दावा किया कि वह दौड़ कर मृतका के मकान पर आया । चूंकि अभि. सा. 1 अजय ने दरवाजा नहीं खोला, इसलिए वह दीवार फांदकर मकान में घुसा । अभि. सा. 1 अजय ने कथन किया है कि अभि. सा. 6 दीवार फांदकर नहीं घुसा था क्योंकि उसने अभि. सा. 6 को अंदर आने के लिए दरवाजा खोल दिया था । तथापि, अभि. सा. 6 ने दावा किया है कि पुलिस को सूचना उसके भाई

सतपाल (मृतका के पति) के पहुंचने के पश्चात् ही दी गई थी । अभि. सा. 6 एक प्रत्यक्षदर्शी नहीं है ।

14. अभियोजन के पक्षकथन के अनुसार, 5.00 बजे पूर्वाह्न तक अभि. सा. 1 अजय अपने घर में छिपा रहा था और केवल जब दूधिया गोलू/सुरेन्द्र 5.00 बजे पूर्वाह्न में आया, तब उसने उस दूधिया को घटना के बारे में बताया था । वास्तव में, अभि. सा. 6 ने भी यह कथन किया है कि उसे घटना के बारे में उक्त दूधिया से पता चला था । अभियोजन पक्ष ने यह स्पष्ट नहीं किया है कि दूधिया की एक साक्षी के रूप में क्यों परीक्षा नहीं की गई थी, यद्यपि वह उपलब्ध था । वह एक अति महत्वपूर्ण साक्षी था और पहला व्यक्ति था जिसको अभि. सा. 1 अजय ने वह सब बताया था जो उसने अभिकथित रूप से देखा था । दूधिया के आने तक वहां कोई नहीं था जो अजय को सिखा-पढ़ा सकता था । अत: इस साक्षी ने दूधिया को क्या बताया था, वह सिखाने-पढ़ाने के अभिकथन के संदर्भ में महत्वपूर्ण हो सकता था । वह एक उपलब्ध महत्वपूर्ण साक्षी था जिसकी परीक्षा से इस साक्षी के सिखाने-पढ़ाने की संभाव्यता को नकारा जा सकता था क्योंकि घटना के पश्चात् इस अप्राप्तवय साक्षी से मिलने वाला वह पहला व्यक्ति था । उसके पश्चात्, अप्राप्तवय अपने चाचा (अभि. सा. 6) और अपने पिता के साथ था और अभियोजन के पक्षकथन के अनुसार, अजय के परिवार और अभियुक्तों के बीच संपत्ति को लेकर कुछ विवाद था । उसका कथन अस्पताल में उसके पिता की मौजूदगी में अभिलिखित किया गया था । अभि. सा. 6 ने प्रतिपरीक्षा में कहा था कि दूधिया उस समय न्यायालय के बाहर मौजूद था जब उसका साक्ष्य अभिलिखित किया गया था । उसका साक्ष्य तारीख 22 दिसंबर, 2003 को अभिलिखित किया गया था । उसी दिन विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने लोक अभियोजक का यह अभिकथन अभिलिखित किया था कि वह अनावश्यक होने के कारण सतपाल की परीक्षा नहीं करा रहा है और वह गोलू (दूधिया) को छोड़ रहा है क्योंकि उसने उसे अपने पक्ष में कर लिया है । यहां तक कि अपीलार्थी का पिता भी एक महत्वपूर्ण साक्षी था । यह ऐसा मामला है जहां दूधिया और अपीलार्थी के पिता की परीक्षा न करने के लिए अभियोजन पक्ष के विरुद्ध एक प्रतिकूल निष्कर्ष निकालना होगा ।

15. एक अन्य परिस्थिति है जो अपीलार्थी के संबंध में सुसंगत है । अभियोजन पक्ष के अनुसार, उस मकान के निकट जहां घटना घटी थी, अभियुक्तों के जूतों/पादुकाओं के चिह्न थे । अभियोजन पक्ष ने अभियोजन 6 द्वारा दिए गए साक्ष्य अनुसार पैरों के चिह्न उठाए थे । अभि. सा. 6 की मौजूदगी में दोनों अभियुक्तों की पादुका/जूते अभिरक्षा में लिए गए थे । किंतु अभियोजन पक्ष द्वारा ली गई छाप के सांचे का वर्तमान अपीलार्थी के जूतों से मेल नहीं खाया था ।

16. दूधिया की परीक्षा न कराने के अतिरिक्त, अभि. सा. 11 मेहर सिंह, अन्वेषण अधिकारी ने अजय के बड़े भाइयों के कथनों को अभिलिखित करके यह सत्यापन करने के लिए अन्वेषण नहीं किया था कि क्या वे घटना की तारीख को मकान से दूर थे । अभि. सा. 1 अजय के साक्ष्य की गहराई से संवीक्षा करने के पश्चात् और जो हमने पहले ही मत व्यक्त किया है उस पर विचार करते हुए, इस साक्षी को सिखाने-पढ़ाने की संभाव्यता से इनकार नहीं किया जा सकता । अभियोजन के पक्षकथन में अन्य कमियों के अतिरिक्त, जो ऊपर बताई गई हैं, अभि. सा. 1 अजय के परिसाक्ष्य का समर्थन या संपुष्टि करने के लिए कुछ नहीं है । इस मामले के तथ्यों में, केवल अभि. सा. 1 अजय के परिसाक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि करना सुरक्षित नहीं होगा जिससे विश्वास प्रेरित नहीं होता है ।

17. तद्नुसार, हम यह अपील मंजूर करते हैं ।

उच्च न्यायालय के तारीख 12 जनवरी, 2009 के आक्षेपित निर्णय और विचारण न्यायालय के तारीख 31 जनवरी, 2005 के आक्षेपित निर्णय को तद्द्वारा अपास्त करते हैं और अपीलार्थी को उसके विरुद्ध अभिकथित किए गए अपराधों से दोषमुक्त किया जाता है । चूंकि अपीलार्थी जमानत पर है, उसके जमानत बंधपत्रों को रद्द किया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

जस.

[2023] 3 उम. नि. प. 1

मो. सिद्दीक (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि

बनाम

महंत सुरेश दास और अन्य

[2010 की सिविल अपील सं. 10866-67 और सहबद्ध अपीलें]

9 नवंबर, 2019

मुख्य न्यायमूर्ति रंजन गोगोई, न्यायमूर्ति एस. ए. बोबडे, न्यायमूर्ति (डा.) डी. वाई. चंद्रचूड़, न्यायमूर्ति अशोक भूषण और न्यायमूर्ति एस. अब्दुल नज़ीर

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 142 – 'न्याय, समता और सद्विवेक' के सिद्धांतों का अवलंब – उच्चतम न्यायालय द्वारा 'पूर्ण न्याय' प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ शक्ति का प्रयोग कब और किस सीमा तक अनुज्ञेय है – सामान्य विधियों में समाविष्ट प्रतिषेध या परिसीमाएं या उपबंध किस सीमा तक 'संपूर्ण न्याय' प्रदान किए जाने की शक्ति के प्रयोग को सीमित करते हैं ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 142 – न्यायिक शक्ति की परिधि और इतिहास में घटित उचित और अनुचित घटनाएं – इतिहास में प्रभुसत्ताओं/शासनों में परिवर्तन – पूर्ववर्ती प्रभुसत्ताओं/विधिक शासनों द्वारा कारित ऐतिहासिक त्रुटियां और उनके विधिक परिणाम – सांपत्तिक अधिकारों को सम्मिलित करते हुए पूर्ववर्ती प्रभुसत्ताओं/विधिक शासनों के अंतर्गत किए गए कार्य और उन कार्यों से उद्भूत अधिकार वर्तमान विधिक शासन की सीमा तक लागू होते हैं और उनसे विधिक परिणाम भी उद्भूत होते हैं – न्यायालय को ऐतिहासिक त्रुटियों में सुधार की शक्ति तब तक प्राप्त नहीं होती, जब तक कि यह दर्शित न कर दिया जाए कि उन ऐतिहासिक त्रुटियों के विधिक परिणामों का प्रवर्तन उत्तरोत्तर प्रभुसत्ताओं/विधिक शासनों या वर्तमान प्रभुसत्ता/विधिक शासन द्वारा किया गया ।

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) – धारा 110 [सपठित परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 64] – स्वामित्व और हक – कब्जाधारी हक का दावा – कब्जाधारी हक साबित किए जाने के प्रयोजनार्थ सिविल विचारण में अधिसंभाव्यताओं की प्रबलता के सबूत का स्तरमान – संघटकों का संक्षेपण – कब्जाधारी हक अनन्य और अबाधित कब्जे और उपयोग पर आधारित होना चाहिए और इस तथ्य को अधिसंभाव्यताओं की प्रबलता के आधार पर

साक्ष्य द्वारा साबित किया जाना चाहिए – कब्जाधारी हक के विनिर्धारण के प्रयोजनार्थ न्यायालय को मुकदमे के पक्षों द्वारा संपूर्ण संबद्ध संपत्ति के प्रयोग की प्रकृति का विनिर्धारण करना चाहिए – न्यायालय को संपत्ति के प्रयोग की प्रकृति का विनिर्धारण करते हुए उसके प्रयोग की अवधि और सीमा के कारक पर भी विचार करना चाहिए ।

साक्ष्य अधिनियम, 1872 – धारा 110 – स्वामित्व और हक – कब्जाधारी हक – कब्जाधारी हक साबित किए जाने के प्रयोजनार्थ कब्जा और उपयोग साबित करना आवश्यक होता है ।

साक्ष्य अधिनियम, 1872 – धारा 110 – आस्था और विश्वास – उपासना के प्रतीकों की उपस्थिति के साथ योजित उपासना से संबंधित कार्य – उपासना से संबंधित कार्य कब्जा या हक के प्रश्न से सुसंगत नहीं होते – उपासना के वास्तविक स्वरूप और प्रतीक कुछ भी हों, चाहे वे हिंदुओं से संबंधित पूजा, आरती या परिक्रमा इत्यादि के स्वरूप में हों या छवियों, मूर्तियों, उत्कीर्णित स्तंभों, चबूतरा इत्यादि के स्वरूप में या नमाज या अल्लाह के शिलालेख इत्यादि के स्वरूप में, वे भूमि के उपयोग के स्वरूप होते हैं और कब्जाधारी हक के प्रश्न के विनिर्धारण के प्रयोजनार्थ सुसंगत होते हैं ।

साक्ष्य अधिनियम, 1872 – धारा 110 – उपधारणा – वर्तमान मामले में इस धारा के अधीन उपधारणा का अवलंब किसी भी पक्ष द्वारा लिया जा सकता था – विशेष रूप से इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि प्रश्नगत भूमि नजूल भूमि (राज्य की संपत्ति) थी, किंतु जिसमें राज्य हितबद्ध नहीं था ।

साक्ष्य अधिनियम, 1872 – धारा 57, 81 और 37 – वर्ष 1528 से 1856-57 तक बाबरी मस्जिद में कब्जा, उपयोग या नमाज अदा किया जाना दर्शित किए जाने के प्रयोजनार्थ किसी साक्ष्य का उपलब्ध न होना – वर्ष 1528 से 1856-57 तक राम जन्मभूमि स्थल पर हिंदुओं द्वारा उपासना – यात्रावृत्तांतों, इतिहास की पुस्तकों, राजपत्रों और गज़ेटियरों में समाविष्ट कथन – ऐतिहासिक पाठ से नकारात्मक अनुमान निकाला जाना अर्थात् किसी ऐतिहासिक पाठ में किसी तथ्य पर विश्वास किए जाने या न किए जाने के कारक के रूप में किसी घटना के निदेश की अनुपस्थिति – न्यायालय को ऐसे किसी नकारात्मक अनुमान, जो ऐतिहासिक पाठ में समाविष्ट न हो, निकालते हुए सावधान रहना चाहिए – यह उपयुक्त होगा कि कतिपय अवसरों पर खामोशी को उसी स्थान पर छोड़ दिया जाए, जहां से वे संबंधित हैं अर्थात् खामोशी के संसार में ।

साक्ष्य अधिनियम, 1872 – धारा 57, 81 और 37 वर्ष 1528 से 1856-57 तक बाबरी मस्जिद में कब्जा, उपयोग या नमाज अदा किया जाना दर्शित किए जाने के प्रयोजनार्थ किसी साक्ष्य का उपलब्ध न होना – वर्ष 1528 से 1856-57 तक राम जन्मभूमि स्थल पर हिंदुओं द्वारा उपासना – ईंट की दीवार और उसके ऊपर लोहे की जाली स्थापित किया जाना – 1858 से 1873 के मध्य निहंग सिख की घटना और मस्जिद/भीतरी बरामदे के भीतर चबूतरे का निर्माण – उक्त चबूतरे को हटाए जाने के लिए मुस्लिम पक्ष द्वारा शिकायतें – चबूतरे पर मूर्तियों का रखा जाना – यह सभी तथ्य विवादित परिसर में हिंदुओं की अनुपस्थिति और उनके द्वारा उपासना के निर्वहन की पुष्टि करते हैं ।

साक्ष्य अधिनियम, 1872 – धारा 110, 57, 81 और 37 – संपत्ति का स्वामित्व और हक – कब्जाधारी हक – विनिर्धारण – स्वामित्व या हक के सम्बन्ध में ऐतिहासिक अभिलेखों/दस्तावेजी साक्ष्य की अनुपस्थिति – हक के बाबत किसी अन्य मालिकाना दावे का तर्कसंगत न पाया जाना – सम्मिश्र विवादित संपत्ति, जिसे ईंट की दीवार और उसके ऊपर लोहे की जाली स्थापित किए जाने के द्वारा भीतरी बरामदे, जिसमें तीन गुम्बदों वाला ढांचा स्थित था और बाहरी बरामदे में विभाजित तो किया गया था, किन्तु विधितः बंटवारा नहीं किया गया था – यद्यपि मुकदमे के पक्षों में से एक पक्ष द्वारा विवादित संपत्ति पर ढांचे/भवन का निर्माण किया गया था, किन्तु किसी भी पक्ष ने बंटवारे का वाद फाइल नहीं किया/बंटवारे के अनुतोष की ईप्सा नहीं की – चूंकि मुकदमे के प्रत्येक पक्ष ने सम्पूर्ण सम्मिश्र संपत्ति के हक का दावा किया, इसलिए लंबी अवधि तक, निरंतरता में और सार्वजनिक रूप से अनन्य और अबाधित कब्जे और उपयोग के परीक्षण के आधार पर सम्पूर्ण संपत्ति के कब्जाधारी हक के विनिर्धारण की ईप्सा किया जाना – अभिनिर्धारित – न्यायालय को कब्जाधारी हक के विनिर्धारण के प्रयोजनार्थ मुकदमे के पक्षों द्वारा सम्पूर्ण विवादित संपत्ति के उपयोग की प्रकृति का विनिर्धारण करना चाहिए – न्यायालय को संपत्ति के उपयोग की प्रकृति का विनिर्धारण करते हुए उसके उपयोग की अवधि और सीमा के तथ्य पर भी विचार करना चाहिए ।

साक्ष्य अधिनियम, 1872 – धारा 110, 57, 81 और 37 – विवाद के एक पक्ष द्वारा निर्मित ढांचे/भवन की विद्यमानता के बावजूद सम्पूर्ण सम्मिश्र संपत्ति पर कब्जाधारी हक साबित किए जाने के प्रयोजनार्थ विभाजनकारी दीवार के निर्माण के पूर्व संपत्ति का लम्बी अवधि तक

अनन्य रूप से उपयोग किए जाने और विभाजनकारी दीवार के निर्माण के पश्चात् उसके एक भाग पर लम्बी अवधि तक निरंतर और सार्वजनिक रूप से अनन्य और अबाधित कब्जा रखे जाने और उसका उपयोग किए जाने और शेष भाग का अनन्य रूप से उपयोग न किए जाने को साबित किया जाना कब पर्याप्त होगा, विशेष रूप से तब जबकि संपत्ति के बंटवारे के लिए किसी अनुतोष की ईप्सा न की गई हो/संपत्ति के बंटवारे के लिए कोई वाद फाइल न किया गया हो ।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 26, नियम 10-क, 10(2) और धारा 75 – न्यायालय द्वारा भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा प्राचीन ढांचे का उत्खनन सम्मिलित करते हुए वैज्ञानिक अन्वेषण के लिए निर्देशित किया जाना – भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की रिपोर्ट में समाविष्ट निष्कर्ष – न्यायालय द्वारा मूल्यांकन – न्यायालय की आयुक्त, जिसका सामर्थ, विश्वसनीयता, संपूर्णता और सावधानी अविवादित हैं, जैसे कि वर्तमान मामले में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की रिपोर्ट, द्वारा निकाले गए निष्कर्षों/रिपोर्ट पर अविश्वास किए जाने/निरस्त किए जाने की शक्ति और सीमा – न्यायालय द्वारा विज्ञान और कला के क्षेत्र में पुरातत्व की भूमिका को स्पष्ट किया जाना – विशेषज्ञ साक्ष्य को प्रदान किया गया महत्व उस विज्ञान की प्रकृति पर आधारित होता है, जिस पर साक्ष्य आधारित होता है – अभिनिर्धारित – पुरातात्विक निष्कर्ष व्यक्तिपरक रूप से इतने अनुमानात्मक नहीं होते कि उन्हें सत्यापन योग्य और विश्वसनीय निष्कर्ष प्रस्तुत किए जाने के प्रयोजनार्थ असमर्थ माना जाए – न्यायालय को यह निर्णीत करने की अधिकारिता प्राप्त है कि क्या निष्कर्ष, जो आयुक्त की रिपोर्ट/भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की रिपोर्ट में समाविष्ट हैं, सुसंगतता और अधिसंभाव्यताओं की प्रबलता के आधार पर सत्य और न्याय के प्रयोजन को संतुष्ट करते हैं ।

यह प्रथम अपीलें दो धार्मिक समुदायों के मध्य विवाद से संबंधित हैं जो दोनों ही अयोध्या शहर में 1500 वर्ग गज की माप वाली भूमि के एक टुकड़े पर स्वामित्व का दावा करते हैं । यह विवादित भूमि हिंदुओं और मुस्लिमों, दोनों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है । हिंदू समुदाय का दावा है कि यह भूमि भगवान राम, जो भगवान विष्णु के अवतार थे, का जन्मस्थान है । मुस्लिम समुदाय का दावा है कि यह भूमि ऐतिहासिक बाबरी मस्जिद, जिसका निर्माण प्रथम मुगल शासक बाबर द्वारा कराया गया था, का स्थल है । इस स्थल पर तारीख 6 दिसंबर, 1992 तक मस्जिद का पुराना ढांचा

विद्यमान था । विवादित भूमि कोटरामचंद्र नामक ग्राम में स्थित है या जैसा कि सामान्य बोलचाल की भाषा में कहा जाता है, जिला फैज़ाबाद की सदर तहसील के परगना हवेली अवध में अयोध्या स्थित रामकोट । यह स्थल भगवान राम के भक्तों के लिए धार्मिक महत्व का स्थल है, जिनका विश्वास है कि भगवान राम का जन्म विवादित स्थल पर हुआ था । इसी कारणवश, हिंदू विवादित स्थल को राम जन्मभूमि या राम जन्मस्थान के रूप में निर्दिष्ट करते हैं । हिंदुओं का पक्षकथन है कि विवादित स्थल पर भगवान राम को समर्पित एक प्राचीन मंदिर विद्यमान था, जिसको मुगल शासक बाबर द्वारा भारतीय उपमहाद्वीप पर विजय के अवसर पर ढहा दिया गया था । इसके विपरीत मुस्लिमों की दलील है कि बाबर द्वारा या उसकी तरफ से मस्जिद का निर्माण रिक्त पड़ी हुई भूमि पर कराया गया था । यद्यपि हिंदुओं के लिए इस स्थल के महत्व से इनकार नहीं किया जा सकता, फिर भी मुस्लिमों का पक्षकथन है कि विवादित सम्पत्ति के स्वामित्व पर हिंदुओं का कोई दावा नहीं बनता ।

हमारा देश आपसी फूट और विदेशी आक्रमणों का साक्षी रहा है । फिर भी हमारे देश ने भारत के विचार में उस प्रत्येक व्यक्ति को सम्मिलित किया है, जिसने उसकी शरण की ईप्सा की, चाहे इस देश में उनका आगमन व्यापारियों की हैसियत से हुआ हो, पर्यटकों की हैसियत से हुआ हो या आक्रमणकारियों की हैसियत से । इस देश का इतिहास सांस्कृतिक, सांसारिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक खोज के माध्यम से सत्य की खोज का केंद्र रहा है । इस विवाद से सहबद्ध घटनाएं मुगल साम्राज्य, उपनिवेशी शासन और वर्तमान संवैधानिक शासन प्रणाली तक विस्तारित हैं । संवैधानिक मूल्यों ने इस राष्ट्र का आधार सृजित किया है और उन्हीं मूल्यों के कारण इस न्यायालय के समक्ष वर्तमान स्वामित्व विवाद का विधिसम्मत समाधान इक्तालीस दिनों की सुनवाई के पश्चात् सम्भव हुआ । इन अपीलों में विवाद चार नियमित वादों से उद्भूत हुआ, जो 1950 और 1989 के मध्य संस्थित कराए गए । गोपाल सिंह विशारद नामक एक हिंदू भक्त द्वारा फैज़ाबाद के सिविल न्यायाधीश के समक्ष वर्ष 1950 में एक वाद इस घोषणा की ईप्सा करते हुए संस्थित कराया गया कि उसे उसके धर्म और रूढ़ियों के अनुसार मुख्य जन्मभूमि मंदिर में प्रतिमाओं के निकट प्रार्थना का अधिकार है । निर्मोही अखाड़ा हिंदुओं के मध्य एक धार्मिक सम्प्रदाय का प्रतिनिधित्व करता है, जिसे रामानंदी बैरागी सम्प्रदाय के नाम से जाना जाता है । निर्मोही अखाड़े का दावा है कि वे समस्त तात्विक समयावधियों में विवादित

स्थल पर स्थित ढांचे के प्रभारी और प्रबंधकर्ता रहे हैं, जो उनके अनुसार तारीख 29 दिसंबर, 1949 तक 'मंदिर' था और जिस तारीख पर 1898 की दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन कुर्की का आदेश पारित किया गया । वास्तव में उनका दावा है कि वे देवता की सेवा में रहने वाले शिबायत हैं, उनके समस्त कार्यों का प्रबंध करते हैं और भक्तों से चढ़ावा प्राप्त करते हैं । उनके द्वारा वर्ष 1959 में मंदिर के प्रबंध और प्रभार के लिए एक वाद फाइल किया गया था । उत्तर प्रदेश सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड ('सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड') और अयोध्या के अन्य मुस्लिम निवासियों ने विवादित स्थल पर उनके स्वामित्व की घोषणा के लिए वर्ष 1961 में एक अन्य वाद संस्थित कराया । उनके अनुसार पुराना ढांचा एक मस्जिद का ढांचा था, जिसका निर्माण मुगल शासक बाबर के अनुदेशों पर उसकी फौज के कमांडर मीर बांकी द्वारा बाबर की उपमहाद्वीप पर विजय के पश्चात् सत्रहवीं शताब्दी के तीसरे दशक में कराया गया था । मुस्लिमों ने इस बात से इनकार किया कि इस मस्जिद का निर्माण एक ध्वस्त किए जा चुके मंदिर के स्थल पर किया गया था । उनके अनुसार, इस मस्जिद में तारीख 23 दिसंबर, 1949 तक अबाधित रूप से नमाजें अदा की जा रहीं थीं, किंतु तभी हिंदुओं के एक समूह ने इस धार्मिक ढांचे को ध्वस्त करने, उसको नुकसान पहुंचाने और कलुषित करने के आशय से इसके तीन गुम्बदों वाले ढांचे के भीतर प्रतिमाओं को रख कर अपवित्र कर दिया । सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड ने स्वामित्व की घोषणा और यदि आवश्यक पाया जाए तो कब्जे की डिक्री का दावा किया । वर्ष 1989 में देवता ('भगवान श्रीराम विराजमान') और भगवान राम के जन्मस्थान ('स्थान श्रीराम जन्मभूमि') की ओर से उनके वादमित्र द्वारा एक अन्य वाद फाइल किया गया । यह वाद इस दावे पर आधारित था कि विधि देवता और जन्मस्थान, दोनों को न्यायिक अस्तित्व के रूप में मान्यता प्रदान करती है । इस वाद में यह दावा भी किया गया कि जन्मस्थान को भगवान राम की दिव्य भावना को मूर्त रूप प्रदान करते हुए उपासना के स्थान के रूप में पवित्र स्थान माना गया है । इसलिए, देवता (जिसको विधि न्यायिक अस्तित्व के रूप में मान्यता प्रदान करती है) की ही भांति देवता के जन्मस्थान के भी विधिक व्यक्ति होने का दावा किया गया या जैसा कि विधिक बोलचाल में वर्णित किया गया है, देवता के जन्मस्थान को भी न्यायिक हैसियत प्राप्त होती है । व्यादेश के अनुतोष के साथ विवादित स्थल के स्वामित्व की घोषणा की भी ईप्सा की गई है । इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा हिंदू उपासकों द्वारा पृथक्-पृथक्

रूप से फाइल किए गए वादों के साथ-साथ ये वाद भी फैज़ाबाद के सिविल न्यायालय से विचारण के लिए अंतरित करके मंगा लिए गए । उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ ने चारों वादों से उद्भूत मूल कार्यवाहियों में एक ही निर्णय तारीख 30 सितम्बर, 2010 को पारित किया और हमारे समक्ष उपस्थित अपीलें पूर्ण न्यायपीठ द्वारा पारित उपरोक्त विनिश्चय से उद्भूत हुई हैं । उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड और निर्मोही अखाड़ा द्वारा फाइल किए गए वाद परिसीमा द्वारा बाधित थे । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने के बावजूद कि वे दोनों वाद परिसीमा द्वारा बाधित थे, 2:1 के विभाजित अधिमत से अभिनिर्धारित किया कि हिंदू और मुस्लिम पक्ष विवादित परिसर के संयुक्त कब्जेदार थे । दोनों में से प्रत्येक को विवादित संपत्ति के एक तिहाई भाग का हकदार अभिनिर्धारित किया गया । शेष एक तिहाई भाग निर्मोही अखाड़े को दे दिया गया । वादमित्र के माध्यम से देवता और भगवान राम जन्मस्थान द्वारा फाइल किए गए वाद में उस प्रभाव की एक आरम्भिक डिक्री भी पारित की गई । इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष मौखिक और दस्तावेजी, दोनों प्रकार के विशालकाय साक्ष्य पेश किए गए, जिनके परिणामस्वरूप 4304 पृष्ठों के तीन निर्णय पारित किए गए । इन्हीं निर्णयों को वर्तमान अपीलों में चुनौती दी गई है । इस न्यायालय के समक्ष यह दावा करते हुए न्याय निर्णायक भूमिका का निर्वाह किए जाने की अपेक्षा की गई है कि सत्य के लिए दो अलग-अलग खोजें या तो दोनों में से किसी एक पक्ष के स्वातंत्र्य का अतिक्रमण करती हैं या विधि के नियम का । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलों का निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – हम, तद्नुसार, निम्नलिखित आदेश और निर्देश देते हैं – निर्मोही अखाड़ा द्वारा संस्थित कराए गए वाद संख्या 3 को परिसीमा द्वारा बाधित अभिनिर्धारित किया जाता है और यह वाद तद्नुसार खारिज किया जाता है; सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड और अन्य वादियों द्वारा संस्थित कराए गए वाद संख्या 4 को परिसीमा के भीतर अभिनिर्धारित किया जाता है । उच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हुए पारित किए गए निर्णय कि वाद संख्या 4 परिसीमा द्वारा बाधित है, पलटा जाता है; वाद संख्या 5 को परिसीमा के भीतर अभिनिर्धारित किया जाता है । वाद संख्या 5 को प्रथम वादी, जिसका प्रतिनिधित्व तृतीय वादी द्वारा किया गया, की प्रार्थना के आधार पर पोषणीय अभिनिर्धारित करता है । इस वाद के प्रार्थना खंडों (क) और (ख) के निबंधनों के

अनुसार, निम्नलिखित निर्देशों के अध्यधीन रहते हुए डिक्री पारित की जाती है – केंद्रीय सरकार इस निर्णय की तारीख से तीन माह की अवधि के भीतर 1993 के अयोध्या में कतिपय क्षेत्र अर्जन अधिनियम की धारा 6 और धारा 7 के अधीन उसमें निहित शक्तियों के मतावलंबन में एक योजना विरचित करेगी । यह योजना धारा 6 के अधीन न्यासियों के निकाय सहित एक न्यास या किसी अन्य समुचित निकाय को स्थापित किए जाने के लिए उपबंधित करेगी । केंद्रीय सरकार द्वारा विरचित की गई यह योजना न्यास के प्रबंधन से संबंधित मामलों को सम्मिलित करते हुए न्यास या निकाय के कार्यों, मंदिर के निर्माण को सम्मिलित करते हुए न्यासियों की शक्तियों और समस्त आवश्यक, आनुषांगिक और अनुपूरक मामलों के संबंध में आवश्यक उपबंध विरचित करेगी; भीतरी और बाहरी आंगनों का कब्जा न्यास के न्यासियों के निकाय या इस प्रयोजनार्थ गठित किसी निकाय को सौंप दिया जाएगा । केंद्रीय सरकार को उपरोक्त निर्देशों के अनुसार विरचित योजना के निबंधनों के अनुसार अर्जित शेष भूमि के प्रबंधन और विकास के प्रयोजनार्थ न्यास या निकाय को सौंपे जाने के द्वारा उसके संबंध में उपयुक्त उपबंध विरचित करने की स्वतंत्रता होगी; और विवादित भूमि का कब्जा केंद्रीय सरकार के अधीन कानूनी रिसीवर में निहित रहेगा, जब तक कि 1993 के अयोध्या अधिनियम की धारा 6 के अधीन वह अपनी अधिकारिता के प्रयोग में है, न्यास या अन्य निकाय में संपत्ति के निहितार्थ अधिसूचना जारी की जाती है । उपरोक्त खंड 2 के अधीन न्यास या निकाय को विवादित संपत्ति सौंपे जाने के साथ-साथ पांच एकड़ की माप वाली भूमि का एक उपयुक्त भूखंड वाद संख्या 4 के वादी सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड को सौंप दिया जाएगा । भूमि आबंटित की जाएगी – केंद्रीय सरकार द्वारा 1993 के अयोध्या अधिनियम के अधीन अर्जित भूमि में से; या उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा अयोध्या में उपयुक्त प्रमुख स्थान पर; केंद्रीय सरकार और राज्य सरकार एक दूसरे के साथ मंत्रणा करके अनुध्यात अवधि के भीतर उपरोक्त आबंटन को प्रभावी करने का कार्य करेंगे; सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड को भूमि के इस प्रकार से आबंटन पर यह स्वतंत्रता होगी कि वे इस भूमि पर मस्जिद के निर्माण और साथ ही अन्य सहबद्ध सुविधाओं के लिए समस्त आवश्यक कार्रवाई करें; वाद संख्या 4 उपरोक्त निर्देशों के निबंधनों के अनुसार इस सीमा तक डिक्री किया जाता है; और वाद संख्या 4 में सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड के पक्ष में भूमि के आबंटन के लिए निर्देश इस न्यायालय में संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन निहित

शक्तियों के मतावलंबन में जारी किए गए । हम संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन इस न्यायालय में निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए निर्देशित करते हैं कि केंद्रीय सरकार द्वारा विरचित योजना के अंतर्गत स्थापित न्यास या निकाय में निर्मोही अखाड़ा को पर्याप्त प्रतिनिधित्व उस तरीके में प्रदान किया जाएगा जैसा केंद्रीय सरकार उचित प्रतीत करें । वाद संख्या 1 में विवादित संपत्ति पर उपासना करने के वादी के अधिकार की पुष्टि शांति और व्यवस्था को बनाए रखे जाने के संबंध में और सुव्यवस्थित तरीके से उपासना का निर्वहन किए जाने के प्रयोजनार्थ सुसंगत प्राधिकारियों द्वारा अधिरोपित निर्बंधनों के अध्यधीन रहते हुए की जाती है । (पैरा 805)

समस्त अपीलें उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए निस्तारित की जाती है । पक्ष अपनी-अपनी लागत स्वयं वहन करेंगे । वर्तमान मामले के तथ्य, साक्ष्य और मौखिक दलीलों में इतिहास, पुरातत्वशास्त्र, धर्म और विधि के क्षेत्रों को खंगाला गया है । विधि को इतिहास, विचारधारा और धर्म के संबंध में राजनैतिक प्रतिद्वंदिताओं से पृथक् रहना चाहिए । हमको पुरातात्विक आधारों के संदर्भों से परिपूर्ण किसी मामले में यह स्मरण रखना चाहिए कि यह विधि ही है, जो वह बुनियाद उपलब्ध कराती है, जिस पर हमारा बहुसांस्कृतिक समाज खड़ा होता है । विधि उस आधार का सृजन करती है, जिसके ऊपर इतिहास, सिद्धांतवाद और धर्म के विविध लक्षण एक दूसरे के विरुद्ध प्रतियोगी बन जाते हैं । इस न्यायालय को अंतिम मध्यस्थ के रूप में उनकी सीमाओं को विनिर्धारण करते हुए भाव के इस संतुलन को संरक्षण प्रदान करना चाहिए कि एक नागरिक का विश्वास दूसरे की स्वतंत्रता और विश्वास में मध्यक्षेप न कर सके या उस पर अधिपत्य न जमा सके । भारत ने तारीख 15 अगस्त, 1947 को एक राष्ट्र के रूप में आत्मनिर्णय की धारणा को समझा । हमने तारीख 26 जनवरी, 1950 को उन मूल्यों, जो हमारे समाज को परिभाषित करते हैं, की अटूट प्रतिबद्धता के रूप में स्वयं को भारत का संविधान प्रदान किया । संविधान के केंद्र में समानता की प्रतिबद्धता है, जिसे विधि के नियम द्वारा मान्य ठहराया गया है और प्रवर्तित किया है । हमारे संविधान के अधीन सभी आस्थाओं, विश्वासों और संप्रदायों के नागरिक, जो दिव्य उद्गम की ईप्सा करते हैं, विधि के अधीन और विधि के समक्ष, दोनों के समक्ष समान हैं । इस न्यायालय के प्रत्येक न्यायाधीश को न केवल संविधान और उसके मूल्यों को सर्वोपरि रखने

का कार्य सौंपा गया है बल्कि उसने संविधान और उसके मूल्यों को सर्वोपरि रखने की शपथ भी ली है । संविधान किसी एक धर्म और अन्य धर्म की आस्था और विश्वास के मध्य अंतर नहीं करता । विश्वासों, उपासना और प्रार्थना के समस्त स्वरूप समान हैं । वे, जो संविधान के निर्वचन के कर्तव्याधीन, उसे प्रवर्तित करते हैं और उसके साथ वचनबद्ध रहते हैं और जो इसका अनदेखा करते हैं, केवल हमारे समाज और राष्ट्र के जोखिम पर ही ऐसा कर सकते हैं । संविधान न्यायाधीशों से वार्ता करता है, जो इसका निर्वचन उन लोगों के लिए करते हैं, जो इसके अधीन शासन करते और इसे प्रवर्तित करते हैं, किंतु इन सब बातों के अलावा उन नागरिकों से भी वार्ता करता है, जो इसके साथ उनके जीवन के अपरिहार्य लक्षण के रूप में सहबद्ध होते हैं । वर्तमान मामले में इस न्यायालय को अद्वितीय आयाम के न्यायनिर्णयक कार्य का निर्वहन करना है । यह विवाद अचल संपत्ति का विवाद है । यह न्यायालय आस्था और विश्वास के आधार पर हक का निर्णय नहीं करती बल्कि साक्ष्य के आधार पर करता है । विधि हमको वे मानदंड उपलब्ध कराती है, जो न केवल स्पष्ट हो बल्कि स्वामित्व और कब्जे की भांति प्रगाढ़ भी हों । न्यायालय विवादित संपत्ति के हक का निर्णय किए जाने के प्रयोजनार्थ साक्ष्य के स्थिरीकृत सिद्धांतों को लागू करती है ताकि इस बाबत न्यायनिर्णयन किया जा सके कि किस पक्ष ने अचल संपत्ति के संबंध में दावे को साबित किया है । अधिसंभाव्यताओं के संतुलन के आधार पर यह उपदर्शित किए जाने के प्रयोजनार्थ स्पष्ट साक्ष्य उपलब्ध हैं कि हिंदुओं द्वारा बाहरी बरामदे में उपासना वर्ष 1857 में दीवार के ऊपर लोहे की जाली स्थापित किए जाने के बावजूद निरंतर रूप से और बिना किसी रोकटोक के जारी रही । बाहरी बरामदे में उनका कब्जा उन घटनाओं से स्थापित हो जाता है, जिनके कारण उस पर उनके नियंत्रण को कुर्क कर दिया गया था । जहां तक भीतरी बरामदे का प्रश्न है, अधिसंभाव्यताओं की प्रबलता के आधार पर अंग्रेजों द्वारा वर्ष 1857 में अवध को अपने साम्राज्य में मिला लेने के पूर्व हिंदुओं द्वारा उपासना को साबित किए जाने के प्रयोजनार्थ साक्ष्य उपलब्ध हैं । मुस्लिमों ने यह उपदर्शित किए जाने के प्रयोजनार्थ कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया है कि वे सोलहवीं शताब्दी में निर्माण की तारीख से वर्ष 1857 के पूर्व भीतरी ढांचे के कब्जे में अनन्य रूप से थे । दीवार के ऊपर लोहे की जाली स्थापित किए जाने के पश्चात् मस्जिद का ढांचा विद्यमान बना रहा

और यह उपदर्शित किए जाने के प्रयोजनार्थ साक्ष्य उपलब्ध हैं कि इसके अहाते के भीतर नमाज अदा की जाती थी । दिसंबर, 1949 की वक्फ़ निरीक्षक की रिपोर्ट से यह उपदर्शित होता है कि मस्जिद में नमाज अदा किए जाने के प्रयोजनार्थ मुस्लिमों के स्वतंत्र और अबाधित प्रवेश में बाधा उत्पन्न की जा रही थी । तथापि, यह दर्शित किए जाने के प्रयोजनार्थ साक्ष्य उपलब्ध हैं कि मस्जिद के ढांचे में नमाज अदा की जा रही थी और शुक्रवार की अंतिम नमाज तारीख 16 दिसंबर, 1949 को अदा की गई थी । उपासना और कब्जे से मुस्लिमों का अपवर्जन तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 की मध्यवर्ती रात्रि में घटित हुआ, जब मस्जिद में हिंदू मूर्तियां स्थापित किए जाने के द्वारा अपवित्र कर दिया गया । उस अवसर पर मुस्लिमों की बेदखली किसी विधिक प्राधिकार के अंतर्गत नहीं थी बल्कि एक ऐसे कार्य के द्वारा थी, जो उनको उनके उपासना स्थल से वंचित किए जाने के लिए पहले से सोचा हुआ कार्य था । वर्ष 1898 की दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन कार्यवाहियां आरंभ किए जाने के पश्चात् और भीतरी बरामदे की कुर्की के पश्चात् रिसीवर की नियुक्ति की गई थी और हिंदू मूर्तियों की उपासना की अनुज्ञा प्रदान कर दी गई थीं । वाद के लंबन के दौरान मस्जिद का संपूर्ण ढांचा सार्वजनिक उपासना स्थल को ढहाए जाने की पहले से सोची-समझी रणनीति के अंतर्गत ढहा दिया गया । मुस्लिमों को उस मस्जिद से, जिसका निर्माण 450 वर्ष पूर्व हुआ था, से दोषपूर्ण ढंग से वंचित किया गया । हमने पहले ही यह निष्कर्ष निकाल लिया है कि उच्च न्यायालय द्वारा तीन भागों में विभाजन अवैध था और मान्य ठहराए जाने योग्य नहीं है । यदि यह मान भी लिया जाए कि यह लोक शांति और समरसता को बनाए रखे जाने का मामला था, तो भी जो समाधान उच्च न्यायालय द्वारा निकाला गया, व्यवहार्य नहीं है । विवादित स्थल की माप 1500 वर्ग गज है । इस भूमि को विभाजित करने से किसी भी पक्ष का हित पूर्ण नहीं होगा या शांति और समरसता का अंतिम भाव सुनिश्चित नहीं होगा । वाद संख्या 5 प्रथम वादी (भगवान राम के देवता), जो विधिक व्यक्ति हैं, की तरफ से फाइल किया गया, को पोषणीय अभिनिर्धारित किया गया है । तृतीय वादी (वादमित्र) के बाबत यह अभिनिर्धारित किया गया है कि वे प्रथम वादी का प्रतिनिधित्व करने के हकदार हैं । हमारा यह मत है कि एक तरफ तो डिक्री द्वारा यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि वाद संख्या 5 और वाद संख्या 4 को मस्जिद के निर्माण और

सहबद्ध क्रियाकलापों के लिए मुस्लिमों को अनुकल्पिक भूमि के आबंटन हेतु निर्देशित किए जाने के प्रयोजनार्थ भागत: डिक्री किया जाना चाहिए । मुस्लिमों को भूमि का आबंटन आवश्यक है क्योंकि यद्यपि अधिसंभाव्यताओं के संतुलन के आधार पर संपूर्ण सम्मिश्र विवादित संपत्ति पर हिंदुओं के कब्जाधारी दावे के संबंध में साक्ष्य मुस्लिमों द्वारा प्रस्तुत किए साक्ष्य के मुकाबले बेहतर अवस्था में है और मुस्लिमों को तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 को मस्जिद के अपवित्रीकरण पर बेदखल कर दिया गया था और अंतत: तारीख 6 दिसंबर, 1992 को ध्वस्त कर दिया गया था । मुस्लिमों द्वारा मस्जिद का अधित्यजन नहीं किया गया । अत: यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए यह सुनिश्चित करती है कि कारित किए गए दोष के प्रति अनुतोष प्रदान किया जाना चाहिए । न्याय नहीं होगा यदि न्यायालय मुस्लिमों, जिनको मस्जिद के ढांचे से ऐसी रीति में वंचित कर दिया गया है, जिसे एक पंथनिरपेक्ष राष्ट्र में, जो विधि के नियम को समर्पित है, अपनाया नहीं जाना चाहिए था, के हक का अनदेखा करती है । संविधान में समस्त आस्थाओं के प्रति समानता अनुध्यात है । सहिष्णुता और परस्पर सह विद्यमानता हमारे देश और इसके लोगों की पंथनिरपेक्ष प्रतिबद्धता को पोषित करते हैं । सम्मिश्रित (विवादित) स्थल का क्षेत्रफल लगभग 1500 वर्ग गज है । आबंटित की जाने वाली भूमि का क्षेत्रफल विनिर्धारित करते हुए यह आवश्यक है कि मुस्लिम समुदाय को उनके उपासना स्थल के विधिविरुद्ध तरीके से विध्वंस के बदले में पुनर्स्थापन का अवसर प्रदान किया जाए । वह अनुतोष, जो मुस्लिमों को प्रदान किया जाना है, की प्रकृति पर विचार करते हुए हम यह निर्देशित करते हैं कि सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड को पांच एकड़ भूमि या तो केंद्रीय सरकार द्वारा अर्जित भूमि में से या उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा अयोध्या नगर के भीतर आबंटित की जाएगी । यह प्रक्रिया और इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड को भूमि का कब्जा सौंपे जाने का कार्य वाद संख्या 5 में डिक्री पारित किए जाने को दृष्टि में रखते हुए विवादित स्थल वाली भूमि के भीतरी और बाहरी बरामदों वाली भूमि को सम्मिलित करते हुए सौंपे जाने के साथ-साथ किया जाएगा । वाद संख्या 4 उपरोक्त निबंधनों के आधार पर डिक्री हो जाएगा । वर्ष 1993 के अयोध्या में कतिपय क्षेत्र अर्जन अधिनियम केंद्रीय सरकार को यह निर्देशित करने के लिए सशक्त करता है कि

विवादित क्षेत्र या उसके किसी भाग के संबंध में अधिकार हक या हित केंद्रीय सरकार में निहित रहने के बजाय किसी न्यास, जो उन निबंधनों और शर्तों का अनुपालन करने के लिए इच्छुक हो, जिन्हें सरकार अधिरोपित करे, के प्राधिकारी या निकाय या न्यासियों में निहित होगा । उक्त अधिनियम की धारा 7(1) उपबंधित करती है कि अधिनियम की धारा 3 के अधीन केंद्रीय सरकार में निहित संपत्ति को केंद्रीय सरकार या इस संबंध में किसी व्यक्ति या किसी न्यास के न्यासियों, प्राधिकारियों द्वारा संभाला जाएगा । हमारा यह विचार है कि केंद्रीय सरकार को धारा 6 और 7 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए एक योजना विरचित किए जाने के लिए निर्देशित किया जाना आवश्यक होगा ताकि एक न्यास या किसी अन्य समुचित तंत्र को स्थापित किया जा सके, जिसको वाद संख्या 5 में पारित डिक्री के निबंधनों के अनुसार भूमि सौंपी जा सके । इस योजना में वे समस्त उपबंध सम्मिलित होंगे, जो न्यास या निकाय, जिसका चयन भूमि के निहितार्थ किया जाएगा, के प्रबंध के संबंध में शक्ति और प्राधिकार निहित करने के लिए आवश्यक होंगे । निर्मोही अखाड़ा द्वारा फाइल किए गए वाद संख्या 3 को परिसीमा द्वारा बाधित अभिनिर्धारित किया गया है । हमने वाद संख्या 5 की पोषणीयता के संबंध में निर्मोही अखाड़ा और सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड द्वारा फाइल किए गए ऐतराज, जो उनके इस अभिवाक् पर आधारित था कि निर्मोही अखाड़ा शिबायत है, को अस्वीकृत भी कर दिया है । निर्मोही अखाड़ा का शिबायत का दावा अस्वीकृत किया जाता है । तथापि, विवादित स्थल पर निर्मोही अखाड़ा की ऐतिहासिक उपस्थिति और उनकी भूमिका को ध्यान में रखते हुए इस न्यायालय के लिए यह आवश्यक है कि पूर्ण न्याय करने के प्रयोजनार्थ अनुच्छेद 142 के अधीन प्रदत्त शक्तियों का आश्रय लिया जाए । इसलिए, हम निर्देशित करते हैं कि इस योजना को विरचित किए जाने के प्रयोजनार्थ निर्मोही अखाड़ा को इसके प्रबंधन में समुचित भूमिका समनुदेशित की जाएगी । (पैरा 806, 795, 796, 797, 798, 799, 800, 801, 802, 803 और 804)

रामलला की शाश्वत अवयस्कता

विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री सी. एस. वैद्यनाथन ने दलील दी कि विधिक संकल्पना के आधार पर मूर्ति अवयस्क है । इसलिए, किसी अवयस्क के विरुद्ध प्रतिकूल स्वत्व अर्जित नहीं किया जा सकता ।

विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल डा. राजीव धवन ने निवेदन किया कि यद्यपि देवता को बिना किसी मानवीय अभिकरण की सहायता के उनके द्वारा वाद फाइल किए जाने में असमर्थता के कारण अवयस्क माना जाता है, फिर भी देवता परिसीमा के प्रयोजनों को ध्यान में रखते हुए अवयस्क नहीं हैं । उन्होंने निवेदन किया कि विश्वनाथ बनाम श्री ठाकुर राधा वल्लभजी वाले मामले में दिया गया आदेश कि अवयस्क शाश्वत रूप से अवयस्क हैं, परिसीमा के संदर्भ में पारित किया गया आदेश नहीं था । विश्वनाथ बनाम श्री ठाकुर राधा वल्लभजी वाले मामले में इस न्यायालय को इस प्रश्न को निर्णीत करना था कि क्या कोई उपासक मूर्ति की तरफ से बेदखली के लिए वाद फाइल कर सकता है, यदि शिबायत मूर्ति के हितों के प्रतिकूल कार्य कर रहा है । मुख्य न्यायमूर्ति सुब्बा राव ने इस न्यायालय के दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ की तरफ से न्याय पारित करते हुए यह अभिनिर्धारित किया – "प्रश्न यह उद्भूत होता है कि जब शिबायत मूर्ति के हितों के प्रतिकूल कार्य कर रहा हो और उसके हितों की रक्षा के लिए कार्रवाई करने में विफल हो गया हो, तो क्या कोई व्यक्ति मूर्ति का प्रतिनिधित्व कर सकता है । सिद्धांतत:, हम उपासक के ऐसे किसी अधिकार से इनकार किए जाने का कोई न्यायोचित्य नहीं पाते । मूर्ति अवयस्क की स्थिति में होती है और जब उसका प्रतिनिधित्व करने वाला व्यक्ति उसको संकट में छोड़ देता है, तब मूर्ति की उपासना में हितबद्ध व्यक्ति को निश्चित रूप से उसके हितों के संरक्षण के लिए प्रतिनिधित्व की तदर्थ शक्ति प्रदान की जानी चाहिए । यह व्यावहारिक भी है और कठिन स्थिति का विधिक हल भी । क्या यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि कोई शिबायत, जिसने संपत्ति अंतरित की, को ही उस संपत्ति की पुनर्प्राप्ति के लिए वाद फाइल करना चाहिए, अधिकांश मामलों में यह शिबायत के अपने कर्तव्यों के त्याग का अप्रत्यक्ष रूप से अनुमोदन होगा, चूंकि अधिकांश मामलों में वह अपनी चूक को स्वीकार नहीं करेगा और अन्य अनेक तकनीकी अभिवाकों का आश्रय, जो किसी वाद में संपत्ति के लेने की स्वतंत्रता अंतरिती को होती है, को लेने के अलावा संपत्ति की पुनर्प्राप्ति के लिए कार्रवाई करेगा । क्या यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि कोई उपासक शिबायत को उसके पद से हटाए जाने और किसी अन्य शिबायत की नियुक्ति के लिए वाद फाइल कर सकता है, ताकि संपत्ति की पुनर्प्राप्ति की कार्रवाई के लिए उसको समर्थ बनाया जा सके । इस प्रकार की प्रक्रिया दीर्घकालिक

और जटिल होगी और इससे मूर्ति के हित की अपूर्णनीय क्षति होगी । यही कारण है कि ऐसी परिस्थितियों में विनिश्चयों द्वारा उपासक को मूर्ति का प्रतिनिधित्व करने और मूर्ति की तरफ से संपत्ति की पुनर्प्राप्ति के लिए कार्रवाई करने की अनुज्ञा प्रदान की गई है । अनेक विनिश्चयों में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि उपासक बंदोबस्ती की तरफ से किसी संपत्ति के कब्जे के लिए प्रार्थना करते हुए वाद फाइल कर सकते हैं ।..." उस मामले में देवता श्री ठाकुर राधा बल्लभजी, जिनका प्रतिनिधित्व वादमित्र द्वारा किया गया, द्वारा अचल संपत्ति के कब्जे और अंत:कालीन लाभ (Mesne profits) के प्रयोजनार्थ वाद संस्थित कराया गया था । वादी का पक्षकथन यह था कि द्वितीय प्रतिवादी, जो सर्वराकार और प्रबंधक था, ने संपत्ति का अन्यसंक्रामण (विक्रय) प्रथम प्रतिवादी के पक्ष में कर दिया था और उसके द्वारा किया गया विक्रय किसी अत्यावश्यकता के कारणवश या मूर्ति के लाभार्थ नहीं था और यह अन्यसंक्रामण देवता पर बाध्यकारी नहीं था । विचारण न्यायालय और अपील न्यायालय अर्थात् उच्च न्यायालय, दोनों ने अभिनिर्धारित किया कि विक्रय देवता के लाभार्थ नहीं था और विक्रय के फलस्वरूप प्राप्त किया गया प्रतिफल भी अपर्याप्त था । किंतु साथ ही यह दलील दी गई थी कि कब्जे के लिए फाइल किया गया वाद केवल शिबायत द्वारा फाइल किया जा सकता था और देवता का प्रतिनिधित्व कोई अन्य नहीं कर सकता था । इस न्यायालय ने इस संदर्भ में अभिनिर्धारित किया कि सिद्धांतत: ऐसा कोई कारण नहीं था, जिसके लिए उपासक को अन्यसंक्रामण को चुनौती देते हुए वाद फाइल करने से मना किया जाए जब शिबायत ने देवता के हित के प्रतिकूल कार्य किया हो । यह मताभिव्यक्ति परिसीमा अधिनियम के उपबंधों के संदर्भ में नहीं की गई थी कि मूर्ति अवयस्क की स्थिति में है । यह मताभिव्यक्ति इस प्रश्न को निर्णीत किए जाने के संदर्भ में की गई थी कि क्या किसी उपासक द्वारा फाइल किया गया वाद पोषणीय था, जब प्रबंधक ने देवता के हित के प्रतिकूल संपत्ति पर विचार किया । इस आदेश का अर्थान्वयन इस अर्थ में नहीं किया जा सकता कि मूर्ति अवयस्क की स्थिति में है और उसको 1963 के परिसीमा अधिनियम के लागू होने से छूट प्राप्त है । बी. के. मुखर्जी द्वारा लिखित 'द हिंदू ला आफ रिलीजियस एंड चेरिटेबल ट्रस्ट' [पांचवां संस्करण ईस्टर्न ला हाउस (1983) पृष्ठ 256-57] नामक पुस्तक में विधिक स्थिति को निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट किया है –

"हिंदू देवता की मूर्ति को कतिपय अवसरों पर शाश्वत शिशु कहा जाता है, किंतु यह समानता न केवल गलत है बल्कि निश्चित रूप से गुमराह करने वाली भी है । हिंदू विधि के नियमों में ऐसा कोई भी सिद्धांत अनपेक्षित नहीं है, जैसीकि मताभिव्यक्ति मुख्य न्यायमूर्ति रैंकिन द्वारा की गई है । सुरेन्द्र बनाम श्री श्री भुवनेश्वरी वाले मामले में इस असाधारण सिद्धांत का अवलंब लिया गया, जो ऐसे मामलों में न्यायिक समिति द्वारा दिए गए विनिश्चय के विपरीत है जैसे कि दामोदर दास बनाम लखन दास वाला मामला । यह सत्य है कि देवता भी शिशु की भांति विधिक निर्योग्यता से ग्रसित होते हैं और वे किसी अभिकर्ता के माध्यम से कार्य करते हैं और देवता के शिबायत और शिशु के संरक्षक की शक्तियों के मध्य भी समानता होती है किंतु ऐसे मामलों में वास्तव में समानता का अंत हो जाता है । जहां तक परिसीमा अधिनियम के प्रयोजनों का संबंध है मूर्ति किसी विशेषाधिकार का लाभ नहीं लेती और जहां तक संविदात्मक अधिकारों का संबंध है ऐसे मामलों में भी मूर्ति की स्थिति वही होती जो किसी अन्य नैसर्गिक व्यक्ति की होती है । अवयस्कों या अस्वस्थ मस्तिष्क वाले व्यक्तियों द्वारा फाइल किए वादों के संबंध में सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंध कम से मूर्ति पर लागू नहीं होते; और इस संकल्पना के आधार पर प्रक्रियात्मक विधि निर्मित किए जाने के प्रयोजनार्थ कि मूर्ति शिशु हैं, प्रकटत: अवांछित और विषम परिणाम उत्पन्न होंगे (अशीम कुमार बनाम नरेन्द्र नाथ, 176 सी. डब्ल्यू. एन. 1016) ।" इस मामले में एक दूरदर्शी न्यायाधीश के दूरदर्शितापूर्ण शब्द हैं । विगत अनेक वर्षों में न्यायालयों ने अवयस्क के रूप में मूर्ति की विधिक प्रकृति और इस विधिक संकल्पना के परिणामों की व्याख्या की है । वर्ष 1903-04 में प्रिवी कौंसिल ने महाराजा जगदीन्द्र नाथ राय बहादुर बनाम हिमंता कुमारी देवी वाले मामले में एक ऐसी परिस्थिति पर विचार किया, जिसमें वादी ने मूर्ति के शिबायत की हैसियत में कतिपय संपत्तियों के सांपत्तिक अधिकारों के लिए वाद संस्थित किए थे । उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि मूर्ति विधिक व्यक्ति होने के नाते संपत्ति धारित करने के समर्थ थी और उसके विरुद्ध संपत्ति की अंतरण की तारीख से परिसीमा आरंभ हो चुकी थी और इसलिए शिबायत द्वारा फाइल किया गया वाद परिसीमा द्वारा बाधित था । प्रिवी कौंसिल ने उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के साथ सहमति व्यक्त करते हुए कहा कि मूर्ति विधिक व्यक्ति होने के नाते

संपत्ति धारित करने के लिए सक्षम थी । तथापि, ऐसे मामलों में परिसीमा की बचत हो जाती है, क्योंकि जब वादकारण उद्भूत हुआ, तब वह शिबायत अवयस्क था, जिससे समर्पित संपत्ति का कब्जा और प्रबंधन संबंधित था । अतः, प्रिवी कौंसिल ने अभिनिर्धारित किया कि संपत्ति के संरक्षण के लिए वाद संस्थित करने का अधिकार मूर्ति में निहित था और यह वाद शिबायत द्वारा वयस्कता प्राप्त किए जाने की तारीख से तीन वर्ष के भीतर संस्थित कराया जा सकता था । सर आर्थर विल्सन ने मताभिव्यक्ति की – "किंतु यह उपधारणा करते हुए कि संपत्ति के धार्मिक समर्पण के कठोर प्रकृति का होने के कारण समर्पित संपत्ति का कब्जा और प्रबंधन शिबायत से संबंधित रहता है । इस अधिकार के साथ शिबायत को वे वाद फाइल करने का अधिकार भी प्राप्त हो जाता है, जो संपत्ति के संरक्षण के लिए आवश्यक है । वाद फाइल करने का ऐसा प्रत्येक अधिकार शिबायत में निहित होता है, न कि मूर्ति में । वर्तमान मामले में वादी को वाद फाइल करने का अधिकार तब उद्भूत हुआ, जब वह वयस्कता की आयु से कम उम्र का था । इसलिए यह मामला परिसीमा अधिनियम की धारा 7 की स्पष्ट भाषा के अंतर्गत आता है, जो यह कहती है कि 'जहां कि वाद संस्थित करने या डिक्री के निष्पादन के लिए आवेदन करने के लिए संयुक्ततः हकदार व्यक्तियों में से कोई एक ऐसी किसी निर्योग्यता के अधीन हो और उस व्यक्ति की सहमति के बिना उन्मोचन दिया जा सकता हो, तो वहां उन सब के विरुद्ध समय का चलना आरंभ हो जाएगा, किंतु जहां कि ऐसा उन्मोचन न दिया जा सकता हो, वहां उनमें से किसी के भी विरुद्ध तब तक समय का चलना आरंभ न होगा जब तक उनमें से कोई एक अन्यों की सहमति के बिना ऐसा उन्मोचन देने के लिए समर्थ न हो जाए या उस निर्योग्यता का अंत हो जाए', तो वह उस समय-सीमा के भीतर आयु प्राप्त करने के पश्चात् वाद संस्थित करा सकता है, जो वर्तमान मामले में तीन वर्ष होगी ।" यह अभिनिर्धारित किए जाने का आधार कि वाद परिसीमा के भीतर था, यह नहीं था कि मूर्ति परिसीमा की विधि के अध्यधीन नहीं थी, बल्कि यह था कि शिबायत वादकारण उद्भूत होने की तारीख पर अवयस्क था । वर्ष 1909-10 में प्रिवी कौंसिल द्वारा महंत दामोदर दास बनाम अधिकारी लखन दास वाले मामले में एक निर्णय पारित किया गया था, जो मठ के महंत की मृत्यु के पश्चात् वरिष्ठ चेला और कनिष्ठ चेला के मध्य मठ के उत्तराधिकार के विवाद से संबंधित था । यह विवाद तारीख 3 नवंबर,

1874 के इकरारनामा द्वारा स्थिरीकृत हो गया था । इस इकरारनामा के अंतर्गत भद्रक स्थित मठ वरिष्ठ चेला और उसके उत्तराधिकारियों को शाश्वत रूप से आबंटित कर दिया गया था, जबकि बीबीसराय स्थित मठ और उसके साथ संलग्न संपत्तियों को कनिष्ठ चेला को 'अधिकारी' की हैसियत में भद्रक मठ के खर्चों के बाबत 15 रुपए के वार्षिक संदाय पर आबंटित किया गया था । वरिष्ठ चेला की मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी द्वारा बीबीसराय स्थित मठ के कब्जे के लिए वाद संस्थित कराया गया । यह दलील दी गई कि संपत्ति उपासना और वादी की मूर्तियों की सेवा के लिए समर्पित थी और यह संपत्ति अधिकारी की हैसियत में कनिष्ठ चेला के कब्जे में थी । प्रत्यर्थी ने प्रतिरक्षा में यह दावा करते हुए परिसीमा के व्यतीत हो जाने का अभिवाक् किया कि वाद संस्थित कराए जाने के पूर्व न तो वादी और न ही उसके पूर्वाधिकारी 12 वर्षों की अवधि के भीतर कभी भी विवादित संपत्ति के कब्जे में रहे । विचारण न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि वाद परिसीमा द्वारा बाधित नहीं था, किंतु उच्च न्यायालय ने इस आधार पर डिक्री को पलट दिया कि प्रत्यर्थी ने विवादित मठ पर 12 वर्ष से अधिक अवधि तक प्रतिकूल रूप से कब्जा रखा है । प्रिवी कौंसिल ने वरिष्ठ चेला के अभिवाक् को यह अभिनिर्धारित करते हुए अस्वीकृत कर दिया कि वादकारण वरिष्ठ चेला की मृत्यु पर उद्भूत हुआ था और उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश की पुष्टि कर दी कि वाद वरिष्ठ चेला की मृत्यु के 12 वर्षों के भीतर किंतु इकरारनामा के पश्चात् 27 वर्षों के भीतर संस्थित कराए जाने के कारण परिसीमा द्वारा बाधित था । सर आर्थर विल्सन ने यह अभिनिर्धारित किया – "उच्च न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीशों ने न्यायत: अभिनिर्धारित किया है कि विधि की दृष्टि में संपत्ति, जिसका संव्यवहार इकरारनामा, जिसके निष्पादन की तारीख रजिस्ट्रीकरण की तारीख के पूर्व की थी, द्वारा किया गया था और इस संपत्ति के बारे में यह मान लिया गया था कि यह संपत्ति महंत में निहित नहीं है बल्कि एक पृथक् विधिक अस्तित्व में निहित है, जो मूर्ति है और महंत मात्र उसका प्रतिनिधि या प्रबंधक है । इससे यह अर्थ निकलता है कि विद्वान् न्यायाधीश यह अभिनिर्धारित करने में न्यायसंगत थे कि इकरारनामा की तारीख से उसके निबंधनों को ध्यान में रखते हुए कनिष्ठ चेला का कब्जा मूर्ति के अधिकार के प्रतिकूल था और वरिष्ठ चेला, जो मूर्ति का प्रतिनिधित्व कर रहा था, के अनुकूल था

और इसलिए वर्तमान वाद परिसीमा द्वारा बाधित है ।" यद्यपि उपरोक्त मताभिव्यक्तियों द्वारा इस प्रश्न पर विनिर्दिष्ट रूप से विचार नहीं किया गया कि क्या किसी मूर्ति को शाश्वत रूप से अवयस्क माना जा सकता है, फिर भी प्रिवी कौंसिल ने स्पष्ट शब्दों में अभिनिर्धारित किया कि मूर्ति के अधिकार के विरुद्ध प्रतिकूल कब्जे के अभिवाक् का आश्रय लिया जा सकता है और इसलिए वाद परिसीमा द्वारा बाधित है । छतरमल बनाम पंचूमल वाले मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने इस बात पर विचार किया कि क्या मूर्ति शाश्वत रूप से अवयस्क होने के कारण निर्योग्यता का सामना करती है और इसलिए मूर्ति द्वारा अंतरण की तारीख के पश्चात् कितने भी विलंब से फाइल किया गया वाद परिसीमा अधिनियम की धारा 7 के अधीन परिसीमा के वर्जन से सुरक्षित होगा । यह दलील निम्नलिखित मताभिव्यक्ति, जिसे शास्त्री द्वारा लिखित 'हिंदू विधि' के पांचवें संस्करण (अध्याय 14, संस्करण 5, पृष्ठ 726) में व्यक्त किया गया, पर आधारित है – "जहां तक परिसीमा का प्रश्न है, इस बात पर विचार किया जाना चाहिए कि क्या परिसीमा अधिनियम की धारा 7 किसी ऐसे वाद पर लागू होती है, जिसमें हिंदू ईश्वर से संबंधित संपत्ति को किसी शिबायत द्वारा अनुचित रूप से किए गए अन्यसंक्रामण को अपास्त किया जा सकता है । चूंकि ईश्वर अपनी संपत्ति के प्रबंधन में असमर्थ होते हैं, इसलिए उनको परिसीमा के प्रयोजनार्थ शाश्वत रूप से अवयस्क माना जाना चाहिए ।" तथापि, खंड न्यायपीठ ने अभिनिर्धारित किया – "...ससम्मान यह स्पष्ट किया जाता है कि किसी अवयस्क द्वारा किए गए अंतरण में उचित या अनुचित अन्यसंक्रामण का प्रश्न उद्भूत नहीं होगा । संविदा विधि के अंतर्गत किसी अवयस्क द्वारा किया गया अंतरण न केवल शून्यकरणीय बल्कि शून्य होता है – मोहोरी बीबी बनाम धर्मोदास घोष [(1902) आई. एल. आर. 30 कलकत्ता 539] । यदि इस नियम को प्रवर्तित किया जाता, तो मंदिर, जहां मूर्ति स्थापित है, के लाभार्थ ईश्वर की संपत्ति अंतरित किए जाने की आवश्यकता उत्पन्न होने पर इस संपत्ति का कोई मूल्य प्राप्त न होता ... अत: हम स्पष्ट प्राधिकार के साथ वादी की इस दलील को स्वीकार करने से इनकार करते हैं ।" इस विचार को स्वीकार करते हुए उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने महाराजा जगदीन्द्र नाथ और दामोदर दास वाले मामले में प्रिवी कौंसिल द्वारा दिए गए विनिश्चयों का अवलंब लिया । शाश्वत रूप से अवयस्कता की संकल्पना

को मद्रास उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा रमा रेड्डी बनाम रंगादसान वाले मामले में स्वीकार किया था । इस मामले में वादी ने उसके एक पूर्वज को वादग्रस्त मंदिर के प्रबंधक की हैसियत में प्रदान की गई संपत्ति के कब्जे की पुनर्प्राप्ति के लिए इस मंदिर के वर्तमान पुजारी और न्यासी होने के नाते वर्ष 1918 में एक वाद संस्थित कराया था । विवादित संपत्ति प्रतिवादी संख्या 1 और 2 (वादी के पिता और चाचा) द्वारा प्रतिवादी संख्या 3 को वर्ष 1893 में विक्रय कर दी गई थी । वादी की दलील यह थी कि यह संपत्ति उनके परिवार को पुजारी के रूप में सेवाएं प्रदान करने के लिए सेवा के बदले ईनाम के रूप में प्रदान की गई थी और इस संपत्ति का अन्यसंक्रामण अवैध है । जिला मुंसिफ ने वाद को परिसीमा द्वारा बाधित होने के कारण खारिज कर दिया और अपील में अधीनस्थ न्यायाधीश ने जिला मुंसिफ द्वारा पारित निर्णय को पलट दिया और वाद को प्रतिप्रेक्षित कर दिया । जिला मुंसिफ ने वाद को पुन: खारिज कर दिया और अपील में जिला न्यायाधीश ने डिक्री की पुष्टि कर दी । निचली अपीली न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि वादी वादग्रस्त संपत्ति का पुजारी और न्यासी था और अभिनिर्धारित किया कि वादग्रस्त संपत्ति मंदिर के साथ संलग्न थी । वादी ने द्वितीय अपील फाइल की, जिसको एकल न्यायाधीश द्वारा सुना गया और जिसने अभिनिर्धारित किया कि वाद परिसीमा द्वारा बाधित नहीं है । खंड न्यायपीठ को विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई लेटर्स पेटेंट अपील में यह अभिनिर्धारित करना था कि क्या वाद परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 134 या 144 द्वारा बाधित है । उच्च न्यायालय ने विद्या वारुथी तीर्थ बनाम बालूसामी अय्यर वाले मामले में दिए गए विनिश्चय में यह उल्लेख किया है कि यदि प्रिवी कौंसिल ने यह अभिनिर्धारित कर दिया कि मठ की संपत्ति का स्थाई पट्टा प्रदान करने वाले के जीवनकाल के परे उस संपत्ति में कोई हित सृजित नहीं कर सकता और परिणामस्वरूप अनुच्छेद 134 संपत्ति की पुनर्प्राप्ति के लिए प्रदानकर्ता के उत्तराधिकारी द्वारा फाइल किए गए वाद में लागू नहीं होगी । उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि कोई न्यासी किसी अंतरिती को विधिमान्य स्वत्व अंतरित नहीं कर सकता, इसलिए अनुच्छेद 134 लागू होगी । उच्च न्यायालय ने उल्लेख किया कि प्रतिकूल कब्जे का सिद्धांत ऐसे मामलों में लागू होगा, जिनमें कोई व्यक्ति, जिसे अपने स्वत्व का दृढ़तापूर्वक दावा करना चाहिए, परिसीमा

अधिनियम के अनुच्छेद 144 के अधीन अनुध्यात अवधि के भीतर ऐसा नहीं करता । न्यायमूर्ति देवदास ने मूर्ति के संबंध में यह अभिनिर्धारित किया – "विधिक संकल्पना यह है कि मूर्ति सदैव अवयस्क रहती है और उसको शाश्वत संरक्षण के अंतर्गत रहना होता है और ऐसी स्थिति में यह नहीं कहा जा सकता कि मूर्ति भी कभी वयस्कता प्राप्त कर सकती है और कोई व्यक्ति, जो किसी मंदिर के न्यासी से स्वत्व अर्जित करता है, मूर्ति के हित के प्रतिकूल कोई स्वत्व अर्जित नहीं कर सकता, क्योंकि मूर्ति सदैव अवयस्क है और उत्तराधिकारी न्यासी किसी भी समयबिंदु पर मूर्ति की तरफ से उसकी संपत्ति की पुनर्प्राप्ति कर सकता है ।" उच्च न्यायालय ने विनिर्धारित किया कि प्रबंधक मूर्ति की संपत्ति के स्वत्व के प्रतिकूल स्वत्व स्थापित नहीं कर सकता । न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि प्रबंधक अपने किसी कार्य के परिणामस्वरूप किसी ऐसे व्यक्ति को अनुज्ञा नहीं प्रदान कर सकता, जो उससे प्रतिकूल स्वत्व के दावे के प्रयोजनार्थ स्वत्व प्राप्त करता है । कलकत्ता उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने सुरेन्द्र कृष्ण राय बनाम श्री श्री ईश्वर भुवनेश्वरी ठकुरानी वाले मामले में अभिनिर्धारित किया कि जब किसी मूर्ति को समर्पित संपत्ति पर प्रतिकूल रूप से कब्जा कर लिया जाता है और कब्जा करने वाले व्यक्ति का मूर्ति के साथ कोई वैश्वासिक संबंध नहीं होता, तो परिसीमा की गणना आरंभ हो जाएगी और परिसीमा अधिनियम की धारा 144 द्वारा शासित होगी । शाश्वत अवयस्कता के विवाद्यक पर मुख्य न्यायमूर्ति रैकिंन ने यह अभिनिर्धारित किया – "यह सिद्धांत कि मूर्ति शाश्वत रूप से अवयस्क है, मेरे निर्णय में असाधारण सिद्धांत है, जो ऐसे मामलों में जैसेकि दामोदर दास बनाम लखन दास वाले मामले [(1910) 37 कलकत्ता 885 = 37 आई. ए. 5147 = 7 आई. सी. 240 (पी. सी.)] में न्यायिक समिति के विनिश्चय के विपरीत है । बंदोबस्ती में हितबद्ध शिबायतों या किसी अन्य व्यक्ति को यह अधिकार है कि वे प्रथम बार समर्पित संपत्तियों के प्रयोजनार्थ मूर्ति की संपत्ति की पुनर्प्राप्ति के लिए वाद फाइल करें ..." प्रिवी कौंसिल द्वारा उच्च न्यायालय के विनिश्चय की पुष्टि श्री श्री ईश्वरी भुवनेश्वरी ठकुरानी बनाम ब्रोजोनाथ डे वाले मामले में की गई । (पैरा 412, 413, 414, 415, 416, 417, 418, 419 और 420)

प्रिवी कौंसिल ने द मॉस्क, मस्जिद शहीदगंज बनाम शिरोमणि

गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, अमृतसर वाले मामले में इस प्रश्न पर विचार किया कि क्या मस्जिद को विधिक व्यक्ति माना जा सकता है और उसको प्रतिकूल कब्जे के अध्यधीन रखा जा सकता है । सर जॉर्ज रैकिंन ने यह मताभिव्यक्ति की कि "यह माननीय न्यायाधीशों के लिए कौतूहल का मामला है कि मुस्लिमों के लिए प्रार्थना स्थल के रूप में समर्पित किसी भवन और हिंदू धर्म के व्यक्तिगत देवताओं की विधिक स्थिति के मध्य अनुमानित सादृश्य होना चाहिए । यह प्रश्न प्रक्रिया का प्रश्न है कि क्या ब्रिटिश भारत के न्यायालय किसी मस्जिद को न्यायिक दृष्टि में सुने जाने के अधिकार-प्राप्त व्यक्ति के रूप में मान्यता प्रदान करेंगे । ब्रिटिश भारत में न्यायालय प्रक्रिया के मामलों में मोहम्मडन विधि का अनुसरण नहीं करते । [जाफरी बेगम **बनाम** अमीर मोहम्मद खान, आई. एल. आर. 7 इलाहाबाद 822 पृष्ठ 841, 842 (1885)] । न्यायमूर्ति महमूद के अनुसार ब्रिटिश भारत में न्यायालय साक्ष्य के प्राचीन मोहम्मडन नियमों को मोहम्मडन दांडिक विधि में लागू करते हैं । तत्समय प्रवृत्त हिंदू या मोहम्मडन विधि लागू किए जाने के प्रयोजनार्थ न्यायालयों की प्रक्रिया उन विधियों के अनुसार यथोचित होनी चाहिए, जिनको वे लागू करते हैं । अत: भारत में हिंदू धर्म के अनेकेश्वरवाद और अन्य लक्षणों के बाबत प्रक्रिया अनिवार्य रूप से लागू होती है, जो हिंदू विधि के कतिपय सिद्धांतों को उनके अनिवार्य अंगों के रूप में मान्यता प्रदान करती है । जैसेकि किसी मूर्ति को संपत्ति के स्वामी के रूप में मान्यता । हमारे न्यायालयों की प्रक्रिया मूर्ति या देवता के नाम में वाद फाइल करने की अनुज्ञा प्रदान करती है, यद्यपि, वास्तव में वाद फाइल करने का अधिकार शिबायत में निहित होता है [जगदीन्द्रनाथ **बनाम** हिम्मता कुमार, एल. आर. 31 आई. ए. 203 = एस. सी. 8 सी. डब्ल्यू. एन. 609 (1605)] । इन सिद्धांतों का आश्रय अत्यंत विचार किए जाने योग्य कठिनाइयों की स्थिति में लिया जाता है, विशेष रूप से जहां तक देवता और देवता की छवि के मध्य भेद, यदि कोई हो, का संबंध है भूपतिनाथ **बनाम** रामलाल, 1 एल. आर. 37 कलकत्ता 128, 153 = एस. सी. 14 सी. डब्ल्यू. एन. 18, 1910 : गोलपचंद्र सरकार शास्त्री द्वारा लिखित 'हिंदू विधि' सातवां संस्करण, पृष्ठ 865 । किंतु इस बाबत कभी कोई संदेह नहीं रहा है कि किसी ठाकुबाड़ी को सम्मिलित करते हुए हिंदू धार्मिक बंदोबस्ती की संपत्ति परिसीमा विधि के अध्यधीन होती है [दामोदर दास **बनाम** लखन दास, एल. आर. 37 आई. ए. 147

= एस. सी. 14 सी. डब्ल्यू. एन. 889, 1810 और श्री श्री ईश्वरी भुवनेश्वरी ठकुरानी **बनाम** ब्रोजोनाथ डे, एल. आर. 64 आई. ए. 203 = एस. सी. 41 सी. डब्ल्यू. एन. 968, 1937] विशेष रूप से हिंदू विधि से संबंधित इस विचार विमर्श से काल्पनिक व्यक्तियों को आमंत्रित किए जाने के प्रयोजनार्थ कोई सामान्य अनुज्ञप्ति अभिप्राप्त नहीं की जा सकती ...।" "अब सिखों के कब्जे वाली जो संपत्ति विवादित है, वह वक्फ़ के कब्जे के प्रतिकूल सिखों के कब्जे में है और इस संपत्ति पर सिखों का 12 वर्षों से अधिक अवधि से कब्जा है और वक्फ़ के प्रयोजनार्थ कब्जे के बाबत मुतवल्ली के अधिकार परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 144 के अधीन समाप्त हो चुके हैं और व्यवस्थापक या वक्फ़ से समर्पण के अंतर्गत अभिप्राप्त स्वत्व धारा 28 के अधीन विलुप्त हो गया है । अब यह संपत्ति ब्रिटिश भारतीय न्यायालयों के किसी भी प्रयोजन के लिए ईश्वर की संपत्ति नहीं रही है, जिसके परिणामस्वरूप इसका लाभ इसके व्यवस्थापकों को मिला ...।" तरित भूषण राय बनाम श्री श्री ईश्वर श्रीधर शालीग्राम शिला ठाकुर वाले मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा दिए गए निर्णय में न्यायमूर्ति नसीम अली ने हिंदू विधि में किसी अवयस्क और मूर्ति की स्थिति के मध्य समानताओं और विभेद के बिंदुओं का उल्लेख किया – "किसी अवयस्क और हिंदू मूर्ति के मध्य समानता के बिंदु हैं – दोनों में संपत्ति का स्वामित्व धारण करने की क्षमता होती है, दोनों अपनी-अपनी संपत्तियों के प्रबंधन और हितों के संरक्षण के लिए सक्षम होते हैं, दोनों की संपत्तियां अन्य मनुष्यों द्वारा प्रबंधित और संरक्षित की जाती हैं । किसी अवयस्क का प्रबंधक उसका विधिक संरक्षक होता है जबकि किसी मूर्ति का प्रबंधक उसका शिबायत होता है, उनके प्रबंधकों की शक्तियां समान होती हैं, दोनों को वाद फाइल करने के अधिकार प्राप्त होते हैं, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 9 और धारा 11 का वर्जन दोनों पर लागू होता है । दोनों के मध्य विभेद के बिंदु हैं – हिंदू मूर्ति विधिक या कृत्रिम व्यक्ति होती है, किंतु अवयस्क नैसर्गिक व्यक्ति होता है, हिंदू मूर्ति अपने स्वयं के हित और साथ ही उपासकों के हितों के लिए विद्यमान होती है किंतु अवयस्क किसी अन्य के हितों के लिए विद्यमान नहीं होता, संविदा अधिनियम (जो सारभूत विधि है) ने अवयस्क की संविदा करने की विधिक हैसियत समाप्त कर दी है किंतु इस अधिनियम या किसी अन्य कानून द्वारा हिंदू मूर्ति की संविदा करने

की विधिक हैसियत प्रभावित नहीं हुई है, परिसीमा अधिनियम (जो कि विशेषण कानून है) ने अवयस्क को परिसीमा के वर्जन के क्रियान्वयन से मुक्त कर दिया है किंतु यह संरक्षण हिंदू देवता को विस्तारित नहीं किया गया है । उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट है कि अवयस्क और हिंदू मूर्ति के मध्य कुछ सादृश्य है, किंतु हिंदू मूर्ति न तो अवयस्क होती है और न ही शाश्वत रूप से अवयस्क होती है ।" उड़ीसा उच्च न्यायालय के समक्ष राधाकृष्ण दास बनाम राधारमण स्वामी वाले मामले में देवता के वादमित्र द्वारा वादी देवता को उनके प्रतिष्ठापन के मूल स्थान पर पुनर्स्थापन के लिए निर्देशित किए जाने के प्रयोजनार्थ डिक्री की ईप्सा करते हुए वाद संस्थित कराया गया था । उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने अभिनिर्धारित करते हुए कि किसी मूर्ति को परिसीमा के प्रयोजनार्थ शाश्वत रूप से अवयस्क नहीं माना जा सकता और वादी के इस दलील को अस्वीकृत कर दिया कि देवता को उनके मंदिर में स्थापित किए जाने के अधिकार देवता द्वारा स्वयमेव कुछ भी कर पाने में असमर्थ होने के कारण सतत प्रकृति के अधिकार हैं । खंड न्यायपीठ ने अभिनिर्धारित किया – "... मूर्ति नि:संदेह रूप से शिशु की स्थिति में नहीं होती, चूंकि वह केवल शिबायत या प्रबंधक के माध्यम से कार्य कर सकती है । किंतु हमारे समक्ष कोई भी निर्णयज विधि इस प्रतिपादना के समर्थन में उद्धृत नहीं की गई है कि उसको (मूर्ति को) शाश्वत रूप से शिशु माना जाना चाहिए ताकि उसके द्वारा या उसके विरुद्ध कोई भी संव्यवहार परिसीमा द्वारा शासित न हो सके । यह सिद्धांत असाधारण सिद्धांत है कि मूर्ति शाश्वत रूप से अवयस्क होती है, चूंकि केवल शिबायत को या बंदोबस्ती में किसी व्यक्ति को यह अधिकार प्राप्त होता है कि वह प्रथम बार संपत्ति के समर्पण के प्रयोजनार्थ मूर्ति की संपत्ति की पुनर्प्राप्ति के लिए वाद फाइल करे । इसलिए, मूर्ति भी परिसीमा विधि के उतनी ही अध्यधीन है, जितना कोई नैसर्गिक व्यक्ति और वह इस आधार पर छूट प्राप्ति की दावा नहीं कर सकती कि वह शाश्वत रूप से शिशु है । साथ ही किसी हिंदू देवता को भी समस्त प्रयोजनों के लिए अवयस्क नहीं माना जा सकता । इसलिए मूर्ति परिसीमा विधि से छूट प्राप्ति का दावा नहीं कर सकती ।" अवयस्क के रूप में देवता की विधिक संकल्पना देवता की अक्षमता के निवारण के प्रयोजनार्थ विकसित की गई है । ताकि वे स्वयं विधिक कार्यवाही संस्थित करा सके । मनुष्य के रूप में किसी अभिकर्ता को देवता की तरफ से विधिक कार्यवाहियां संस्थित करानी चाहिए ताकि वे

अक्षमता से प्रभावित न हो । तथापि, यह संकल्पना देवता को परिसीमा विधि के उपयोजन से छूट प्राप्ति के प्रयोजनार्थ विस्तारित नहीं की गई है । वर्तमान मामले में यह साबित हो गया है कि देवता की तरफ से कोई वस्तुत: या विधिक शिबायत कार्यरत नहीं था । इसलिए शिबायत में निहित 'वाद फाइल करने का अधिकार' और प्रथम बार समर्पित संपत्ति के प्रतिकूल कब्जे के संबंध में परिसीमा अधिनियम लागू किए जाने के बाबत शिबायत की अनुपस्थिति के परिणाम के संबंध में इस न्यायालय के निर्णयों को निर्दिष्ट किया जाना उचित होगा । राय साहेब डा. गुरुदीत्तमल कापुर बनाम महंत अमर दास चेला महंत रामशरण वाले मामले में इस न्यायालय ने ऐसी स्थिति पर विचार किया, जिसमें प्रथम प्रत्यर्थी, जो अमृतसर स्थित सुलतानविंद गेट के निरबंसर अखाड़ा का नवनियुक्त महंत था, द्वारा 1957 में वाद फाइल किया गया था । द्वितीय प्रत्यर्थी को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 के अधीन कार्यवाहियों में महंत के पद से हटा दिया गया था और तत्पश्चात् प्रथम प्रत्यर्थी को उसके स्थान पर नियुक्त कर दिया गया था । यह अभिकथित किया गया कि द्वितीय प्रत्यर्थी द्वारा संपत्ति का अन्यसंक्रामण अनधिकृत था, चूंकि संपत्ति का अंतरण विधिक आवश्यकतावश या संपदा के लाभार्थ नहीं था । इसके अतिरिक्त यह दलील भी दी गई कि यह तथ्य कि अपीलार्थी 12 वर्ष से अधिक की अवधि से भूमि के कब्जे में था, से कोई फर्क नहीं पड़ता और चूंकि भूमि न्यास संपत्ति थी, इसलिए इसकी पुनर्प्राप्ति के लिए वाद उस संपत्ति के प्रबंधक की मृत्यु, पदत्याग या पद से हटाए जाने की तारीख से 12 वर्ष की अवधि के भीतर फाइल किया जा सकता था । इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने अभिनिर्धारित किया कि प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा फाइल किया गया वाद खारिज किए जाने योग्य था, चूंकि अपीलार्थी 12 वर्ष से अधिक की अवधि से प्रतिकूल कब्जे में था । न्यायालय की तरफ से निर्णय पारित करते हुए न्यायमूर्ति मुधोलकर ने अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम की धारा 144 के प्रयोजनार्थ प्रतिकूल कब्जे की संगणना विक्रय के परिणामस्वरूप अपीलार्थी के 'प्रभावी कब्जे' की तारीख से की जानी चाहिए – "... इस विषय पर विधि मुखर्जी द्वारा लिखित 'हिंदू ला आफ रिलीजियस एंड चेरिटेबल ट्रस्ट' के द्वितीय संस्करण के पृष्ठ संख्या 274 और 275 पर अत्यधिक स्पष्ट शब्दों में अभिकथित है । उपरोक्त विधिक स्थिति में यह स्पष्ट किया गया है कि

<u>प्रथम बार समर्पित संपत्ति के निष्पादन विक्रय के मामले में मठ के पदधारी की मृत्यु की तारीख नहीं बल्कि विक्रय के परिणामस्वरूप प्रभावी कब्जे की तारीख, जिससे क्रेता के प्रतिकूल कब्जे की संगणना परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 144 के प्रयोजनों के लिए की जानी है</u> ... अतः यदि प्रत्यर्थी संख्या 2 के बारे में यह कहा जा सकता है कि उसने दो पूर्ववर्ती वादों में अखाड़ा का प्रतिनिधित्व किया, उन मामलों में पारित डिक्रियां प्रत्यर्थी संख्या 1 पर उसी प्रकार से बाध्यकारी होंगी जैसेकि वह प्रत्यर्थी संख्या 2 के पद का उत्तराधिकारी हो । इसके विपरीत यदि प्रत्यर्थी संख्या 2 अखाड़ा का प्रतिनिधित्व नहीं करता, तो इन वादों में पारित डिक्रियों के अंतर्गत अपीलार्थी का कब्जा प्रिवी कौंसिल के दो विनिश्चयों, जिनको अभी-अभी निर्दिष्ट किया गया, के आधार पर अखाड़ा के कब्जे के प्रतिकूल होगा । इसलिए प्रथम प्रत्यर्थी का वाद अपीलार्थी द्वारा प्रतिकूल कब्जे के 12 वर्ष पूर्ण कर लिए जाने के पश्चात् परिसीमा द्वारा बाधित अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए । इन कारणोंवश हम निचले न्यायालयों से असहमत हैं और तद्नुसार प्रत्यर्थी संख्या 1 का वाद समस्त न्यायालयों में लागत सहित खारिज करते हैं ।" सारंगदेव परिया मातम बनाम रामास्वामी गाउंडर (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधिगण वाले मामले में इस न्यायालय के पश्चात्वर्ती विनिश्चय में मठाधिपति ने विवादित संपत्ति के एक भाग का शाश्वत पट्टा वादियों के दादा को वार्षिक किराए के संदाय के आधार पर प्रदान किया था । प्रत्यर्थी वर्ष 1883 से, जब पट्टा प्रदान किया गया था, जनवरी, 1950 तक संपत्ति के अबाधित कब्जे में थे । वर्ष 1915 में मठाधिपति की मृत्यु हो गई और उनका कोई उत्तराधिकारी नहीं था और वादियों ने किसी भी किराए का संदाय नहीं किया । वर्ष 1915 और 1939 के मध्य मठाधिपति का पद रिक्त था और मठ के प्रबंधन में 20 वर्षों की अवधि तक कुछ लोग बने रहे । वर्ष 1939 में मठाधिपति चुना गया, तत्पश्चात् मदुरै के कलक्टर ने इनाम भूमियों का कब्जा वापस लिए जाने के प्रयोजनार्थ आदेश पारित किया और भूमि के पूर्ण निर्धारण और मठ को निर्धारण के संदाय और उसके रख-रखाव के लिए निर्देशित किया । पट्टे के पुनरारंभ के पश्चात् वादी और भूमि के कब्जे में अन्य लोगों के नाम में एक संयुक्त पट्टा जारी किया गया । प्रत्यर्थी जनवरी, 1950 तक, जब मठ ने कब्जा अभिप्राप्त किया, वादग्रस्त भूमि के कब्जे में बने रहे । तारीख 18 फरवरी, 1954 को प्रत्यर्थियों ने मठ के विरुद्ध वादग्रस्त भूमि की पुनर्प्राप्ति का

दावा करते हुए वाद संस्थित कराया, जिसमें मठ का प्रतिनिधित्व उसके तत्कालीन मठाधिपति और मठ के अभिकर्ता द्वारा किया गया । विचारण न्यायालय ने वाद को डिक्री कर दिया । अपील में जिला न्यायाधीश ने डिक्री को अपास्त कर दिया और वाद को खारिज कर दिया । द्वितीय अपील में मद्रास उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय की डिक्री को पुनर्स्थापित कर दिया । प्रत्यर्थी ने यह दलील दी कि उसने प्रतिकूल कब्जे और उसके पक्ष में इनाम के पुनरारंभ पर रइय्यतवाड़ी पट्टा जारी किए जाने के द्वारा भूमि का स्वत्व अर्जित कर लिया था । अपीलार्थी ने दलील दी कि मठ की संपत्तियों की पुनर्प्राप्ति के लिए वाद फाइल करने का अधिकार विधित: नियुक्त मठाधिपति में निहित होता है और उसके विरुद्ध प्रतिकूल कब्जे की गणना तब तक नहीं की जाएगी जब तक कि उसकी नियुक्ति नहीं हो जाती । इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने उल्लेख किया कि किसी मूर्ति की भांति मठ भी विधिक व्यक्ति होता है, जिसको किसी मानवीय अभिकरण के माध्यम से कार्य करना चाहिए और उनके विरुद्ध प्रतिकूल कब्जे का दावा पोषणीय है – "हम प्रत्यर्थियों की दलील को स्वीकार करने के लिए इच्छुक हैं । 1908 के भारतीय परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 144 के अधीन किसी मठ से संबंधित अचल संपत्तियों के कब्जे के लिए उसका प्रतिनिधित्व करने वाले किसी व्यक्ति द्वारा वाद फाइल किए जाने के लिए परिसीमा की गणना उस समय से आरंभ हो जाती है जब प्रतिवादी का कब्जा वादी के कब्जे के प्रतिकूल हो जाता है । मठ बंदोबस्ती वाली संपत्ति का स्वामी होता है । किसी मूर्ति की भांति मठ विधिक व्यक्ति होता है, जिसको संपत्तियों को अर्जित करने, उनका स्वामित्व और कब्जा प्राप्त करने की शक्ति प्राप्त होती है और जो वाद फाइल कर सकते हैं और जिनके विरुद्ध वाद फाइल किया जा सकता है । उनके द्वारा आदर्श व्यक्तित्व धारण किए जाने की संकल्पना के कारण मानवीय अभिकरण के माध्यम से उनके सामयिक मामलों के संबंध में यह आवश्यक कार्य होना चाहिए ... वे भोगाधिकार के प्रयोजनार्थ संपत्ति अर्जित कर सकते हैं और इसी प्रकार से प्रतिकूल कब्जे द्वारा संपत्ति से वंचित भी हो सकते हैं । यदि मठ संपत्ति के कब्जे में है और उसको कब्जे से बेदखल कर दिया जाता है या उसकी संपत्ति के संबंध में किसी अपरिचित का कब्जा प्रतिकूल हो जाता है, तो वे क्षति का सामना करते हैं और उनको संपत्ति की पुनर्प्राप्ति के लिए वाद फाइल करने का अधिकार होता है । यदि किसी

मठाधिपति को विधित: नियुक्त किया जाता है, तो वह उस मठ की तरफ से वाद संस्थित करा सकता है; यदि वह ऐसा नहीं करता, तो विधित: मठाधिपति ऐसा कर सकता है, [देखें महादेव प्रसाद सिंह **बनाम** कोरिया भारती (1934) एल. आर. 62 आई. ए. 47, 50] और जहां आवश्यक हो, मठ का कोई शिष्य या अन्य लाभार्थी किसी रिसीवर, जिसको उसकी तरफ से वाद फाइल करने का प्राधिकार प्राप्त है, की नियुक्ति द्वारा अपने विधिक अधिकारों को सही ठहराने के लिए कार्रवाई कर सकता है । मठ या उसमें हितबद्ध लोग सम्यक् तत्परता के साथ समय की गणना का अनदेखा कर सकते हैं । अनुच्छेद 144 के अधीन मठ के विरुद्ध परिसीमा की गणना विधित: नियुक्त मठाधिपति की अनुपस्थिति द्वारा स्थगित नहीं होती; स्पष्टत:, उसके विरुद्ध परिसीमा की गणना ऐसे मामलों में होगी, जिनमें उसका प्रबंधन वस्तुत: मठाधिपति द्वारा किया जाता है । [विट्ठलबोआ **बनाम** नारायण दाजी थिटे (1893) आई. एल. आर. 18 बाम्बे 507-511] वाला मामला देखें और हम समझते हैं कि यदि न तो विधित: और न ही वस्तुत: मठाधिपति की नियुक्ति हुई है, तो परिसीमा की गणना समान रूप से की जाएगी ।" न्यायमूर्ति आर. एस. बचावत ने अभिनिर्धारित किया कि जब संपत्ति का कब्जा प्रतिकूल हो जाता है, तो मठ के विरुद्ध परिसीमा की गणना विधित: या वस्तुत: मठाधिपति की अनुपस्थिति में भी होगी । इस न्यायालय ने महाराजा जगदीन्द्रनाथ वाले मामले में प्रिवी कौंसिल द्वारा दिए गए विनिश्चय का उल्लेख करते हुए इस सिद्धांत का विस्तार करने से इनकार कर दिया कि 'कब्जे के लिए वाद फाइल करने का अधिकार' को ऐसी संपत्ति के 'सांपत्तिक' अधिकार से पृथक् किया जाना चाहिए, जिसको मूर्ति में निहित कर दिया गया है – प्रिवी कौंसिल ने शिबायत को 1877 के भारतीय परिसीमा अधिनियम की धारा 7 का लाभ देते हुए इस स्थिति पर विचार किया कि कब्जे की पुनर्प्राप्ति के लिए वाद फाइल करने के अधिकार को उस संपत्ति, जो मूर्ति में निहित है, के सांपत्तिक अधिकार से पृथक् किया जाना चाहिए । हम जगदीन्द्रनाथ राय, आई. एल. आर. 32 कलकत्ता 129, 141 वाले मामले में व्यक्त किए गए विचार की शुद्धता के पक्ष में या उसके विरुद्ध कोई विचार व्यक्त नहीं करते । इस मामले के प्रयोजनार्थ यह कहा जाना पर्याप्त है कि हम उस मामले के सिद्धांत को विस्तारित करने के लिए इच्छुक नहीं हैं । उस मामले में परिसीमा की अवधि के आरंभ के समय

शिबायत विद्यमान था, जिसको मूर्ति की तरफ से वाद फाइल करने का अधिकार था और उसने वाद संस्थित कराने के पश्चात् सफलतापूर्वक यह दावा किया कि उस समय, जिससे परिसीमा की अवधि की गणना की जाती है, वाद संस्थित कराने के लिए हकदार व्यक्ति को 1877 के भारतीय परिसीमा अधिनियम की धारा 7 का लाभ प्राप्त होना चाहिए । वर्तमान मामले में वर्ष 1915 में, जब परिसीमा की गणना आरंभ हुई, कोई मठाधिपति विद्यमान नहीं था । साथ ही किसी मठाधिपति, जिसको वर्ष 1915 में वाद संस्थित कराने या 1908 के भारतीय परिसीमा अधिनियम की धारा 6 के अधीन आवेदन प्रस्तुत करने का अधिकार था, की अवयस्कता का कोई प्रश्न अंतर्वलित नहीं है ।" न्यायमूर्ति एस. यू. खान ने इस पहलू पर विचार करते हुए कि क्या देवता को शाश्वत रूप से अवयस्क माना जा सकता है, अभिनिर्धारित किया कि किसी देवता की मूर्ति परिसीमा के प्रयोजनार्थ शाश्वत रूप से अवयस्क नहीं होती और प्रथम बार समर्पित संपत्ति प्रतिकूल कब्जे द्वारा गंवाई जा सकती है । विद्वान् न्यायाधीश का यह विचार था कि विश्वनाथ बनाम श्री ठाकुर राधावल्लभ जी वाले मामले में की गई मताभिव्यक्ति कि क्या कोई मूर्ति अवयस्क की स्थिति में है, इस प्रश्न पर विचार परिसीमा के प्रयोजनार्थ नहीं होगा । इसके विपरीत विद्वान् न्यायाधीश के विचार में डा. गुरदीत्तमल कापुर और सारंगादेवी पेरिया मातम वाले मामलों में दिए गए विनिश्चय तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठों द्वारा पारित किए गए विनिश्चय थे (विश्वनाथ वाला मामला दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा निर्णीत विनिश्चय था) । तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा पारित दोनों ही विनिश्चयों से इस विचार को समर्थन प्राप्त होता है कि परिसीमा की विधि लागू होगी । इसके अतिरिक्त प्रिवी कौंसिल द्वारा मस्जिद शहीदगंज बनाम शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, अमृतसर वाले मामले में दिए गए विनिश्चय में उल्लेख किया गया कि इस बाबत कभी भी कोई संदेह नहीं था कि किसी हिंदू धार्मिक बंदोबस्ती की संपत्ति परिसीमा विधि के अध्यधीन होती है । इसके विपरीत न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल का विचार था कि यद्यपि वाद, जैसाकि फाइल किया गया, व्यापक क्षेत्र से संबंधित था और विवाद का क्षेत्र (इस्माइल फारुकी वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय का अनुसरण करते हुए) भीतरी और बाहरी बरामदों तक सीमित था । न्यायमूर्ति अग्रवाल के विचार में यह स्थान भगवान राम का

जन्मस्थान है, जिसका हिंदू प्राचीनकाल से दर्शन करते रहे हैं और देवता 'स्थान के स्वरूप में हैं', होने के नाते 'कभी भी नष्ट नहीं किया जा सकता और न ही इस स्थान का कभी विनाश हो सकता है' । इसलिए यदि देवता न्यायालय से घोषणा की ईप्सा करते हैं, तो परिसीमा का अभिवाक् लागू नहीं होगा और इसलिए परिसीमा अधिनियम की धारा 6 या धारा 7 का आश्रय लिए जाने का कोई कारण नहीं था । न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा ने विश्वनाथ वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का अवलंब लिया और वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि देवता परिसीमा अधिनियम की धारा 6 के प्रयोजनार्थ अवयस्क हैं और किसी अवयस्क या देवता को उपलब्ध लाभ को विस्तारित किए जाने के कारण संपूर्ण संसार के साथ अन्याय होगा । न्यायमूर्ति एस. यू. खान द्वारा शाश्वत रूप से अवयस्कता वाले बिंदु पर प्रयोज्य विधि के परिणामस्वरूप उत्पन्न विधिक स्थिति का विश्लेषण सराहनीय है । उन निर्णयज विधियों, जिनका ऊपर विश्लेषण किया गया है, का अवलंब लेते हुए, यह स्थिति स्थिरीकृत है कि देवता शाश्वत रूप से अवयस्क होने के आधार पर परिसीमा विधि की प्रयोज्यता से छूट प्राप्त नहीं हो सकते । इस विवाद्यक पर श्री सी. एस. वैद्यनाथन द्वारा दी गई दलील लगभग एक शताब्दी से प्रचलित न्यायशास्त्र के विपरीत है । हम प्रिवी कौंसिल, इस न्यायालय और अनेक उच्च न्यायालयों द्वारा पारित निर्णयज विधियों, जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है, का अनुसरण करते हैं । परिसीमा विधि की प्रयोज्यता से शाश्वत रूप से अवयस्क के सिद्धांत के आधार पर इनकार नहीं किया जा सकता । वे कारण, जिनका उल्लेख पहले ही ऊपर किया जा चुका है और वे कारण जिनका न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल और न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा द्वारा मूल्यांकन परिसीमा अधिनियम की प्रयोज्यता का अर्थान्वयन करते हुए किया गया, दोषपूर्ण हैं । विश्वनाथ वाले मामले में दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा दिए गए विनिश्चय में परिसीमा अधिनियम की प्रयोज्यता के विवाद्यक पर विचार नहीं किया गया और यह मताभिव्यक्ति कि देवता अवयस्क हैं, को परिसीमा विधि की प्रयोज्यता से छूट के सृजन के आशय द्वारा विस्तारित नहीं किया जा सकता । इस प्रकार का विस्तार उन संगत निर्णयज विधियों के विपरीत होगा, जो प्रिवी कौंसिल के विनिश्चयों और साथ ही इस न्यायालय और उच्च न्यायालयों द्वारा पारित विनिश्चयों से उद्भूत हुए हैं । न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा ने परिसीमा अधिनियम की धारा 6 के उपबंधों को इस बाबत पढ़ा

है कि वे सिद्धांत, जो अवयस्क पर लागू होते हैं, देवता पर भी लागू होते हैं । इस प्रकार का विस्तार आशय या निर्वचन द्वारा नहीं किया जा सकता । (पैरा 421, 422, 423, 424 और 425)

वाद संख्या 5 में परिसीमा

इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तीन न्यायाधीशों में से प्रत्येक ने वाद संख्या 5 में यह अभिनिर्धारित करते हुए अपने-अपने कारण अभिलिखित किए कि वाद परिसीमा के भीतर था । न्यायमूर्ति एस. यू. खान ने समेकित विश्लेषण करते हुए परिसीमा के प्रश्न पर विचार किया और पांच कारण अभिलिखित किए, जिनमें से पहले और पांचवें कारण के बाबत यह अभिनिर्धारित किया गया कि वे वाद संख्या 5 पर लागू होते हैं । विद्वान् न्यायाधीश के अनुसार – मजिस्ट्रेट ने धारा 145 के अधीन कार्यवाही को अनिश्चितकाल तक लंबित रखे जाने के द्वारा अपनी अधिकारिता के परे जाकर कार्य किया । परिणामस्वरूप, धारा 145 के अधीन कार्यवाही में कोई अंतिम आदेश पारित नहीं किया गया । ऐसा न करते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया कि परिसीमा का वर्जन उद्भूत नहीं होगा; और न्यायालय से प्रत्येक स्थिति में समस्त विवाद्यकों पर आदेश 14 के अधीन निष्कर्ष अभिलिखित किया जाना अपेक्षित था । न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने अभिलिखित किया कि वाद संख्या 5 में परिसीमा का अभिवाक् निम्नलिखित तथ्यों के संदर्भ में समझा जाना चाहिए – विवादित स्थान के बाबत हिंदुओं को यह विश्वास है कि यह स्थान भगवान राम का जन्मस्थान है और इस स्थान की उपासना सदियों से इसी रूप में की जाती रही है; मस्जिद की प्रकृति में गैर-हिंदू ढांचा टिफीनथेलर (1766-71) के दौरे के पूर्व मुस्लिम शासक की आज्ञा पर निर्मित किया गया था; हिंदुओं ने उपरोक्त निर्माण के बावजूद अपनी आस्था के अनुसार कि यह स्थान भगवान राम का जन्मस्थान है, इस स्थान के दर्शन और उपासना करना जारी रखा; यद्यपि भवन के ढांचे को मस्जिद माना जाता था, फिर भी इससे हिंदुओं के विश्वास पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा; अविभाजित मस्जिद परिसर के भीतर वेदी के आकार की एक गैर इस्लामिक संरचना थी, जिसका उल्लेख टिफीनथेलर द्वारा अपनी पुस्तक में किया गया है; समय व्यतीत होने के साथ-साथ सीता रसोई, राम चबूतरा और भंडार को सम्मिलित करते हुए अन्य हिंदू संरचनाएं भी निर्मित होती गई; इन संरचनाओं का उल्लेख 1858, 1873, 1885, 1949 और 1950 में किया गया और ये संरचनाएं तारीख 6

दिसंबर, 1992 को संपूर्ण ढांचे के ध्वंस के समय तक विद्यमान थी; यद्यपि संपूर्ण विवादित ढांचे को मस्जिद कहा जाता था, फिर भी ब्रिटिश सरकार ने विवादित स्थान को दो भागों, जिनके भीतर प्रत्येक समुदाय पृथक् रूप से नमाज अदा कर सके और उपासना कर सके, विभाजित किए जाने के द्वारा दोनों समुदायों के परस्पर विरोधी दावों को मान्यता प्रदान कर दी थी; इस विभाजन के बावजूद हिंदुओं के पास न केवल बाहरी बरामदे का कब्जा रहा, बल्कि उन्होंने निरंतर शिकायतों और हटाए जाने के आदेशों, जिनकी पुष्टि 1858 से 1865 के मध्य के अभिलेखों से होती है, के बावजूद भीतरी बरामदे में भी प्रवेश करना जारी रखा; ब्रिटिश सरकार ने विवादित ढांचे को मस्जिद प्रतीत करते हुए दो मुस्लिमों को ननकार ग्रांट प्रदान की, जिसके मतावलंबन में मुस्लिमों ने यह दावा किया कि उन्होंने भवन के रख-रखाव पर आए खर्चों का संदाय किया है; तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 को हिंदुओं द्वारा भगवान राम की मूर्तियां भीतरी बरामदे में रख दी गई थीं; तारीख 29 दिसंबर, 1949 को भीतरी बरामदे को धारा 145 के अधीन कुर्क कर दिया गया था, जिसके बावजूद मजिस्ट्रेट ने यह सुनिश्चित किया था कि केंद्रीय गुंबद के नीचे स्थापित मूर्तियों की उपासना जारी रहे, जिसके पश्चात् सिविल न्यायालय ने तारीख 16 जनवरी, 1950 को व्यादेश का आदेश पारित किया, जिसको तारीख 19 जनवरी, 1950 को स्पष्ट किया गया, तारीख 3 मार्च, 1951 को पुष्टि की गई और तारीख 26 अप्रैल, 1955 को अंतिमता प्राप्त हुई । तारीख 23 दिसंबर, 1949 को हिंदुओं द्वारा उपासना जारी थी जबकि इसके विपरीत किसी भी मुस्लिम ने नमाज अदा करने के लिए परिसर में प्रवेश नहीं किया; तारीख 29 दिसंबर, 1949 से हिंदुओं द्वारा विभाजित करने वाली दीवार पर स्थापित लोहे के जाली वाले द्वार से उपासना जारी थी और केवल पुजारियों को उपासना के लिए परिसर के भीतर प्रवेश की अनुज्ञा थी; और जिला न्यायाधीश ने तारीख 1 फरवरी, 1986 के आदेश द्वारा और भीतरी बरामदे में मूर्तियों की उपासना के लिए हिंदुओं को प्रवेश की अनुज्ञा प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ तालों को हटाए जाने और दरवाजों को खोले जाने के लिए निर्देशित किया । न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने उपरोक्त तथ्यों के आधार पर अभिनिर्धारित किया कि देवताओं का पूजन निरंतर जारी था और ऐसी कोई भी कार्रवाई या अकर्मण्यता दर्शित नहीं की गई थी, जिसके संबंध में वादी परिसीमा की विशिष्ट अवधि का पालन करते हुए वाद प्रस्तुत करने के अधिकार का दावा कर सकते । विद्वान् न्यायाधीश ने

अभिनिर्धारित किया कि पूर्ववर्ती कुछ सौ वर्षों में एकमात्र कार्रवाई, जो वादियों के हित को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करते हुए की गई, विवादित ढांचे का निर्माण था । इसके बावजूद विवादित स्थान को हिंदुओं द्वारा उपासना के प्रयोजनार्थ प्रयोग किया जाता रहा । इसके विपरीत ऐसा कोई भी उल्लेख नहीं है कि किसी मुस्लिम ने निर्माण की तारीख से वर्ष 1856-57 तक नमाज अदा की हो । उपरोक्त तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए ऐसी कोई भी कार्रवाई नहीं की गई, जिससे हिंदू किसी विशिष्ट तारीख पर व्यथित होते, जिसके कारण परिसीमा के प्रयोजनों से वाद फाइल करने का अधिकार उद्भूत होता । परिणामस्वरूप न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि वाद संख्या 5 को परिसीमा द्वारा बाधित अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता । न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा ने अभिनिर्धारित किया कि देवता परिसीमा अधिनियम की धारा 6 के प्रयोजनों के लिए अवयस्क हैं और वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि वाद संख्या 5 परिसीमा के भीतर था । अत: अब यह आवश्यक हो जाता है कि इस मूलभूत विवाद्यक को संबोधित किया जाए कि वाद संख्या 5 परिसीमा द्वारा बाधित है । यह निर्धारण करते हुए कि क्या वाद संख्या 5 परिसीमा के भीतर है या परे, इस स्थिति पर विचार किया जाना चाहिए कि शेष वादों (वाद संख्या 1, 3 और 4) जिनको इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष आरंभ किया गया था, के किसी भी वादी को वाद संख्या 5 में पक्ष नहीं बनाया गया था । वाद संख्या 5 में किया गया प्रकथन यह है कि प्रथम और द्वितीय वादी, दोनों का अपना-अपना सुभिन्न न्यायिक व्यक्तित्व है । प्रथम वादी का उपासकों से स्वतंत्र रहते हुए अपना सुभिन्न न्यायिक व्यक्तित्व है । वादपत्र के पैरा 18 में वादियों ने प्रकथन किया है कि पूर्ववर्ती वादों के कुछ पक्ष, जो उपासक हैं, किसी सीमा तक अपने-अपने निजी हितों को संतुष्ट किए जाने की ईप्सा करते हुए 'अंतर्वलित' हैं, जिनको वादी देवताओं की उपासना पर नियंत्रण अभिप्राप्त किए जाने के द्वारा पूर्ण किया जा सकता है । (पैरा 426)

महत्वपूर्ण रूप से वादी देवताओं की सेवा पूजा तारीख 29 दिसंबर, 1949 को विवादित संपत्ति की कुर्की के पश्चात् भी जारी रही । इसलिए यह दलील नहीं दी जा सकती कि वाद संख्या 5 का वादकारण तारीख 29 दिसंबर, 1949 को उद्भूत हुआ, जो उपासना और प्रार्थना में व्यवधान या विवादित संपत्ति की कुर्की से संबंधित है । वाद संख्या 5 में किए गए अभिवचनों में विवादित संपत्ति के संबंध में फाइल किए गए समस्त

पूर्ववर्ती वाद निर्दिष्ट हैं । वाद संख्या 5 के प्रतिवादियों में हिंदू और मुस्लिम पक्षों के अतिरिक्त वाद संख्या 2, 3 और 4 के वादी और राज्य और उसके अधिकारी सम्मिलित हैं । वाद संख्या 5 इस अभिवाक् पर आधारित है कि तथ्यत: देवताओं के हित की रक्षा उन व्यक्तियों या अस्तित्वों द्वारा नहीं की जा रही थी, जो पूर्ववर्ती कार्यवाहियों की पैरवी कर रहे थे । जब वाद संख्या 5 संस्थित कराया गया था, तब प्रथम और द्वितीय वादी के विधिक व्यक्ति का न्यायनिर्णयन नहीं हुआ था । वाद संख्या 5 को संस्थित कराए जाने पर वाद संख्या 3 और 4 के वादियों ने इस बात से अभिव्यक्त रूप से इनकार किया था कि द्वितीय वादी उपासना का स्वतंत्र अस्तित्व और विधिक व्यक्ति था । पुन:, भगवान राम के देवता के हित के संबंध में वादियों की यह आशंका कि उनके हितों का संरक्षण नहीं किया जा रहा है, इस घटना से स्पष्ट रूप से साबित हो जाती है, जिसका उल्लेख निर्मोही अखाड़ा द्वारा तारीख 14 अगस्त, 1989 को फाइल किए गए उनके लिखित कथन में किया गया है । निर्मोही अखाड़ा ने इस बात से इनकार किया कि वादी किसी भी अनुतोष के हकदार हैं और उन्होंने अपने इस अभिवाक् का आश्रय लिया कि वादियों द्वारा जिस परिसर का उल्लेख किया गया है, वह निर्मोही अखाड़े से संबंधित है और वादियों को '**निर्मोही अखाड़े के अधिकार और स्वत्व के विरुद्ध**' किसी घोषणा की ईप्सा का अधिकार नहीं है । वास्तव में निर्मोही अखाड़े ने वाद का अर्थान्वयन 'निर्मोही अखाड़े के मंदिर को ध्वस्त किए जाने की आशंका, जिसके लिए अखाड़े का वाद लंबित है' के रूप में किया । निर्मोही अखाड़े ने इस अभिवाक् का अवलंब लिया कि भगवान राम की मूर्ति अयोध्या स्थित राम जन्मभूमि में स्थापित नहीं है बल्कि उस मंदिर में स्थापित है, जिसको राम जन्मभूमि मंदिर के नाम से जाना जाता है और जिसका प्रभार और प्रबंधन दिलाए जाने के लिए निर्मोही अखाड़े ने वाद फाइल किया था । वादियों द्वारा ईप्सित व्यादेश के अनुतोष के उत्तर में निर्मोही अखाड़े ने इस अभिवाक् का अवलंब लिया कि केवल उसी को मंदिर पर नियंत्रण रखने, उसका पर्यवेक्षण करने और मरम्मत करने और यहां तक कि यदि आवश्यक हो तो पुनर्निर्माण करने का अधिकार है । निर्मोही अखाड़े ने इस अभिवाक् का अवलंब लिया कि उस न्यास, जो वर्ष 1985 में स्थापित किया गया है, को निर्मोही अखाड़े के स्वत्व और हित को नुकसान पहुंचाने के 'स्पष्ट इरादे' के अंतर्गत स्थापित किया गया है । वाद संख्या 5 की पोषणीयता पर सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड और निर्मोही अखाड़े, दोनों ने समान

एतराज प्रस्तुत किए, जिससे वर्तमान कार्यवाहियों के अनुक्रम में उनके द्वारा किए गए पक्षकथन की पुनर्पुष्टि हो जाती है । डा. राजीव धवन ने सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड की तरफ से दलीलें देते हुए निवेदन किया कि यद्यपि वाद संख्या 3 परिसीमा द्वारा बाधित है, फिर भी इससे निर्मोही अखाड़े का शिबायत के रूप में अपने दावों की पैरवी अधिकार समाप्त नहीं होता । उन्होंने दलील दी कि निर्मोही अखाड़े के शिबायत होने के नाते वाद संख्या 5 पोषणीय नहीं है । वादियों का पक्षकथन है कि वाद की कार्यवाहियों के दौरान जो तथ्य न्यायालय के समक्ष प्रकट हुए, से यह भली-भांति और सत्यतापूर्वक साबित हो जाता है कि वाद संख्या 5 का संस्थित किया जाना देवता के पूर्ववर्ती वादों में पक्ष न होने के परिणामस्वरूप आवश्यक था और इस आशंका पर आधारित था कि विद्यमान वादों में भगवान राम के देवता की स्वावलंबन से आवश्यकताओं और समस्याओं के समाधान के बिना अग्रणी पक्षों के व्यक्तिगत हितों के बाबत पैरवी की जा रही थी । वाद संख्या 5 के वादकारण के आधार पर वाद के संस्थित किए जाने के लिए उचित अर्थान्वयन पर परिसीमा द्वारा बाधित होने के कारण विचार नहीं किया जा सकता । निर्मोही अखाड़े द्वारा फाइल किया गया वाद (वाद संख्या 3) प्रबंधन और प्रभार के बाबत था और इस वाद में राम जन्मभूमि मंदिर को वर्णित किया गया था । निर्मोही अखाड़े के शिबायत होने का दावा वाद संख्या 3 के संस्थित किए जाने की तारीख पर उद्भूत नहीं हुआ था । वे विधित: शिबायत (कोई समर्पण विलेख न होने के कारण) नहीं थे और उनके वस्तुत: शिबायत होने के दावे को साक्ष्य के आधार पर साबित किया जाना था । वाद संख्या 5 इस अभिवाक् पर आधारित था कि पूर्ववर्ती वाद के पक्ष अपने-अपने हितों की पैरवी कर रहे थे । वाद संख्या 5 के आधार (वादकारण) के बाबत यह आशंका सारहीन है । निर्मोही अखाड़े की तरफ से उनकी प्रतिरक्षा, जो प्रबंधन और प्रभार के दावे के परे चली गई, में अभिकथित 'अधिकार और स्वत्व' और उनके 'स्वत्व और हित' का अवलंब लिए जाने की ईप्सा की गई थी, जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है । सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड ने देवता द्वारा वादमित्र के माध्यम से उनके हितों के संरक्षण के अधिकार को दी गई चुनौती को अधिक दृढ़ता प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ शिबायत के रूप में निर्मोही अखाड़े के वादकारण का समर्थन करते हुए उनके साथ संयुक्त रूप से वादकारण सृजित कर लिया । जब निर्मोही अखाड़ा अपने स्वयं के 'स्वत्व और हित' के बाबत अभिवाक् करता है, तो वह देवता के

हित के प्रतिकूल अपने हित के बाबत अभिवाक् करता है । इस पृष्ठभूमि में वाद संख्या 5 में भगवान राम के देवता की तरफ से वादकारण के बाबत किए गए अभिवाक् को परिसीमा द्वारा बाधित अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता । श्री पारासरन ने निवेदन किया कि वाद संख्या 5 आवश्यकत: भविष्य में राम जन्मभूमि स्थल पर भगवान राम को समर्पित मंदिर के निर्माण की आवश्यकता पर विचार किए जाने हेतु संस्थित कराया गया । डा. धवन ने वाद संख्या 5 की आवश्यकता और साथ ही 1985 में न्यास के गठन और व्यापक कार्यसूची (एजेंडा), जिसके परिणामस्वरूप 1992 की घटना घटित हुई, की आलोचना की । हमारे विचार में यह आलोचना इस बाबत विनिर्धारण का कारक नहीं हो सकती कि क्या वाद संख्या 5 विधि की दृष्टि में परिसीमा द्वारा बाधित है । साधारण शब्दों में वाद संख्या 5 में यह अभिवाक् समाविष्ट है कि पूर्ववर्ती वादों, उन वादों को सम्मिलित करते हुए जिनको हिंदू पक्षों द्वारा फाइल किया गया था, में देवता के पक्ष न होने के कारण उनके हितों और समस्याओं का पर्याप्त रूप से संरक्षण नहीं हो रहा था । वे कारण, जिनका अवलंब न्यायमूर्ति अग्रवाल द्वारा वाद संख्या 5 को परिसीमा के भीतर अभिनिर्धारित किए जाने के प्रयोजनार्थ किया गया, का उल्लेख नीचे किया गया है और जो स्वीकार किए जाने योग्य हैं । उपरोक्त चर्चा के आधार पर यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि वाद संख्या 5 परिसीमा अवधि के भीतर संस्थित कराया गया था । (पैरा 428 और 429)

न्यायिक शक्तियां और ऐतिहासिक अधिकार और दोष : वह सीमा जिस तक पूर्ववर्ती विधिक शासनों (मुगल शासन और उपनिवेशिक साम्राज्यवादी शासन) के अधीन किए गए कार्य और उद्भूत अधिकार वर्तमान विधियों के अधीन आज भी विधिक परिणाम रखते हैं

विधि का प्रयोग समय की घड़ी को वापस घुमाने और ऐसे प्रत्येक व्यक्ति, जो उस अनुक्रम से असहमत हैं और जिसका आश्रय इतिहास द्वारा लिया गया है, को विधिक अनुतोष उपलब्ध कराने के प्रयोजनार्थ युक्ति के रूप में नहीं लिया जा सकता । आज के न्यायालय ऐतिहासिक अधिकारों और दोषपूर्ण कार्यों का संज्ञान नहीं ले सकते, जब तक कि यह दर्शित न कर दिया जाए कि उन ऐतिहासिक अधिकारों और दोषपूर्ण कार्यों के विधिक परिणाम वर्तमान में प्रवर्तनीय हैं । अत: इसके पहले कि यह न्यायालय विस्तारपूर्वक ऐतिहासिक जांच का अवलंब ले, उसके द्वारा उस

सीमा पर विचार किया जाना आवश्यक है, जिस सीमा तक पूर्ववर्ती विधिक व्यवस्थाओं के अंतर्गत किए गए कार्य और उद्भूत अधिकार आज की तारीख में वर्तमान विधियों के अंतर्गत परिणाम रखते हैं । इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए साक्ष्य और दलीलों द्वारा चार सुभिन्न विधिक व्यवस्थाओं का समर्थन किया गया है । कृत कार्रवाइयों, सांपत्तिक अधिकारों को पूर्णता प्रदान किया जाना या पूर्ववर्ती विधिक व्यवस्थाओं में बर्दाश्त की गई क्षतियों के विधिक परिणामों को केवल इस न्यायालय द्वारा प्रवर्तित किया जा सकता है, यदि उनको पश्चात्वर्ती प्रभुतासंपन्नों द्वारा सारगर्भित या अभिव्यक्त रूप से मान्यता प्राप्त हो जाती है । इस प्रकार की मान्यता की अनुपस्थिति में प्रभुतासंपन्न का परिवर्तन राज्य का कार्य होता है और यह न्यायालय किसी पश्चात्वर्ती प्रभुतासंपन्न के किसी ऐतिहासिक दोष को मान्यता प्रदान करने या उसके बाबत अनुतोष प्रदान करने के लिए विवश नहीं कर सकता । वर्तमान कार्यवाहियों में विवादित संपत्ति के नीचे दबे हुए प्राचीन ढांचे, जो 12वीं शताब्दी के काल का है, की प्रकृति अत्यधिक विवाद की विषयवस्तु रही है । श्री वैद्यनाथन ने दलील दी कि यह ढांचा हिंदू मंदिर का प्रतिनिधित्व करता है । उन्होंने दलील दी कि विवादित संपत्ति के नीचे एक प्राचीन हिंदू मंदिर की विद्यमानता इस बात का साक्ष्य है कि विवादित भूमि का हक वाद संख्या 5 के वादी देवताओं में निहित है । उन्होंने आगे दलील दी कि चूंकि किसी देवता की भूमि अन्य असंक्राम्य (अहस्तान्तरणीय) होती है, इसलिए 12वीं शताब्दी से वादी देवताओं का हक विधित: आज तक प्रवर्तनीय बना हुआ है । इस दलील को स्वीकार किए जाने के प्रयोजनार्थ यह प्रदर्शित किए जाने की आवश्यकता होगी कि वह राज्यक्षेत्र, जिसके भीतर विवादित भूमि स्थित है, के प्रत्येक पश्चात्वर्ती प्रभुतासंपन्न ने अभिव्यक्त या सरगर्भित रूप से वाद संख्या 5 के वादी देवताओं के हक को मान्यता प्रदान की है । इसको साबित करने का भार दृढ़तापूर्वक वाद संख्या 5 के वादियों पर होगा । भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की रिपोर्ट का अवलंब लिए जाने के अतिरिक्त कोई अन्य दलील नहीं दी गई । वाद संख्या 5 के वादियों द्वारा इस दलील के समर्थन में कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया कि यदि भूमि के नीचे दबे हुए ढांचे के बाबत यह विश्वास कर लिया जाए कि यह ढांचा एक मंदिर का ढांचा है, तो क्या इससे उत्पन्न होने वाले अधिकारों को पश्चात्वर्ती प्रभुतासंपन्नों द्वारा मान्यता प्रदान की गई थी । विवादित संपत्ति के नीचे भूमि में दबे हुए किसी ढांचे की मात्र विद्यमानता आज की तारीख में हक

के दावे के बाबत किसी विधित: प्रवर्तनीय दावे का कारण नहीं बन सकती । 12वीं शताब्दी में प्राचीन ढांचे के निर्माण के पश्चात् और मस्जिद के निर्माण के पूर्व चार सौ वर्षों की मध्यवर्ती अवधि विद्यमान है । विधिक अधिक्षेत्र की निरंतर रूप से जारी विद्यमानता या उसमें किसी परिवर्तन के संबंध में कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है । सभी पक्षों द्वारा इस बात को स्वीकार किया गया है कि मुगल साम्राज्य के शासनकाल के दौरान विवादित स्थल पर किसी समय बिंदु पर एक मस्जिद का निर्माण किया गया था । यदि इस न्यायालय को यह अवधारणा करनी भी थी कि भूमि के नीचे दबा हुआ ढांचा वास्तव में एक हिंदू मंदिर था, जिसके कारण विवादित स्थल का हक वादी देवताओं में निहित होता है, तो भी वाद संख्या 5 के वादियों द्वारा इस बात को साबित किए जाने के प्रयोजनार्थ कि विधिक व्यवस्था के मुगल प्रभुतासंपन्न में परिवर्तन पर उनके अधिकारों को मान्यता प्रदान की गई थी । राज्यक्षेत्रों पर मुगलों की विजय दो प्रभुतासंपन्नों के मध्य एक अधिराष्ट्र का कार्य था, जिसके पश्चात् पूर्व विद्यमान अधिकारों को नए प्रभुतासंपन्न द्वारा मान्यता की अनुपस्थिति में विवादित संपत्ति का कोई दावा प्रभुतासंपन्न में परिवर्तन को दृष्टि में रखते हुए प्रवर्तित नहीं किया जा सकता था । यह न्यायालय मात्र भूमि के नीचे दबे हुए 12वीं शताब्दी के कालखंड के मंदिर की विद्यमानता के आधार पर विवादित संपत्ति के अधिकारों पर विचार नहीं कर सकता या उन अधिकारों को प्रवर्तित नहीं कर सकता । ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा तारीख 13 फरवरी, 1856 को अवध, जो बाद में ब्रिटिश प्रभुतासंपन्न की साम्राज्यवादी सरकार बन गया, के विलय के साथ ही विधिक व्यवस्था में अगला परिवर्तन किया गया । वे घटनाएं जो 1856 और भारतीय स्वाधीनता के मध्य और उसके पश्चात् घटित हुईं, पर इस निर्णय के विभिन्न भागों में विस्तारपूर्वक विचार किया जाएगा और इस प्रक्रम पर हमारे द्वारा इस पर विचार किए जाने की आवश्यकता नहीं है । तथापि, ब्रिटिश प्रभुतासंपन्न द्वारा अधिकारों की मान्यता के संबंध में कतिपय तथ्यात्मक पहलुओं का उल्लेख किया जाता है । ब्रिटिश प्रभुतासंपन्न द्वारा अवध के विलय पर भगवान राम के हिंदू श्रद्धालुओं को उपासना करने से या स्थानीय निवासी मुस्लिमों को विवादित संपत्ति में नमाज अदा करने से अपवर्जित किए जाने के प्रयोजनार्थ कोई कार्रवाई नहीं की गई । लॉर्ड केनिंग द्वारा तारीख 15 मार्च, 1858 को उद्घोषणा करते हुए ब्रिटिश प्रभुतासंपन्न द्वारा समस्त संपत्तियां, कुछ चुनी हुई संपदाओं को

अपवर्जित करते हुए, जब्त कर ली गईं और विवादित संपत्ति को नजूल भूमि (अर्थात् भूमि, जो जब्त की गई और सरकार में निहित की गई) के रूप में नामित कर दिया गया । तथापि, ब्रिटिश सरकार का आचरण विवादित स्थल पर दोनों धार्मिक समुदायों की प्रथाओं और प्रार्थना का सम्मान करना था । वर्ष 1858 में घेरे के निर्माण का प्रयोजन विवादित संपत्ति पर दोनों समुदायों को एक दूसरे से पृथक् रखने और विधि व्यवस्था को बनाए रखना था । यदि दोनों में से एक भी समुदाय विवादित स्थल पर उपस्थित नहीं होता, तो दोनों समुदायों को एक दूसरे से पृथक् रखने की आवश्यकता का प्रश्न भी कभी उद्भूत नहीं होता । तथापि, हिंदुओं ने भीतरी बरामदे से उनके अपवर्जन पर तुरंत और निरंतर रूप से विरोध करना जारी रखा । वर्ष 1877 में ब्रिटिश सरकार द्वारा बाहरी बरामदे की उत्तरी दिशा में एक अन्य द्वार खोला गया, जिसका नियंत्रण और प्रबंधन हिंदुओं को दे दिया गया । ब्रिटिश प्रभुतासंपन्न और भारत गणराज्य के मध्य विधिक व्यवस्था के परिवर्तन के संबंध में निरंतरता की एक रेखा विद्यमान है । संविधान का अनुच्छेद 372 ब्रिटिश प्रभुतासंपन्न और स्वतंत्र भारत के मध्य विधिक निरंतरता को समाविष्ट करता है । अनुच्छेद 372(1) में उल्लिखित है : "372(1). अनुच्छेद 395 में निर्दिष्ट अधिनियमितियों का इस संविधान द्वारा निरसन होने पर भी, किंतु इस संविधान के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए, इस संविधान के प्रारंभ से ठीक पहले भारत के राज्यक्षेत्र में सभी प्रवृत्त विधि वहां तब तक प्रवृत्त बनी रहेंगी जब तक किसी सक्षम विधान मंडल या अन्य सक्षम प्राधिकारी द्वारा उसे परिवर्तित या निरसित या संशोधित नहीं कर दिया जाता है ।" संविधान के अनुच्छेद 296 में उल्लिखित है इसमें इसके पश्चात् यथा उपबंधित के अधीन रहते हुए, भारत के राज्यक्षेत्र में कोई संपत्ति, जो यदि यह संविधान प्रवर्तन में नहीं आया होता तो राज्यगामी या व्यपगत होने से या अधिकारवान स्वामी के अभाव में स्वामीविहीन होने से, यथास्थिति, हिज मैजेस्टी को या किसी देशी राज्य के शासक को प्रोद्भूत हुई होती, यदि वह संपत्ति किसी राज्य में स्थित है तो ऐसे राज्य में और किसी अन्य दशा में संघ में निहित होगी । संविधान के यह अनुच्छेद ब्रिटिश प्रभुतासंपन्न और भारत गणराज्य के मध्य विधिक निरंतरता के साक्ष्य हैं । इसके अतिरिक्त, स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् भारत गणराज्य का आचरण निजी संपत्तियों के दावों, जो ब्रिटिश प्रभुतासंपन्न के शासन के दौरान विद्यमान थे, को मान्य ठहराना था । यह नहीं कहा जा सकता कि

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् अन्य बातों के साथ-साथ नागरिकों के मध्य समस्त पूर्व विद्यमान निजी दावों का शमन हो गया । उन पूर्व विद्यमान दावों को तब तक मान्यता प्राप्त थी जब तक कि भारत सरकार द्वारा पारित अभिव्यक्त अधिनियमों द्वारा उनको उपांतरित या रद्द नहीं कर दिया गया । इसलिए हमारे समक्ष उपस्थित मामले के प्रयोजनार्थ इस बाबत दोनों प्रकार की मान्यताएं, अभिव्यक्त और सारगर्भित, प्रदान की गईं कि स्वतंत्र भारतीय प्रभुतासंपन्न ने निजी दावों को उन संपत्तियों के संबंध में मान्यता प्रदान की है, जो ब्रिटिश प्रभुतासंपन्न के अधीन विद्यमान थीं, जब तक कि अभिव्यक्त रूप से अन्यथा साक्ष्य प्रस्तुत नहीं कर दिया गया । इसलिए वर्तमान विवाद के पक्षों के अधिकार, जो साम्राज्यवादी व्यवस्था के दौरान उत्पन्न हुए थे, को इस न्यायालय द्वारा आज प्रवर्तित नहीं किया जा सकता । (पैरा 633, 646, 647, 648, 649, 650 और 651)

अधिसंभाव्यताओं की प्रबलता के बाबत सिविल विचारण में सबूत के स्तरमान :

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण दल की रिपोर्ट के आधार पर तथ्यों पर आधारित निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले : "4055. अंततः न्यायालय द्वारा संपूर्ण चर्चा और ऊपर उल्लिखित सामग्री के आधार जो अनुमान लगाया जा सकता है, वह यह है – विवादित ढांचे का निर्माण किसी रिक्त अछूती, खाली और खुली भूमि पर नहीं किया गया; इस भूमि पर विवादित स्थल पर एक ढांचा विद्यमान था, यद्यपि वह ढांचा अधिक बड़ा नहीं था किंतु फिर भी विवादित ढांचे जितना बड़ा था या आकार में उससे भी बड़ा था; विवादित ढांचे के निर्माता पूर्ववर्ती ढांचे के विवरणों, उसकी मजबूती, क्षमता और दीवारों के आकार इत्यादि के बारे में जानते थे और इसलिए उन्होंने आगे बिना कोई सुधार किए दीवारों इत्यादि का प्रयोग विवादित ढांचे के निर्माण में करने में कोई हिचक नहीं दिखाई; पूर्ववर्ती ढांचा धार्मिक प्रकृति का था और वह गैर-इस्लामिक प्रकृति का भी था ...; पूर्ववर्ती ढांचे की सामग्री जैसेकि पत्थर, स्तंभ, ईंटें ... का प्रयोग विवादित ढांचे के निर्माण में किया गया था; और यदि हम इस बात को स्वीकार भी कर लेते हैं कि उत्खनन के दौरान प्राप्त कुछ वस्तुएं ऐसी हैं, जिनका प्रयोग अन्य धर्मों में भी किया जाता है, तो भी उत्खनन के दौरान प्राप्त अधिकांश कलाकृतियां गैर-इस्लामिक प्रकृति की हैं अर्थात् हिंदू धार्मिक स्थानों से संबंधित हैं । समान रूप से कोई कलाकृति इत्यादि

जिसका प्रयोग केवल इस्लामिक धार्मिक स्थानों में किया जा सकता है, नहीं पाई गई ।" न्यायमूर्ति एस. यू. खान ने भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण दल की रिपोर्ट को कोई महत्व नहीं दिया । माननीय न्यायमूर्ति जिन कारणोंवश ऐसा निष्कर्ष अभिलिखित करने के लिए आनत हुए, वे सत्याभाषी नहीं हैं । विद्वान् न्यायाधीश ने प्रथमत: यह मताभिव्यक्त की कि यह निष्कर्ष कि दसवीं शताब्दी और उसके पश्चात्वर्ती अवधि से विवादित ढांचे के निर्माण की अवधि तक संरचनात्मक चरणों में निरंतरता के जो साक्ष्य उपलब्ध हैं, वे अभिवचनों, गज़ेटियरों और ऐतिहासिक पुस्तकों के प्रत्यक्षत: टकराव में है । इस सर्वव्यापी निष्कर्ष का कोई तथ्यात्मक आधार नहीं है । उत्खनन का प्रयोजन न्यायालय द्वारा कराए गए निर्धारण को यह विनिश्चित किए जाने के प्रयोजनार्थ समर्थ बनाना था कि क्या विवादित ढांचा किसी पूर्व विद्यमान मंदिर के स्थल पर निर्मित किया गया था । क्या विक्रमादित्य द्वारा मंदिरों के निर्माण के पश्चात् और मस्जिद के निर्माण तक विवादित ढांचे के नीचे निर्माण से संबंधित कोई क्रियाकलाप चलता रहा, ऐसा मामला था जिसका परिणाम स्थल पर उत्खनन कराए जाने के पश्चात् ही प्राप्त हो सकता था । द्वितीय कारण यह था कि यदि किसी मंदिर को मस्जिद के निर्माण के प्रयोजनार्थ ध्वस्त कर दिया गया था, तो मंदिर का विशाल ढांचा 'भूमि के नीचे नहीं हो सकता था' । यह पुन: शुद्धत: अनुमान है । तत्पश्चात् विद्वान् न्यायाधीश ने पुरातात्विक अवशेषों पर इस आधार पर अविश्वास किया कि ऐसा केवल किसी प्राकृतिक आपदा के मामले में होता है जब इस प्रकार की सामग्री 'भूमि के नीचे चली जाती है' और अन्यथा यह भी संभव है कि कोई जर्जर भवन सदियों के पश्चात् भूमि के नीचे दफन हो गया हो । माननीय न्यायाधीश ने मताभिव्यक्त की कि इस प्रकार की न तो कोई अपेक्षा और न ही कोई प्रथा रही है कि मंदिर की नींव में भी ऐसी वस्तुएं विद्यमान हों, जो विशाल ढांचे की प्रकृति की तरफ संकेत करती हों । न्यायमूर्ति एस. यू. खान की यह मताभिव्यक्तियां और निष्कर्ष काल्पनिक और आधारहीन हैं । तृतीय विद्वान् न्यायाधीश न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा ने भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण दल की रिपोर्ट में समाविष्ट निष्कर्षों का अवलंब लिया है । न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल द्वारा भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण दल की रिपोर्ट के आधार पर निकाले गए निष्कर्षों, जिनको ऊपर उद्धृत किया गया है, स्वीकार किए जाने योग्य है । भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण दल की रिपोर्ट में समाविष्ट सामग्री के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जाने के लिए पर्याप्त आधार विद्यमान हैं : बाबरी मस्जिद

का निर्माण रिक्त भूमि पर नहीं किया गया था; उत्खनन से विवादित ढांचे के नीचे भूमि के भीतर दबे हुए ढांचे की उपस्थिति उपदर्शित होती है; भूमि के नीचे दबा हुआ ढांचा भूमि के ऊपर विद्यमान ढांचे से यदि बड़े आयाम का नहीं था तो कम से कम विवादित ढांचे के समान तो अवश्य था; स्तंभ आधारों की उपस्थिति को देखते हुए उत्खनन के दौरान भूमि के नीचे दबे हुए ढांचे की दीवारों के प्रकाश में आने के आधार पर विवादित ढांचे की उपस्थिति को भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण दल द्वारा निकाले गए निष्कर्षों से समर्थन प्राप्त होता है; भूमि के नीचे दबा हुआ ढांचा इस्लामिक प्रकृति का ढांचा नहीं था; विवादित ढांचे की नींव भूमि के नीचे दबे हुए ढांचे की दीवारों पर टिकी हुई है और पुरातात्विक अवशेषों को सम्मिलित करते हुए कलाकृतियों, जिनको उत्खनन के दौरान प्राप्त किया गया, भिन्न गैर-इस्लामिक काल से संबंधित हैं । यद्यपि यह कहा जा सकता है कि पाई गई कलाकृतियों में से कुछ कलाकृतियां बौद्ध या जैन काल के ढांचों में भी प्रयोग की जाती थी, फिर भी इस बात का कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है कि भूमि के नीचे दबा हुआ ढांचा इस्लामिक धार्मिक प्रकृति का ढांचा है । भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण दल द्वारा जो निष्कर्ष निकाला गया, वह यह है कि भूमि के नीचे दबे हुए ढांचे की प्रकृति और उत्खनन के दौरान की गई प्राप्तियों से शैलिगत आधार पर बारहवीं शताब्दी ए. डी. के मंदिर के ढांचे की विद्यमानता स्पष्ट होती है । क्या अधिसंभाव्यताओं के संतुलन के आधार पर यह एक ऐसा निष्कर्ष होगा, जिसको साक्ष्य द्वारा समर्थित किया गया हो । इस निष्कर्ष को साक्ष्य द्वारा समर्थन प्राप्त न होने के आधार पर या अधिसंभाव्यताओं की प्रबलता के परीक्षण के परे अभिनिर्धारित कहते हुए अस्वीकृत नहीं किया जा सकता, जैसाकि सिविल विचारण के दौरान आवश्यक होता है । हमको ऐसा कहते हुए निम्नलिखित सावधानियों के साथ भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण दल की रिपोर्ट को भी पढ़ना चाहिए : यद्यपि उत्खनन के आधार पर वृत्ताकार पूजा स्थल की विद्यमानता प्रकट हुई, फिर भी सारगर्भित रूप से एक सातवीं से नौंवी शताब्दी ए. डी. के काल का शिव मंदिर भूमि के नीचे दबे हुए ढांचे में पाया गया, जो बारहवीं शताब्दी ए. डी. के काल से संबंधित है । गोलाकार पूजा स्थल और स्तंभ आधारों के साथ भूमि के नीचे दबा हुआ ढांचा तीन से पांच शताब्दियों की दो अलग-अलग समयावधियों से संबंधित हैं; इस बाबत कोई विनिर्दिष्ट निष्कर्ष नहीं निकाला गया है कि भूमि के नीचे दबा हुआ ढांचा एक मंदिर था, जो भगवान राम को समर्पित था; यह महत्वपूर्ण है कि

भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण दल ने इस बाबत विनिर्दिष्ट रूप से विचार व्यक्त नहीं किया है कि क्या किसी मंदिर को विवादित ढांचे के निर्माण के प्रयोजनार्थ ध्वस्त किया गया था, यद्यपि रिपोर्ट के आधार पर यह प्रकटीकरण हुआ है कि विवादित ढांचे का निर्माण स्थल पर किया गया था और इसके निर्माण के प्रयोजनार्थ भूमि के नीचे दबे हुए ढांचे की नींव और सामग्री का प्रयोग किया गया था । न्यायालय सिविल विचारण के दौरान सबूत के स्तरमान को लागू करते हैं, जो अधिसंभाव्यताओं की प्रबलता द्वारा शासित होते हैं । ये स्तरमान को कभी-कभी अधिसंभाव्यताओं के संतुलन या साक्ष्य की प्रबलता के रूप में भी वर्णित किए जाते हैं । 'फिप्सोन ऑन एविडेंस' नामक पुस्तक में स्तरमान को संक्षेप में सूत्रबद्ध किया गया है [फिप्सोन ऑन एविडेंस, सोलहवां संस्करण, पृष्ठ 154-155] । इसलिए यदि साक्ष्य ऐसी प्रकृति का है कि न्यायालय यह कह सके 'यदि हम इसे महत्वहीन के स्थान पर अधिक अधिसंभाव्य प्रतीत करते हैं', तो भार का निर्वहन हो जाएगा, किंतु यदि अधिसंभाव्यताएं समान हैं, तो ऐसा नहीं होगा । लार्ड डेनिंग (जो उस समय माननीय न्यायाधीश थे) ने मिलर बनाम मिनिस्टर आफ पेंशन्स वाले मामले में निर्णय पारित करते हुए संतुलन के सिद्धांत या अधिसंभाव्यताओं की प्रबलता को निम्नलिखित शब्दों में परिभाषित किया । ... यह आवश्यक नहीं है कि निश्चितता तक पहुंचे, किंतु इसको अधिसंभाव्यता के उच्च स्तर का होना चाहिए । युक्तिसंगत संदेह के परे सबूत का यह अर्थ नहीं होता कि वह संदेह की परिधि के परे हो । विधि समाज का संरक्षण करने में विफल हो जाएगी, यदि वह न्याय के सीधे मार्ग का अनुगमन न करके अनुमानिक संभाव्यताओं को स्वीकार करना आरंभ कर देगी । यदि किसी व्यक्ति के विरुद्ध साक्ष्य इतना अधिक सुदृढ़ होता है कि उसके पक्ष में बच निकलने की संभाव्यताएं अत्यधिक असंभव हो जाती हैं, तो उन संभाव्यताओं को एक वाक्य के द्वारा खारिज किया जा सकता है, 'निश्चित रूप से यह संभव है, किंतु दूरस्थ अधिसंभाव्यता के मामले में नहीं' और ऐसी स्थिति में मामला युक्तियुक्त संदेह के परे साबित हो जाता है, किंतु उससे कम कुछ भी पर्याप्त नहीं होगा । विधि इस सिद्धांत को मान्यता प्रदान करती है कि अधिसंभाव्यताओं की प्रबलता के स्तरमान के भीतर अधिसंभाव्यताओं की विभिन्न श्रेणियां हो सकती हैं । इस सिद्धांत को न्यायाधीश लार्ड डेनिंग द्वारा संक्षेप में बाटेर बनाम बाटेर वाले मामले में स्पष्ट किया गया, जिसमें उन्होंने निम्नलिखित सिद्धांत को सूत्रबद्ध किया : "इसलिए सिविल

मामलों में पक्षकथन को अधिसंभाव्यताओं की प्रबलता द्वारा साबित किया जाना चाहिए किंतु अधिसंभाव्यताओं की श्रेणियां स्तरमान के भीतर होनी चाहिए । श्रेणियां विषयवस्तु पर निर्भर होती है ।" साक्ष्य अधिनियम की धारा 3 में 'साबित' अभिव्यक्ति की परिभाषा निम्नलिखित शब्दों में : "साबित – कोई तथ्य साबित हुआ कहा जाता है, जब न्यायालय अपने समक्ष के विषयों पर विचार करने के पश्चात् या तो वह विश्वास करे कि उस तथ्य का अस्तित्व है या उसके अस्तित्व को इतना अधिसंभाव्य समझे कि उस विशिष्ट मामले की परिस्थितियों में किसी प्रज्ञावान व्यक्ति को इस अनुमान पर कार्य करना चाहिए कि उस तथ्य का अस्तित्व है ।" तथ्य का सबूत उसकी विद्यमानता पर आधारित होता है । न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष निम्नलिखित पर आधारित होने चाहिए : किसी प्रज्ञावान व्यक्ति, जो इस अनुमान के आधार पर कार्य करता है कि कोई तथ्य विद्यमान है, का परीक्षण; और किसी विशिष्ट मामले के संदर्भ और परिस्थितियों में । इसका विश्लेषण करते हुए न्यायमूर्ति वाई. वी. चंद्रचूड़ (जो तत्समय माननीय मुख्य न्यायमूर्ति थे) ने एन. जी. दस्ताने बनाम एस. दस्ताने वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया : "अत: इस तथ्य की विद्यमानता के संबंध में विश्वास अतिसंभाव्यताओं के संतुलन में पाया जाता है । प्रज्ञावान व्यक्ति, जो किसी तथ्यात्मक स्थिति से संबंधित परस्पर टकराव वाली अधिसंभाव्यताओं का सामना इस विश्वास के आधार पर करता है कि वह तथ्य विद्यमान है, तो वह विभिन्न अधिसंभाव्यताओं का विश्लेषण करने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि अधिसंभाव्यताओं की प्रबलता विशिष्ट तथ्य की विद्यमानता के पक्ष में है । अत: न्यायालय किसी प्रज्ञावान व्यक्ति के रूप में किसी परीक्षण को इस निष्कर्ष पर पहुंचने के प्रयोजनार्थ लागू करेगा कि क्या किसी विवाद्यक को साबित कहा जा सकता है । इस प्रक्रिया में, जो प्रथम कार्रवाई की जानी है, वह अधिसंभाव्यताओं का निर्धारण है, द्वितीय कार्रवाई उनका विश्लेषण है, यद्यपि ये दोनों बहुधा मिश्रित हो सकती हैं । इनमें से जो कार्रवाई असंभव हो, उसको प्रथम प्रक्रम पर ही समाप्त कर दिया जाता है और अधिसंभाव्य को द्वितीय प्रक्रम पर समाप्त किया जाता है । न्यायालय के समक्ष बहुधा अधिसंभाव्यताओं की व्यापक श्रेणी के भीतर भिन्न विकल्प उपलब्ध होता है किंतु यह विकल्प ही है, जो अंतत: इस बात का विनिर्धारण करता है कि अधिसंभाव्यताओं की प्रबलता कहां पर है । महत्वपूर्ण विवाद्यक जैसेकि वे विवाद्यक, जो पक्षों की हैसियत को प्रभावित करते हैं, की सतर्कतापूर्वक

संवीक्षा उन विवाद्यकों के मुकाबले की जानी चाहिए जैसेकि किसी प्रतिज्ञा-पत्र पर ऋण : 'किसी विवाद्यक की प्रकृति और उसकी घोरता आवश्यक रूप से उस विवाद्यक की सत्यता के युक्तिसंगत समाधान को प्राप्त करने के प्रयोजनार्थ तरीके का विनिर्धारण करती है' [**राइट** बनाम **राइट** (1948) 77 सी. एल. आर. 191, 210 वाले मामले में न्यायाधीश डिक्सन के अनुसार]; या जैसाकि लार्ड डेनिंग द्वारा कहा गया है 'अधिसंभाव्यता की श्रेणी विषयवस्तु पर निर्भर करती है । इसके अनुपात में जैसाकि अपराध घोर प्रकृति का है, अत: सबूत भी स्पष्ट होना चाहिए [**ब्लिथ** बनाम **ब्लिथ** (1966) 1 ए. ई. आर. 524, 536]' किंतु क्या विवाद्यक एक प्रकार की क्रूरता या किसी प्रतिज्ञा-पत्र पर ऋण है, यहां पर जो परीक्षण लागू किया जाना है, वह यह है कि क्या अधिसंभाव्यताओं की प्रबलता के आधार पर सुसंगत तथ्य साबित हो गया है । सिविल मामलों में यह सामान्यत: सबूत का स्तरमान है, जो इस बाबत निष्कर्ष निकाले जाने के लिए लागू किया जाता है कि क्या साबित करने के भार का निर्वहन हो गया है ।" न्यायालय ने इस सिद्धांत को मान्यता प्रदान की कि अधिसंभाव्यताओं की प्रबलता के मापदंडों के अंतर्गत अधिसंभाव्यता की श्रेणी अंतर्वलित विषयवस्तु पर आधारित होती है । माननीय न्यायालय ने उत्तर प्रदेश राज्य बनाम कृष्ण गोपाल वाले मामले में यह मताभिव्यक्ति की : "अधिसंभाव्यताओं की संकल्पनाओं और श्रेणियों को स्पष्टत: उन इकाइयों, जिनकी संगणना गणितीय रूप से इस बाबत की जाती है कि उन इकाइयों में से कितनी इकाइयां युक्तियुक्त संदेह के परे सबूत गठित करती हैं, में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता । अधिसंभाव्यताओं की श्रेणियों के मूल्यांकन में एक अन्य अचूक व्यक्तिपरक तत्व और सबूत की मात्रा विद्यमान होती है । अंतिम विश्लेषण में फोरेंसिक (न्याय संबंधी) अधिसंभाव्यता को सुदृढ़ सामान्यबोध पर और अंतत: न्यायाधीश के प्रशिक्षित सहजबोध पर आधारित होना चाहिए ।" (पैरा 506, 507, 508 और 509)

यह तथ्य कि आस्था और विश्वास के मामले भी अभिनिर्धारित किए जाते हैं, यद्यपि ये ऐसे मामले होते हैं जो किसी ऐसे वास्तविक स्थान, जहां उपासना अर्पित की जाती है, से सुभिन्न होते हैं । पश्चात्वर्ती मामले को निर्णीत करते हुए साक्ष्य अभिलेख का सतर्कतापूर्वक अधिमूल्यन किया जाना चाहिए । वर्तमान मामले में साक्ष्य सामग्री में अन्य बातों के अलावा निम्नलिखित भी समाविष्ट हैं : (i) यात्रावृत्तांत; (ii) गज़ेटियर; (iii) इस विवाद की उत्पत्ति से संबंधित दस्तावेजी अभिलेख और वह

प्रक्रिया, जिसका अनुगमन प्रश्नगत स्थल से संबंधित विवादों के दौरान किया गया; और (iv) तीन गुंबदों वाले ढांचे के प्रयोग से संबंधित दस्तावेजी सामग्री । (पैरा 556)

हमारे समक्ष एक तरफ अबूफ़जल की 'आईने अकबरी' है और दूसरी तरफ कर्नल एच. एस. जेरेट्स का अंग्रेजी अनुवाद है, जो प्रथमत: वर्ष 1893-96 में प्रकाशित किया गया था । इस अनुवाद का द्वितीय संस्करण सुधार और आगे व्याख्या के पश्चात् सर जादुनाथ सरकार द्वारा प्रकाशित किया गया था, जिसमें भी 'आईने अकबरी' को निर्दिष्ट किया गया है : "... जैसाकि साहित्यिक सम्मेलन द्वारा समान विषय पर हिंदू विचारों के साथ तुलनात्मक अध्ययन के लिए अपेक्षित है, हिंदुओं के धर्म, दर्शन और विज्ञान का विश्वकोश (Encyclopedia), जो मुस्लिमों के कालक्रम और ब्रह्मांड विज्ञान के पहले का है ।" जेरेट ने तारीख 17 मई, 1894 को लिखित अपने संपादकीय परिचय में सम्मिलित किए गए विषयों की श्रेणी और विविधता को संदर्भित किया है : "इसके विषयों (जैसेकि आईने अकबरी) की श्रेणी और विविधता और अथक प्रयत्न, जिसके द्वारा इन विषयों से संबंधित सामग्री को अपरिचित भाषा के बावजूद सूचना के अनेक विषयों से लेकर सूक्ष्मतम विवरण तक, गूढ़ विज्ञान के उपचार, सूक्ष्म दार्शनिक समस्याओं और भिन्न जाति और पंथ के रीति-रिवाजों को संगृहीत किया गया और उनका क्रमबंधन किया गया और यह सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक रूप से विद्वतापूर्ण और धैर्यपूर्ण परिश्रम के एक स्थायी स्मारक के रूप में खड़ा रहेगा ... यद्यपि इससे भी अधिक अपेक्षित है, किंतु फिर भी उनके द्वारा किया गया विस्तारपूर्वक और प्रशंसनीय सर्वेक्षण आज भी अधिकतम प्रशंसा का पात्र है ।" आईने अकबरी का एक अन्य भाग है, जिसका शीर्षक है – रामावतार या राम-अवतार, जिसमें यह अभिकथित है : "वे तद्नुसार त्रेता युग में राजा दशरथ की पत्नी कौशल्या के गर्भ से अयोध्या नगर में चैत्र (मार्च-अप्रैल) माह के शुक्लपक्ष में जन्मे थे ।" एक अन्य भाग जिसका शीर्षक है 'अवध की सुबह' में अवध का संदर्भ है, जो इस प्रकार है : "अवध (अजोध्या) भारत के विशालतम नगरों में से एक है । यह 118 डिग्री के देशांतर में स्थित और इसका अक्षांश 27 डिग्री 22 है । प्राचीन समय में इसकी आबादी स्थल की लंबाई 148 कोस और चौड़ाई 36 कोस थी और ऐसा अनुमान है कि यह पुरातनता पवित्रतम स्थानों में से एक था । इस नगर के लोग नगर के चारों तरफ मिट्टी को छानकर सोना प्राप्त करते थे । यह रामचंद्र जी का निवास था, जो त्रेता

युग में अपने व्यक्तित्व में आध्यात्मिक पराकाष्ठा और राजसीय पद, दोनों धारण करते थे ।" इस पुस्तक के पाद टिप्पण में भगवान राम का संदर्भ है : "सातवें अवतार, जो सूर्यवंश की इस राजधानी में ब्रह्मा के रथ के पहिए पर पाए जाते हैं, जो सूर्यवंश के राजकुमारों की 60 पीढ़ियों के वैभव से परिपूर्ण है और राम के रूप में अवतरित हुए, विख्यात महाकाव्य, जो उनके नाम पर है, के नायक हैं ।" जीलानी ने इस बात पर जोर दिया कि उपरोक्त उद्धरण में राम जन्मभूमि के द्योतक के रूप में किसी मंदिर की विद्यमानता का कोई विनिर्दिष्ट निर्देश नहीं है । तथापि, अयोध्या भगवान राम के जन्मस्थान के रूप में निर्दिष्ट है । ऐसे नकारात्मक अनुमानों के बाबत कुछ नहीं कहा जा सकता, जिनके आधार पर किसी पुस्तक में कुछ समाविष्ट न हो । किसी मंदिर के निर्देश की अनुपस्थिति मंदिर की अनुपस्थिति का साक्ष्य नहीं हो सकती । इसी प्रकार से उपरोक्त उद्धरण में किसी मस्जिद का निर्देश भी अनुपस्थित है । (पैरा 559)

वर्ष 1528 में बाबरी मस्जिद के निर्माण के पश्चात्वर्ती शताब्दियों में वर्ष 1856-57 के दंगों तक राम जन्मस्थान पर उपासना : यात्रावृत्तांतों और गज़ेटियरों में उपलब्ध साक्ष्य :

प्रदर्श 133 – वाद संख्या 5 : जोसेफ टिफेनथेलर ने लैटिन भाषा में अपने यात्रावृत्तांत अपनी एक पुस्तक, जिसका शीर्षक 'डिस्क्रिप्सन हिस्टोरिक्वीट जियोग्रेफिक डेल इंडे' है में लिखे हैं । टिफेनथेलर, जो एक जेस्यूट मिशनरी थे, अरबी, परसीयन और संस्कृत में कथित तौर पर प्रवीण थे और वे वर्ष 1740 में भारत आए थे । उनकी यात्राएं वर्ष 1743-1785 के मध्य की हैं । अयोध्या की उनकी यात्रा को एक पाठ में वर्णित किया गया है, जो फ्रेंच में पाठ्यक्रम के परीक्षण के दौरान उपलब्ध कराया गया था । इस पाठ का अंग्रेजी अनुवाद उच्च न्यायालय के मतावलंबन में भारत सरकार द्वारा उपलब्ध कराया गया था । टिफेनथेलर का यात्रावृत्तांत इस प्रकार है : "अवध, जिसे शिक्षित हिंदुओं द्वारा अदजुदिया कहा जाता है, अत्यधिक प्राचीन नगर है । इसके मकान 'अधिकांशत: केवल मिट्टी के बने हुए हैं, जिनको ऊपर से फूस और खपड़ों द्वारा आच्छादित किया जाता है । तथापि, उनमें से अधिकांश ईंटों के भी बने हुए हैं । मुख्य सड़क दक्षिण से उत्तर की तरफ जाती है और इसकी लंबाई लगभग एक मील है । (नगर की) चौड़ाई कुछ कम है । इसकी पश्चिमी दिशा और साथ ही उत्तरी दिशा मिट्टी की एक पहाड़ी पर स्थित है । उत्तरी-पश्चिमी दिशा टीले पर स्थित हैं ।

बंगले की तरफ यह नगर जुड़ा हुआ है । आज, इस शहर में बहुत कम जनसंख्या है, चूंकि फाउंडेशन बंगला या फैज़ाबाद (1) – एक नया नगर जहां गवर्नर ने अपना निवास स्थापित किया – और जिसमें (अवध के निवासियों की) बड़ी संख्या में निवास करती है (देवा के) उत्तरी किनारे पर अनेक भवन पाए जाते हैं, जो पूर्व से पश्चिमी दिशा में विस्तारित हैं और जिनका निर्माण राम की स्मृति में धनाढ्य व्यक्तियों द्वारा कराया गया । सबसे उल्लेखनीय स्थान वह स्थान है, जिसको (2) सोरगादाओरी के नाम से जाना जाता है, जिसका अर्थ है – दिव्य मंदिर । यहां के लोगों का कहना है कि राम शहर के समस्त निवासियों को अपने साथ इसी स्थान से स्वर्ग ले गए थे – यह मंदिर किसी सीमा तक भगवान के आरोहण की सादृश्यता/समानता पर आधारित है । तत्पश्चात् नगर वीरान हो गया और पुन: बसा और इस नगर को आउद के प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्य द्वारा इसका पूर्ववर्ती गौरव वापस प्रदान किया गया (आउध) [आउदजेन] (3) यहां पर एक मंदिर था, जिसका निर्माण नदी के किनारे एक ऊंचे स्थान पर किया गया था । किंतु औरंगजेब, जो मोहम्मद के पंथ के प्रचार-प्रसार का सदैव इच्छुक रहता था और दूसरे धर्मों के लोगों से घृणा करता था, ने हिंदू अंधविश्वास के वास्तविक अनुस्मरणों सहित समस्त प्रतीक चिह्नों को मिटाने के इरादे से इस मंदिर को ध्वस्त करा दिया और इस मंदिर को मस्जिद और दो शिलास्तंभों द्वारा प्रतिस्थापित करा दिया । अन्य मस्जिद जिसका निर्माण गुलामों द्वारा कराया गया, वह इसी भवन से सटा हुआ है और पूर्व दिशा में स्थित है । स्वर्गद्वार के निकट एक भवन है, जिसका निर्माण नवेराय नामक एक हिंदू व्यक्ति, जो पूर्व में इस क्षेत्र (ए) का गवर्नर (कर्ताधर्ता) था, द्वारा लंबाई वाले रास्ते में कराया गया था । किंतु एक स्थान, जो विशेष रूप से प्रसिद्ध है और जिसे सीता रसोई कहा जाता है अर्थात् सीता, जो राम की पत्नी थी, का अन्न नगर के दक्षिण से सटा हुआ है और एक मिट्टी के टीले पर स्थित है । सम्राट औरंगजेब ने रामकोट नामक किले को ध्वस्त करा दिया था और उसी स्थान पर एक मुस्लिम मंदिर का निर्माण कराया था, जिसमें तीन गुंबद थे । अनेक लोगों का कहना है कि यह निर्माण बाबर द्वारा कराया गया था । चौदह काले पत्थर के पांच फुट चार इंच की ऊंचाई वाले स्तंभ, जो किले के स्थल पर विद्यमान थे, वहां पर देखे जा सकते हैं । वर्तमान में इन स्तंभों में से बारह स्तंभ मस्जिद की भीतरी महराबदार छत को सहारा देते हैं । (इन बारह स्तंभों में से) दो स्तंभ भवन के प्रवेश द्वार पर स्थित है । दो अन्य

स्तंभ किसी 'गुलाम' के मकबरे के भाग हैं । यह वर्णित किया गया है कि कुशलतापूर्वक निर्मित ये स्तंभ या इन स्तंभों के अवशेष लंका या सेलेनदीप (जिसको यूरोपीयन द्वारा सीयन कहा जाता था) नामक द्वीप से हनुमान जी, जो बंदरों के राजा थे, द्वारा लाए गए थे । इस भवन के बाएं एक वृत्ताकार बक्सा स्थित है, जिसको जमीन से पांच इंच की ऊंचाई पर निर्मित किया गया है, जिसके किनारे चूने द्वारा निर्मित हैं और जिसकी लंबाई पांच एल्स (पांच) से अधिक है और अधिकतम चौड़ाई लगभग चार एल्स है । हिंदू इसको बेदी अर्थात् 'पालना' कहते हैं । इसका कारण यह है कि एक समय की बात है, एक मकान था, जहां बेसचन का जन्म राम के स्वरूप में हुआ था । यह कहा जाता है कि उनके तीन भाइयों का जन्म भी यहीं पर हुआ था । तत्पश्चात् अन्य लोगों के अनुसार औरंगजेब या बाबर ने ऋषि-मुनियों को उनकी प्रथाओं का पालन करने से रोकने के लिए इस स्थान को ध्वस्त करा दिया था । तथापि, अन्य स्थानों पर कुछ प्रथाएं आज भी विद्यमान हैं । उदाहरण के लिए वे उस स्थान, जहां राम का मूल निवास स्थान विद्यमान था, की तीन बार परिक्रमा करते हैं और फर्श पर दंडवत् करते हैं । ये दोनों स्थल कम ऊंचाई वाली दीवारों से घिरे हुए हैं । सामने स्थित मंडप में प्रवेश करने के लिए कम ऊंचाई वाले अर्द्ध गोलाकार द्वार से प्रवेश करना पड़ता है । इस स्थान से कुछ दूरी पर वह स्थान है काले चावल के दाने खोदकर निकाले जाते हैं और उनको जलाए जाने पर वे छोटे-छोटे पत्थर बन जाते हैं, जिनके बारे में यह कहा जाता है कि वे जमीन की भूमि के नीचे राम के काल में छिपाए गए थे । ज्येष्ठ माह की तारीख 24 को यहां पर लोगों का भारी जमाव राम के जन्मदिवस का उत्सव मनाए जाने के लिए एकत्रित होता है, जो संपूर्ण देश में विख्यात है । यह विशाल नगर बंगला से एक मील की दूरी पर पूर्व उत्तर-पूर्व की दिशा में इस प्रकार से स्थित है कि इसका अक्षांश बंगला के अक्षांश से लगभग एक मिनट अधिक होगा । नदी के ऊंचे किनारे पर स्थित वर्गाकार स्वरूप में निर्मित किला गोल और कम ऊंचाई वाली मीनारों से सुसज्जित है । दीवारों की मरम्मत कराए जाने की आवश्यकता है । यह किला निवास योग्य नहीं है और सुरक्षित भी नहीं है । पूर्व में यहां पर प्रांत के गवर्नर का निवास था । सादत्त खान को यहां पर निवास के दौरान बुरा स्वप्न आया था, जिससे भयभीत होकर उसने अपना निवास स्थान बंगला को स्थानांतरित कर दिया था । आज यह किला शीर्ष से निम्न स्तर तक नष्ट हो चुका है । दो मील के क्षेत्र में, वह स्थान, जहां तोपें लगाई गई हैं, से

'आउद' तक, घाघरा (गंगा) पूर्व की ओर अपना मार्ग लेती है और दोहरा मोड़ बनाती है । एक मोड़ नगर की पश्चिम दिशा के निकट है और दूसरा, जो यहां से कुछ दूरी पर है, पश्चिम की दिशा में स्थित है और वहां से उत्तर-पूर्व और ¼ पूर्व की ओर मुड़ते हुए पश्चिम में नगर को स्पर्श करती है; जिसके पश्चात् यह उत्तरी दिशा के निकट पूर्व की तरफ लौटती है । किंतु यह लगभग प्रत्येक वर्ष अपना बहाव बदलती रही है । इसकी नदी भूमि (चौड़ाई में) समतल है, बिल्कुल उसी प्रकार से जैसे बेवरिया में इनगोल्डस्टैंड की गढ़ी के निकट डेन्यूब नदी, किंतु पानी की मात्रा कम है । वर्षा ऋतु में यह चौड़ाई में कुछ इस प्रकार से बढ़ जाती है कि कुछ स्थानों पर इसकी चौड़ाई डेढ़ मील से भी अधिक हो जाती है । विभिन्न हिंदू पक्षों द्वारा टिफेनथेलर द्वारा लिखित वृत्तांत का अवलंब लिया गया, चूंकि इसमें निम्नलिखित लक्षणों पर जोर दिया गया : (i) इसमें हिंदुओं के इस विश्वास का संदर्भ समाविष्ट है कि भगवान राम मनुष्य के रूप में विष्णु के अवतार थे (जिनको इस वृत्तांत में बेसचन के रूप में वर्णित किया गया है) । इस पुस्तक में हिंदुओं के इस विश्वास का उल्लेख है कि भगवान राम का जन्म जिस स्थल पर हुआ था, उसका प्रतीक 'बेदी' या 'पालना' है; (ii) यह वृत्तांत भगवान राम में हिंदुओं की आस्था का उल्लेख करते हुए उपासना के अन्य सहबद्ध स्थानों को भी निदेशित करता है, जिनमें 'स्वर्गादावरी' (स्वर्ग द्वार) और 'सीता रसोई' (सीता की रसोई) सम्मिलित है; (iii) इस वृत्तांत में औरंगजेब द्वारा 'एक किले, जिसे रामकोट कहा जाता था' के अभिकथित रूप से ध्वस्तीकरण और उसी स्थान पर तीन गुंबदों वाली एक मस्जिद के निर्माण, का निदेश समाविष्ट है । तथापि, टिफेनथेलर ने यह भी अभिकथित किया कि कुछ लोगों के अनुसार मस्जिद का निर्माण बाबर द्वारा कराया गया था; (iv) टिफेनथेलर के वृत्तांत में 14 काले पत्थर के स्तंभों, जो तत्कालीन किले के स्थल पर विद्यमान थे, का निदेश समाविष्ट है । इन स्तंभों में से 12 स्तंभ अभिकथित रूप से मस्जिद के भीतरी मेहराब को सहारा देते थे । दो स्तंभों के बारे में अभिकथित है कि वे मठ के प्रवेश पर स्थित थे; (v) उन्होंने एक वर्गाकार संदूक को वर्णित किया है, जो भूमि से पांच इंच ऊपर निर्मित किया गया था और जो हिंदुओं के अनुसार (भगवान राम के जन्म का द्योतक) पालना है; (vi) इस वृत्तांत में उल्लेख है कि (औरंगजेब या बाबर द्वारा) अभिकथित रूप से ध्वस्तीकरण के बावजूद 'कुछ स्थानों पर कुछ अनुष्ठान आज भी संपन्न किए जाते हैं', जिनके द्वारा आज भी स्थल पर उपासना

की जाती है । इसका अभिकथित रूप से एक उदाहरण वह स्थान है, जिसके बाबत यह धारणा की जाती है कि वह भगवान राम का 'मूल निवास' है और जिसके चारों तरफ हिंदू तीन बार परिक्रमा करते हैं और फर्श पर दंडवत प्रणाम करते हैं; और (vii) इस वृत्तांत में भगवान राम के जन्मदिवस का उत्सव मनाए जाने के प्रयोजनार्थ बड़ी संख्या में लोगों के एकत्रित होने का संदर्भ भी समाविष्ट है । टिफेनथेलर ने वर्ष 1740 के पश्चात् अयोध्या की यात्राएं की थीं, जो औरंगजेब की मृत्यु के लगभग तीन दशकों से कुछ अधिक समय के पश्चात् का कालखंड था । उनके वृत्तांतों में हिंदू श्रद्धालुओं की आस्था और अभिकथित ध्वंस का निदेश समाविष्ट है और उनके विचार में यह ध्वंस और उसी स्थान, जिसके बारे में यह विश्वास किया जाता है कि वह भगवान राम का जन्मस्थान है, पर मस्जिद का निर्माण अधिसंभाव्य रूप से औरंगजेब के हाथों ही हुआ था । उनके वृत्तांत में मस्जिद के ढांचे में काले पत्थर के अनेक स्तंभों के प्रयोग का उल्लेख है । **प्रदर्श 20 – वाद संख्या 5** – रॉबर्ट मॉन्टगोमरी मार्टिन ने तीन खंडों में 'पूर्वी भारत का इतिहास, पुरावशेष, स्थलाकृति और सांख्यिकी' नामक आत्मकथा लिखी है । मार्टिन का जन्म 1801 में डबलिन में हुआ था, वे एक एंग्लो-आयरिस लेखक और सिविल सेवक थे । उन्होंने कलकत्ता, जहां उन्होंने 'बंगाल हेराल्ड' नामक समाचार-पत्र की स्थापना की, में पत्रकार के रूप में कार्यरत रहने के अतिरिक्त शिलांग, पूर्वी अफ्रीका और न्यू साउथ वेल्स नामक स्थानों पर चिकित्सा व्यवसायी के रूप में कार्य करते हुए दस वर्ष व्यतीत किए थे । अयोध्या पर मार्टिन का विस्तार इस प्रकार है : "अयोध्या के लोगों की यह कल्पना है कि व्रिहदबाला की मृत्यु के पश्चात् उनका नगर वीरान हो गया था और उज्जैन के विक्रम, जो पवित्र नगर की खोज में यहां पर आए थे, के काल तक वीरान पड़ा रहा, उन्होंने रामगढ़ नामक किले का निर्माण किया, जंगलों को काटा और जिस कारणवश खंडहर अनावृत्त हुए और राम, उनकी पत्नी सीता, भाई लक्ष्मण और सेनापति महावीर के असाधारण कार्यों द्वारा पवित्र स्थानों पर 360 मंदिरों का निर्माण किया । अधिसंभाव्य रूप से इस परंपरा का एकमात्र आधार यह रहा होगा कि विक्रम ने कुछ मंदिरों का निर्माण किया था और महाभारत काल में भी उनका वंश उसी प्रकार से अस्तित्व में था, जैसेकि व्रिहदबाला, जो पुस्तक के विषय के प्रयोजनार्थ अनभिज्ञ था, का वंश; किंतु श्री भागवत के अनुसार व्रिहदबाला के उत्तराधिकारी 29 राजकुमार हुए और बंगसलाता में 24 राजकुमारों का वर्णन है । इनकी गणना वाल्मिकी और

श्री भागवत में राम के पूर्वजों की श्रेणी के अनुसार किए जाने पर 18 राजकुमार होगी इस आधार पर हमको 279 या 558 वर्ष प्राप्त होंगे, तद्नुसार चूंकि हम इन उत्तराधिकारियों को शासनकाल या पीढ़ियों के नाम से पुकारते हैं, इसलिए परिवार की विद्यमानता को लगभग एलेक्जेंडर के कालखंड तक ले आते हैं; किंतु पश्चात्वर्ती कोई भी राजकुमार उल्लेखनीय शक्ति नहीं प्राप्त कर सके और वे मगध के राजाओं के जागीरदार बन गए । तथापि, विक्रम से संबंधित संपूर्ण वृत्तांत पर उनकी विद्यमानता के बाबत गहरा संदेह है । विक्रम को आमतौर पर श्रेष्ठ व्यक्ति माना जाता है, जिनके नाम से संवत् के नाम से पुकारा जाने वाला कालखंड व्युत्पन्न हुआ और कोसाला के अनुसार यह कालखंड ईशा के जन्म के 57 वर्षों पूर्व आरंभ होता है और इसी कारणवश नगर लगभग 280 वर्ष पूर्व विराम हो गया था । ईश्वरीय कार्यों के लिए उल्लेखनीय स्थान इतने लंबे अंतराल के पश्चात् कैसे खोजे जा सकते हैं और वह भी वनों के मध्य, यह संदेहपूर्ण प्रतीत होता है; और संदेह तब और बढ़ जाता है, जब हम यह धारणा करते हैं कि बाद में विक्रम, जो सम्राट भोज के दामाद थे, ने अयोध्या में मंदिरों का निर्माण कराया । मैं यह समझ सकता हूं कि इस मामले में अधिसंभाव्य रूप से राम की उपासना अग्रज विक्रम के समय के पूर्व से की जाती रही होगी, फिर भी उनकी उपासना के बारे में यह प्रतीत होता है कि उसको रामानुज द्वारा सर्वप्रथम स्थापित किया गया, जो पश्चात्कथित विक्रम, जो अपने संप्रदाय के देवताओं के निशान खोजने के लिए विशेष रूप से उत्सुक थे, के कालखंड के बाबत धर्मांध लोगों के एक विलक्षण वर्ग को विभेदित करने वाली उपासना थी । यदि यह मंदिर कभी विद्यमान थे, तो दुर्भाग्य से उनका छोटा सा भाग भी शेष नहीं बचा, जो हमको उस अवधि, जब उनका निर्माण किया गया, के अवशेषों के बाबत निर्णय कर पाने के समर्थ बना सकता; और हिंदुओं द्वारा ध्वंस के लिए अत्यंत सामान्य रूप से औरंगजेब, जिस पर बनारस और मथुरा के मंदिरों को उखाड़ फेंकने का आरोप लगाया गया है, के उग्रवाद से भरे हुए उत्साह को जिम्मेदार ठहराया जाता है ।" मार्टिन के वृत्तांत में मस्जिद की दीवार पर स्थापित एक शिलालेख का उल्लेख है, जिसकी एक प्रति उसको उपलब्ध कराई गई थी, के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि मस्जिद का निर्माण बाबर द्वारा किया गया था । उसमें (प्रति में) अयोध्या में स्थित मस्जिद के बारे में वर्णन किया कि यह मस्जिद 'हर प्रकार से अत्यधिक आधुनिक दिखावट वाली है' । इस प्रति में औरंगजेब द्वारा हिंदुओं के उपासना के

स्थानों को अभिकथित रूप से ध्वस्त किए जाने का भी उल्लेख है । मार्टिन ने मस्जिद में काले पत्थर द्वारा स्तंभों की उपस्थिति का भी उल्लेख किया है । इस वृत्तांत में यह उल्लेख किया गया है कि यह सभी वर्णन एक हिंदू भवन से लिए गए हैं, जिसके बारे में उसका अनुमान है कि यह वर्णन कुछ स्तंभों पर दृश्यमान आकृतियों के उत्कीर्णन से संबंधित हो सकते हैं, यद्यपि 'इन आकृतियों को धर्मांध लोगों के अहंकार को संतुष्ट करने के लिए बिगाड़ दिया गया है' । मार्टिन के विचार में इस बात की संभाव्यता है कि अवशेष उसी स्थान पर पड़े हैं, जहां पर उनसे संबंधित ऐतिहासिक घटनाएं घटित हुईं । उसके विचार में संपूर्ण वृत्तांत ऐतिहासिक न होकर अत्यधिक धार्मिक और पौराणिक महत्व के हैं । इन स्थानों पर उपासना महत्वपूर्ण घटनाओं का स्मरण बिंदु बन जाती है और उनके बारे में हिंदुओं द्वारा यह विश्वास किया जाता है कि वे वहां पर घटित हुई थीं । **प्रदर्श 5 – वाद संख्या 5 –** एडवर्ड थोर्नटन का गज़ेटियर, जिसका शीर्षक है 'गज़ेटियर ऑफ द टेरिटरीज़ अन्डर द गवर्नमेंट आफ ईस्ट इंडिया कंपनी एंड द नेटिव स्टेट ऑन द कंटिनेंट आफ इंडिया' सर्वप्रथम वर्ष 1958 में प्रकाशित हुआ । थोर्नटन के गज़ेटियर में 'हनुमानगढ़ या हनुमान का किला नामक व्यापक स्थापन' का संदर्भ समाविष्ट है, जिसके लिए पूर्ववर्ती नवायूब वजीर शुजा-उद-दौला द्वारा पचास हजार का वार्षिक राजस्व स्थिरीकृत किया गया था । अभिकथित रूप से इस राजस्व को 500 बैरागियों या धार्मिक संन्यासियों और विभिन्न वर्णनों के हिंदू भिक्षुकों के मध्य वितरित किया जाता था, किंतु इस किले की दीवार के भीतर 'किसी मुसलमान को जाने की अनुज्ञा नहीं थी' । थोर्नटन का गज़ेटियर में बड़ी मात्रा में अवशेषों का निदेश है, जिनके बारे में कहा जाता है कि ये अवशेष राम के किले के हैं : पूर्व दिशा में नगर के निकट और घाघरा नदी के दाहिने किनारे पर बड़ी मात्रा में अवशेष विद्यमान है, जिनके बारे में कहा जाता है कि यह अवशेष रामायण के नायक आउद के राजा राम के किले के हैं और जो अन्यथा रूप से भी भारत के पौराणिक और प्रेम-प्रसंग वाली किंवदंतियों में अत्यधिक विख्यात हैं । बूचानन ने कहा है, 'यद्यपि ऐसा प्रतीत होता है कि नदी द्वारा बहुत कुछ बहाव के साथ लाया गया, फिर भी ईंटों के ढेर बड़े क्षेत्र में फैले हुए हैं, यह क्षेत्र लंबाई में एक किलोमीटर और चौड़ाई में आधे मील से अधिक का होगा; और यद्यपि बड़ी मात्रा में सामग्री को मोहम्मडन अयोध्या या फैज़ाबाद के निर्माण के प्रयोजनार्थ हटा दिया गया, फिर भी अनेक भागों में अवशेषों के ऊंचे ढेर लगे हुए हैं और इस

बात पर संदेह का कोई कारण नहीं कि यह अवशेष जिस ढांचे से संबंधित है वह अत्यंत विशाल रहा होगा, जब हम इस बात पर विचार करते हैं कि वह ढांचा दो हजार वर्ष पहले ढह गया होगा । इन अवशेषों पर आज भी रामगढ़ या 'राम का किला' अंकित है; 'सर्वाधिक उल्लेखनीय स्थान वह है, जिसके बारे में ऋषि-मुनियों का कहना है कि वहां से राम ने स्वर्ग के लिए प्रस्थान किया था और इस नगर के सभी लोगों को भी साथ ले गए थे' । जिसके परिणामस्वरूप यह नगर लगभग आधी शताब्दी तक ईसाई युग के आगमन के पूर्व तक वीरान पड़ा रहा और तब इस नगर को 360 मंदिरों द्वारा अलंकृत किया गया । तथापि, अब इन मंदिरों के लघुतम अवशेष भी शेष नहीं हैं; स्थानीय लोगों के अनुसार इन मंदिरों को औरंगजेब द्वारा ध्वस्त कर दिया गया था जिसने इस स्थल के एक भाग पर मस्जिद का निर्माण कराया । तथापि, इस परंपरा का झूठ मस्जिद की दीवार पर स्थापित शिलालेख, जिसके द्वारा इस कार्य के लिए सम्राट बाबर, जिसके वंश का औरंगजेब पांचवां शासक था, को जिम्मेदार ठहराया गया, द्वारा साबित हो जाता है । मस्जिद केवल पांच से छह फीट की ऊंचाई वाले स्तंभों की चौदह कतारों, किंतु अत्यंत विस्तृत और रुचिपूर्वक की गई कारीगरी द्वारा अलंकृत है, जिसके बारे में यह कहा जाता है कि यह कारीगरी हिंदू भवनों के अवशेषों की नकल है ..... एक पत्थर का चतुष्कोणीय संदूक, जिसके ऊपर सफेद रंग का लेप चढ़ा हुआ है, जिसकी लंबाई पांच एल्स और चौड़ाई चार एल्स है और जो भूमि से पांच या छह इंच ऊपर उभरा हुआ है और जिसके बारे में कहा जाता है कि यह वह पालना है, जिसमें राम, जो विष्णु के सातवें अवतार थे... का पता चला; और तद्नुसार इसको तीर्थ यात्रियों और हिंदू श्रद्धालुओं द्वारा बहुतायत से सम्मानित किया गया । अयोध्या या आउध को हिंदुस्तान में सर्वाधिक प्राचीन नगरों का सर्वोत्तम प्रमाण माना जाता है । इस वृत्तांत में यह उल्लेख है कि प्राचीन मंदिरों का कोई भी अवशेष शेष नहीं रहा । इस गज़ेटियर में 'मस्जिद की दीवार पर स्थापित शिलालेख' का अवलंब लिया गया, ताकि इसके निर्माण का श्रेय बाबर को दिया जा सके और साथ ही यह उल्लेख किया गया है कि 'स्थानीय लोगों' ने मंदिरों के ध्वंस और मस्जिद के निर्माण का श्रेय औरंगजेब को दिया और गज़ेटियर में बुचमैन के विचार का अवलंब लिया गया । **प्रदर्श 123 - वाद संख्या 5 -** सर्जन जनरल एडवर्ड बालफोर ने 'इनसाइक्लोपीडिया आफ इंडिया एंड आफ ईस्टर्न एंड सदर्न एशिया, कामर्शियल, इंडस्ट्रियल एंड साइंटिफिक : प्रोडक्ट्स आफ

द मिनरल, वेजिटेबल एंड एनीमल किंगडम्स, यूजफुल आर्ट्स एंड मैन्युफैक्चरर्स' में लिखा है, जिसमें अयोध्या को निर्दिष्ट किया गया है : "अयोध्या, घाघरा नदी के दाहिने किनारे पर, अवध में फैज़ाबाद के निकट, 26 डिग्री 48' 20" के देशांतर और 80 डिग्री 24' 40" पूर्व के अक्षांश पर स्थित है । वर्तमान में इसकी जनसंख्या में 7518 हिंदू और मुसलमान हैं, किंतु प्राचीन काल में यह आधुनिक अवध के कोसाला राजवंश की राजधानी थी, जिस पर सूर्यवंश के महान राजा दशरथ, जो रामचंद्र के पिता थे, द्वारा शासन किया जाता था । एक समय ऐसा भी था जब यह कहा जाता था कि यह नगर बारह योजन अर्थात् छियानबे मील के क्षेत्र में फैला हुआ है । बौद्ध प्रभुत्व के दौरान अयोध्या का पतन हुआ किंतु ब्राह्मणत्व के पुनर्जीवित होने के साथ ही राजा विक्रमादित्य (ईशा पूर्व 57) द्वारा इस नगर का पुनर्स्थापन किया गया । इस नगर में हिंदू पूजा स्थलों पर अनेक जैन मंदिर और तीन मस्जिदें हैं, यहां पर स्वर्ग द्वार (मंदिर) स्थित है, जहां पर उनका दाह संस्कार किया गया था और त्रेता का ठाकुर स्थित है, जिसको उनके महान बलिदानों में से एक के परिदृश्य के रूप में विरचित किया गया है । यहां पर बाबू बेगम का मकबरा भी स्थित है, जो संपूर्ण अवध में सर्वोत्कृष्ट मकबरा माना जाता है ।" **प्रदर्श 6 - वाद संख्या 5 -** एलेक्जेंडर कुनिंघम, जो भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के महानिदेशक थे, ने 'भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण - वर्षों 1862 - 63 - 64 - 65 के दौरान चार रिपोर्टें तैयार कीं' । कुनिंघम ने अयोध्या का उल्लेख किया है : "अयोध्या में अनेक अत्यंत पवित्र ब्राह्मणवादी मंदिर हैं, किंतु वे सभी आधुनिक काल के हैं और किसी भी प्रकार के वास्तुशिल्प संबंधी दिखावे धारण नहीं करते । किंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि उनमें से अधिकांश मंदिर प्राचीन मंदिरों, जिनको मुसलमानों द्वारा नष्ट कर दिया गया था, के स्थलों पर विद्यमान हैं । अतः, नगर की पूर्वी दिशा में स्थित रामकोट या हनुमानगढ़ी चाहरदीवारी से घिरे हुए लघु किला हैं, जिसके भीतर एक प्राचीन टीले के शीर्ष पर आधुनिक मंदिर स्थित हैं । रामकोट नाम निश्चित रूप से प्राचीन नाम है, चूंकि यह मणि पर्वत की परंपराओं से जुड़ा हुआ है, जिसका उल्लेख बाद में किया जाएगा; किंतु हनुमान का मंदिर औरंगजेब के काल से अधिक प्राचीन नहीं है । नगर के उत्तर-पूर्वी कोने में स्थित रामघाट वह स्थान है, जहां राम ने स्नान किया था और स्वर्गद्वारी या स्वर्गाद्वारी अर्थात् 'स्वर्ग का द्वार' के लिए प्रस्थान किया था । यह विश्वास किया जाता है कि उत्तर-पश्चिमी दिशा में वह स्थान स्थित है, जहां उनके शरीर

का दाह संस्कार किया गया था । इसके कुछ वर्ष पहले तक वहां पर एक अत्यंत पवित्र बरगद का वृक्ष खड़ा था, जिसे अशोक वट या 'शोकरहित बरगद' कहा जाता है । यह नाम अधिसंभाव्य रूप से स्वार्गाद्वारी से इस विश्वास के अंतर्गत जुड़ा हुआ है कि वे लोग, जिनकी मृत्यु हो चुकी है या जिनका दाह संस्कार किसी भी जन्म में इस स्थान पर किया गया, भविष्य के जन्मों से निश्चित रूप से मुक्ति पा जाएंगे । इसके निकट लक्ष्मण घाट स्थित है, जहां उनके भाई लक्ष्मण ने स्नान किया था और उस घाट के लगभग एक चौथाई मील की दूरी पर शहर के केंद्र में राम का जन्मस्थान या 'जन्मस्थान मंदिर' स्थित है । इसके लगभग पश्चिम में पांच मील की दूरी पर गुप्त घाट और सफेद रंग से रंगे हुए आधुनिक मंदिर स्थित है । यह ऐसा स्थान है, जिसके बारे में कहा जाता है कि यहां से लक्ष्मण विलुप्त हो गए थे और इसलिए इस स्थान को गुप्त शब्द के आधार पर गुप्तार घाट भी कहा जाता है, जिसका अर्थ है 'छिपा हुआ' या 'छिपाया गया' । कुछ लोगों का कहना है कि इस स्थान से राम विलुप्त हो गए थे किंतु लोगों की यह किंवदंती स्वर्गाद्वारी पर उनके दाह संस्कार की कथा के फेरफार में है ।" **प्रदर्श 49 – वाद संख्या 5** – पी. कारनेजी, जो फैज़ाबाद में कार्यवाहक आयुक्त और निपटारा अधिकारी के पद पर तैनात थे, ने 'हिस्टोरिक स्केच आफ फैज़ाबाद विद ओल्ड कैपिटल्स, अजोध्या एंड फैज़ाबाद (1870)' नामक वृत्तांत लिखा । कारनेजी ने हिंदुओं की आस्था के बाबत अयोध्या के महत्व को रेखांकित किया है : "अजुधिया, जो हिंदुओं के लिए उसी प्रकार से पवित्र है, जैसेकि मुसलमानों के लिए मक्का और यहूदियों के लिए जेरुसलम और यह स्थान परम्परानिष्ठ लोगों की परंपराओं के अनुसार अत्यधिक पौराणिक नगर है, जिसको अतिरिक्त सुरक्षा के प्रयोजनार्थ न केवल पृथ्वी पर आश्रय के रूप में स्थापित किया गया, बल्कि इस नगर स्वयमेव महान सृष्टिकर्ता के रथ, जो सदैव अस्तित्व में रहेगा, के पहिए पर भी स्थान प्राप्त है ।" कारनेजी ने जन्मस्थान, स्वर्गद्वार मंदिर और त्रेता-के-ठाकुर को निर्दिष्ट किया है । उन्होंने वर्ष 1528 में मस्जिद के निर्माण के लिए बाबर को यह उल्लेख करते हुए जिम्मेदार ठहराया कि यह मस्जिद आज भी उसके नाम पर है । कारनेजी के विचार में पूर्ववर्ती मंदिर के अनेक स्तंभों को बाबरी मस्जिद के निर्माण में प्रयोग किया था । जैसाकि उसने अभिकथित किया है, ये स्तंभ कसौटी पत्थर द्वारा निर्मित हैं और इन पर उत्कीर्णन भी है । कारनेजी, जो निपटारा अधिकारी थे, ने उस साम्प्रदायिक दंगे का भी उल्लेख किया है, जो हिंदुओं

और मुस्लिमों के बीच वर्ष 1855 में घटित हुआ था । उनके अनुसार इस टकराव के दौरान हिंदुओं ने हनुमानगढ़ी पर कब्जा कर लिया था, जबकि मुस्लिमों ने जन्मस्थान का कब्जा ले लिया था । मुस्लिमों द्वारा हनुमानगढ़ी पर कब्जे के प्रयास को हिंदुओं द्वारा विफल कर दिया गया था, जिसके परिणामस्वरूप 75 मुसलमानों की मृत्यु हुई थी, जिनको कब्रिस्तान में दफनाया गया था । अभिकथित रूप से हिंदुओं ने जन्मस्थान का कब्जा ले लिया था । कारनेजी के अनुसार तब तक हिंदू और मुस्लिम, दोनों इस स्थान पर समान रूप से उपासना करते थे और वे इस स्थान को 'मस्जिद-मंदिर' कहते थे । तथापि, साम्राज्यवादी शासनकाल से ही एक लोहे का घेरा स्थापित कर दिया गया था और कहा जाता है कि उसी घेरे के भीतर मुस्लिम नमाज अदा करते थे जबकि घेरे के बाहर हिंदुओं ने एक चबूतरे का निर्माण कर लिया था और जिस पर वे अपनी उपासना करते थे । कारनेजी के वृत्तांत को नीचे उद्धृत किया गया है : **जन्मस्थान और अन्य मंदिर** – इस बात की पुष्टि स्थानीय लोगों ने की है कि महोमेदान विजय के समय तीन महत्वपूर्ण हिंदू पूजा स्थल विद्यमान थे, किंतु तत्समय अजुध्या वनक्षेत्र से कुछ अलग क्षेत्र था । ये तीन पूजा स्थल थे 'जन्मस्थान', 'सरगाद्वार मंदिर', जिसको 'राम दरबार' के नाम से भी जाना जाता था और 'त्रेता-का-ठाकुर' । इन तीनों पूजास्थलों में से प्रथम पूजा स्थल के स्थान पर सम्राट बाबर ने वर्ष 1528 ए. डी. में मस्जिद का निर्माण कराया था, जो आज भी उसके नाम से जानी जाती है; द्वितीय मंदिर के स्थान पर औरंगजेब ने भी यही कार्य 1658-1707 ए. डी. के दौरान कराया; और तृतीय मंदिर पर भी उसी राजा या उसके पूर्वाधिकारियों ने मस्जिद का निर्माण सुप्रसिद्ध महोमेदान सिद्धांतों, जिनके अंतर्गत वे अपने धर्म को उन सभी लोगों, जिन पर वे विजय प्राप्त करते थे, प्रवर्तित करते थे, के अनुसार कराया । <u>जन्मस्थान उस स्थान को कहते हैं, जहां रामचंद्र का जन्म हुआ था</u> । सरगाद्वार वह द्वार है, जिसके द्वारा उन्होंने स्वर्ग को प्रस्थान किया था, संभवत: यह वह स्थान है, जहां उनके शरीर का दाह संस्कार किया गया था । त्रेता-का-ठाकुर उस स्थान के रूप में प्रसिद्ध था, जहां राम ने महान त्याग किया था और जिस स्थान पर उन्होंने अपनी और सीता की प्रतिमाओं को स्थापित करने के द्वारा उत्सव मनाया था । बाबर की मस्जिद – लेडेन द्वारा लिखित 'मेमोएर आफ बाबर' के अनुसार वह सम्राट तारीख 28 मार्च, 1528 को सरयू और घाघरा नदियों के संगम, जो अजुध्या से पूर्व की तरफ दो या तीन कोस दूर का स्थान है, पर

विश्राम कर रहा था और वहां पर उसने आस-पास के देशों से संबंधित मामलों का निपटारा करते हुए सात या आठ दिन व्यतीत किए थे । लेडेन द्वारा लिखित इस पुस्तक में एक सुविख्यात शिकार क्षेत्र का भी उल्लेख है, जो अवध से सात या आठ कोस की दूरी पर सरयू नदी के किनारे स्थित है । यह उल्लेखनीय है कि बाबर के जीवन से संबंधित इस पुस्तक की समस्त प्रतियों में वे पृष्ठ गायब हैं, जो अजुध्या में उसके कार्यों से संबंधित हैं । बाबरी मस्जिद में दो स्थानों पर वह वर्ष, जिसमें उसका निर्माण हुआ, 935 हिजरी, जो वर्ष 1528 ए. डी. के तत्समान है, पत्थर पर उत्कीर्णित है और साथ ही वे शिलालेख पर स्थापित है, जो उस सम्राट की प्रशंसा से संबंधित है । अजुधिया वन क्षेत्र से हटकर क्षेत्र था, वहां पर जन्मस्थान में एक उत्कृष्ट मंदिर अवश्य स्थित था; इस मंदिर के अधिसंख्य स्तंभ आज भी विद्यमान हैं और भली-भांति संरक्षित हैं, जिनका प्रयोग बाबरी मस्जिद के निर्माण में मुसलमानों द्वारा किया गया । ये स्तंभ मजबूत करीबी दाने वाले गहरे स्लेटी रंग के हैं, जिसको स्थानीय लोगों द्वारा कसौटी (वस्तुतः कसौटी) कहा जाता है और इन पर विभिन्न उपकरणों से उत्कीर्णन का कार्य भी किया जाता है । मेरे विचार में ये स्तंभ बौद्ध स्तंभों के अत्यधिक समान हैं, जैसाकि मैंने बनारस और अन्य स्थानों पर देखा । वे सात से आठ फीट लंबे हैं और उनके आधार, केंद्रीय स्थान और शीर्ष वर्गाकार हैं और बीच का स्थान गोलाकार या अष्टकोणीय है । **हिंदुओं और मुसलमानों के मतभेद** – जन्मस्थान हनुमानगढ़ी के कुछ सौ कदमों के भीतर स्थित है । वर्ष 1855 में जब हिंदुओं और मुसलमानों के मध्य बड़ा संघर्ष हुआ, तब हिंदुओं ने हनुमानगढ़ी पर बलपूर्वक कब्जा कर लिया, जबकि मुसलमानों ने जन्मस्थान पर कब्जा कर लिया । उस अवसर पर मुसलमानों ने वास्तव में हनुमानगढ़ी की सीढ़ियों पर आग लगा दी थी, किंतु उनको अत्यधिक हानि का सामना करते हुए वापस भागना पड़ा था । तब हिंदुओं ने इस सफलता का उत्सव मनाया था और उन्होंने तीसरे प्रयास में जन्मस्थान के उस द्वार पर कब्जा कर लिया, जहां 75 मुसलमान 'शहीदों की कब्रों' (गंज-शाहिद) में दफन हैं । अनेक राजाओं के सैन्य-दल (रेजिमेंट्स) इन घटनाओं को घटित होते हुए देख रहे थे, किंतु उनको आदेश था कि वे मध्यक्षेप न करें । यह कहा जाता है कि उस समय तक हिंदुओं और मुसलमानों ने मस्जिद-मंदिर में एक साथ उपासना करना आरंभ कर दिया था । ब्रिटिश शासन के दौरान विवाद के निवारण के लिए एक लोहे की जाली स्थापित कर दी गई थी, जिसके भीतर मस्जिद में

मुसलमान नमाज अदा करते थे, जबकि जाली के बाहर हिंदुओं ने एक चबूतरे का निर्माण कर लिया था, जिस पर वे उपासना करते थे । विभिन्न हिंदू पक्षों ने कारनेजी के वृत्तांत का अवलंब हिंदुओं के इस विश्वास को साबित किए जाने के प्रयोजनार्थ लिया कि भगवान राम का जन्मस्थान और कसौटी के स्तंभों की कतारों का प्रयोग मस्जिद के निर्माण में किया गया था । कसौटी के स्तंभों पर उत्कीर्णन का भी निदेश इस वृत्तांत में समाविष्ट है । कारनेजी का वृत्तांत, जिसको वर्ष 1870 में प्रकाशित किया गया था, में उस घटना का उल्लेख है, जो 1855 में हिंदुओं और मुस्लिमों के टकराव को लेकर घटित हुई थी । उन्होंने उस उपासना को भी निर्दिष्ट किया है, जो हिंदुओं और मुसलमानों द्वारा 'मस्जिद-मंदिर' में इस घटना के पूर्व की जा रही थी और साथ ही घटना के पश्चात् विवादों को रोके जाने की दृष्टि से घेरे के निर्माण का भी उल्लेख किया है । कारनेजी ने उल्लेख किया है कि घेरे का निर्माण इसलिए किया गया था ताकि दोनों समुदायों को एक दूसरे से पृथक् रखा जा सके और मुस्लिमों को मस्जिद के भवन के भीतर नमाज अदा करने और साथ ही हिंदुओं को भवन के बाहर उपासना करने की अनुज्ञा प्रदान कर दी गई थी, जहां उन्होंने उपासना के प्रयोजनार्थ चबूतरे का निर्माण कर लिया था । **प्रदर्श 6 – वाद संख्या 5** – गज़ेटियर आफ अवध 1877 : इस गज़ेटियर में उन्हीं निबंधनों के अनुसार वर्णन समाविष्ट है, जैसाकि कारनेजी के वृत्तांत में उल्लिखित है और इसलिए इस गज़ेटियर का अधिक विस्तारपूर्वक उल्लेख किए जाने की आवश्यकता नहीं है । **प्रदर्श 8 – वाद संख्या 5** – ए. एफ. मिलेट द्वारा लिखित 'द रिपोर्ट आफ सेटलमेंट आफ लैंड रेवेन्यू, फैज़ाबाद डिस्ट्रिक्ट (1880)' में कारनेजी के वृत्तांत की अंतर्वस्तु को विस्तारपूर्वक समाविष्ट किया गया है । **प्रदर्श 52 – वाद संख्या 5** – एच. आर. नेविल, आई. सी. एस. ने 'बाराबंकी – ए गज़ेटियर वॉल्यूम XIVIII आफ द डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर आफ द यूनाईटेड प्रोविंसेज़ आफ आगरा एंड अवध (1902)' नामक पुस्तक का संपादन और संकलन किया था । इस पुस्तक में हिंदुओं और मुस्लिमों के मध्य संघर्ष, जो 1850 में घटित हुआ था, का उल्लेख है । **प्रदर्श 10 – वाद संख्या 5** – 'द इम्पीरियल गज़ेटियर आफ इंडिया, प्रोविंशियल सीरीज़, यूनाईटेड प्रोविंसेज़ आफ आगरा एंड अवध - वॉल्यूम-II (इलाहाबाद, बनारस, गोरखपुर, कुमायूं, लखनऊ और फैज़ाबाद डिवीजन्स एंड द नेटिव स्टेट्स)' । इस इम्पीरियल गज़ेटियर में अयोध्या का निम्नलिखित वृत्तांत समाविष्ट है । "अजोध्या कोसाला के साम्राज्य की राजधानी थी

और इस साम्राज्य में महान राजा दशरथ, जो राजा मनु के वंश में सूर्य वंश के 56वें सम्राट थे, का शासन था । रामायण के आरंभिक अध्यायों में इस नगर के वैभव, सम्राट के गौरव और उनकी प्रजा के सद्गुणों, धन और निष्ठा का वर्णन है । दशरथ (रामायण) महाकाव्य के नायक रामचंद्र, जिनके संप्रदाय का आधुनिक काल में अत्यधिक मात्रा में पुनः प्रवर्तन का अनुभव किया गया, के पिता थे । सूर्यवंश के अंतिम राजा के पराभव के साथ ही राजा सुमित्र, जो इस वंश के 113वें सम्राट थे, के काल में अजोध्या वीरान हो गई थी और राजसी परिवार बिखर गया था । उदयपुर, जयपुर के राजा इस बिखरे हुए परिवार के विभिन्न सदस्यों के वंशज होने का दावा करते हैं । परंपराओं के अनुसार अजोध्या को उज्जैन के राजा विक्रमादित्य, जिनकी पहचान विवादित है, द्वारा पुनर्स्थापित किया गया था । बौद्ध काल में, जब साकेत कोसाला के नगर का प्रधान बना, तो अजोध्या का अल्प महत्व था । यह आज भी अनिश्चित है कि साकेत कहां पर स्थित था और यह सुझाव दिया गया है कि यह नगर अजोध्या के प्राचीन नगर के एक भाग में स्थित था । प्राचीन मुद्रा के साक्ष्य अजोध्या में या उसके आसपास ईसाई संवत के आरंभ के पूर्व तक स्वतंत्र राजाओं की श्रृंखला द्वारा शासन किए जाने की तरफ संकेत करते हैं ।" 'गज़ेटियर में वर्तमान नगर को निर्दिष्ट करते हुए उल्लेख है : "वर्तमान नगर एक ऊंची पहाड़ी के भीतर की तरफ फैला हुआ है, जहां से घाघरा नदी दिखाई देती है । विशाल टीले, जिसे रामकोट या राम का किला कहा जाता है, के एक कोने पर वह पवित्र स्थान है जहां इस नायक (राम) का जन्म हुआ था । इस किले का अधिकांश अहाता एक पुराने मंदिर के अवशेषों से आरंभ होकर बाबर द्वारा निर्मित मस्जिद के अधिभोग में है और बाहरी भाग में एक छोटा चबूतरा और पूजा स्थल जन्मस्थान के द्योतक हैं । इसी के निकट एक विशाल मंदिर स्थित है, जिसमें सीता, जो राम की निष्ठावान पत्नी थी, की रसोई दर्शित होती है । घाघरा के किनारे एक ऊंचा मंदिर ऐसे स्थान पर स्थित है, जहां लक्ष्मण ने स्नान किया था और हनुमान, जो बंदरों के राजा थे, की नगर के एक विशाल मंदिर में उपासना होती है, जिस पर चढ़ने के लिए असंख्य सीढ़ियों का प्रयोग करना पड़ता है और इस मंदिर का नाम हनुमानगढ़ी है । 18वीं और 19वीं शताब्दियों के दौरान निर्मित अन्य उल्लेखनीय मंदिरों में एक उत्कृष्ट मंदिर कनक भवन, स्थित है, जिसका निर्माण टीकमगढ़ के रानी द्वारा कराया गया था, नागेश्वर नाथ मंदिर, दर्शन सिंह का मंदिर और वर्तमान महाराजा द्वारा निर्मित एक लघु

संगमरमर का मंदिर भी स्थित है । अजोध्या में अनेक जैन मंदिर भी स्थित हैं, जिनमें से पांच का निर्माण 18वीं शताब्दी में पांच (जैन) महाधर्माधिकारियों के जन्मस्थानों के प्रतीक के रूप में कराया गया था । बाबर की मस्जिद के अतिरिक्त औरंगजेब द्वारा निर्मित दो जर्जर मस्जिदें विख्यात हिंदू पूजा स्थलों - स्वर्गाद्वार जहां राम के शरीर का दाह संस्कार हुआ था और त्रेता-का-ठाकुर, जहां उन्होंने भेंट चढ़ाई थी, के स्थान पर खड़ी हैं । बाद में यहीं पर कन्नौज के अंतिम राजा जयचंद का शिलालेख भी पाया गया । यहां पर मुसलमानों द्वारा तीन कब्रों का निर्माण भी किया गया, जिनके आईने-अकबरी के अनुसार नाम हैं, नूंह सेठ और जॉब का मकबरा और दो अन्य कब्रों पर भी यही नाम उल्लिखित हैं । निकट स्थित एक विशाल टीला, जिसे महा पर्वत के नाम से जाना जाता है, के बारे में कहा जाता है कि इसको हनुमान द्वारा तब गिरा दिया गया था, जब वे हिमालय का एक भाग लेकर जा रहे थे, जबकि एक अन्य परंपरा के अनुसार यह कहा जाता है कि इस टीले का निर्माण उन मजदूरों द्वारा किया गया था, जिन्होंने रामकोट का निर्माण किया, जब वे कार्य के दौरान अपने टोकरों की मिट्टी झाड़ते हुए जाते थे; यह टीला संभवत: एक जर्जर स्तूप को आच्छादित करता है ।" **प्रदर्श 23 – वाद संख्या 5** – हंस बक्कर ने अपनी पुस्तक 'अयोध्या' तीन भागों में लिखी है । इस पुस्तक की प्रस्तावना में अभिकथित है कि प्रथम भाग अयोध्या के इतिहास, धार्मिक आंदोलनों, जिनके कारण इसका विकास हुआ, स्थानीय संदर्भ, जिसमें इस नगर ने ठोस स्वरूप प्राप्त किया और वह रीति, जिसमें यह नगर धार्मिक पुस्तक अयोध्या महात्म्य में परावर्तित होता है, से संबंधित है । लेखक ने इस पुस्तक के प्रस्तुतीकरण में उल्लेख किया है : "...महत्वपूर्ण परिणामों वाले दो मामले स्पष्ट होते हैं । प्रथम मामला यह है कि अयोध्या का तीर्थस्थान के केंद्र के रूप में धार्मिक विकास द्वितीय शताब्दी ए. डी. में आरंभ हुआ और इसके परिणामस्वरूप अयोध्या महात्म्य अपने समस्त संस्करणों में इसी अवधि से संबंधित है; द्वितीय मामला यह है कि इस नगर के धार्मिक महत्व का विकास विष्णु की प्रमुख अभिव्यक्ति के रूप में राम की उपासना की वृद्धि के साथ जुड़ा हुआ था ।" लेखक ने अध्याय 1 में साकेत/अयोध्या की खोज के लिए 600 बी. सी. से 1000 ए. डी. के दौरान की अवधि को यह उल्लेख करते हुए चुना कि यह स्थल सरयू (घाघरा) के कटाव पर स्थित है, जो आधुनिक नगर को तीन दिशाओं से घेरती है । उसने अभिकथित किया : "इस स्थल के केंद्र में ऊबड़-खाबड़ भूमि वाला

क्षेत्र है, जिसको रामकोट या कोट रामचंदर कहा जाता है, जिसका बड़ा भाग आज मंदिरों और मठों के अधिभोग में है । तथापि, विशेष रूप से इसकी दक्षिणी दिशा में अनेक मानव निर्मित टीले पाए जाते हैं, जिनका निर्माण नहीं किया गया बल्कि वे टूटी हुई ईंटों और पत्थरों की शिलाओं के ढेर के कारण निर्मित हो गए हैं । इनमें विशेष रूप से उत्तर-पश्चिम कोने में स्थित तथाकथित कुबेर टीला है । तीन तरफ से नदी से घिरा हुआ ऊपर वर्णित स्थल और उसके केंद्र में ऊंचाई वाली भूमि का क्षेत्र, जो नदी पार करने वाले क्रॉसिंग से अधिक दूरी पर स्थित नहीं है, में प्राचीन आबादी की समस्त भौतिक विशेषताएं समाविष्ट हैं । अभी तक अयोध्या में किए गए दो उत्खनन संसूचित हैं ।" बेकर ने उल्लेख किया है कि प्रथम शताब्दी ए. डी. के मध्य से कोसाला के दत्ता शासकों को पश्चिम में कुषाणों की शक्ति का उत्तरोत्तर रूप से सामना करना पड़ रहा था, जिसके परिणामस्वरूप कनिष्क की राजधानी के मार्ग को अवरुद्ध कर दिया गया था । बेकर के अनुसार वर्ष 320 ए. डी. में चंद्रगुप्त प्रथम और उसके उत्तराधिकारी समुद्रगुप्त के शासन काल के दौरान साकेत को प्रत्यक्षत: पाटलिपुत्र के प्रत्यक्ष शासन के अंतर्गत कर दिया गया । वहां पर चौथी शताब्दी ए. डी. के उत्तरार्ध में ब्राह्मणवादी संस्थाएं और शिक्षा पुनर्जीवित हो गईं थीं, जिसके संदर्भ में यह अभिकथित किया गया है : "प्रारंभिक गुप्त अवधि के दौरान ब्राह्मणवादी धर्म के हिंदुत्व में विकास के लक्ष्य को प्राप्त कर लिया गया था । राजा को देवता के स्वरूप में मान्यता के साथ-साथ उसके रूप में पृथ्वी पर ईश्वर के अवतार के मत को – चाहे वह मूर्ति के स्वरूप में हो या 'ऐतिहासिक' मानव के स्वरूप में – प्रबल आधार प्राप्त हुआ । इसके परिणामस्वरूप जैसाकि हमको ज्ञात है । अयोध्या के गौरवशाली नगर को साकेत नगर के रूप में मान्यता प्रदान किए जाने का मार्ग प्रशस्त हो गया था । अयोध्या का यह पुनरुत्थान इतना प्रभावी था कि बौद्ध यात्री फ़ाहियान, जिसने समुद्रगुप्त के उत्तराधिकारी चंद्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल के दौरान साकेत की यात्रा की थी, को 'महान देश साची' और उसकी राजधानी में अपनी रुचि के योग्य कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ । हम उसके यात्रा वृत्तांत के आधार पर जिस बात को समझ पाते हैं, वह यह है कि साकेत दीवारों से घिरा हुआ नगर था ।" बेकर ने पांचवीं शताब्दी में इस नगर के इतिहास को रेखांकित करते हुए उल्लेख किया : "पांचवीं शताब्दी इस नगर के इतिहास में एक निर्णायक चरण लेकर आई । इस अवधि में साकेत/अयोध्या ने संपन्नता का उच्चतम शिखर देखा और महान ईश्वाकु राजाओं की राजधानी

के रूप में इसके 'पूर्ववर्ती' गौरव को पुनर्स्थापित होते हुए देखा । यह सत्य है कि गुप्त साम्राज्य के विखंडन और सामान्य मंदी के परिणामस्वरूप आने वाली शताब्दियों में इसकी प्रतिष्ठा को गहरा धक्का लगा : फिर भी यह नगर उन परिणामों से बचा रहा, जो गुप्त साम्राज्य के अधिसंख्य नगरों को भुगतने पड़े, गुप्तकाल के पश्चात् इनके अस्तित्व क्षीण हो गए, जिसके परिणामस्वरूप यह नगर इतिहास के पन्नों से अंतिम रूप से अदृश्य हो गए । ईश्वाकुओं के पौराणिक नगर के रूप में इस नगर की मान्यता धन्य है और उससे भी अधिक स्वयमेव विष्णु के अवतार के रूप में राम की राजधानी, यह नगर हिंदुओं की नजरों से कभी भी पूर्णत: ओझल नहीं हुआ और परिणामस्वरूप, जब इस नगर के प्राकट्य के लिए परिस्थितियां अनुकूल हुईं, तब यह नगर उत्तर भारत के सर्वाधिक पवित्र नगर के रूप में पुन: प्रकट हुआ । अन्य पवित्र नगरों मथुरा और वाराणसी, 'जिनको गुप्तकाल के पश्चात् व्यावहारिक रूप से त्याग दिया गया था', यह नगर द्वितीय शताब्दी के आरंभ में पुन: प्रकट हुआ ।" बेकर ने उल्लेख किया है कि अयोध्या की उत्तरजीविता का श्रेय उत्तर भारत में उसकी केंद्रीय स्थिति और गंगा के मैदानी क्षेत्रों में उसके सामरिक महत्व को दिया जा सकता है । अयोध्या तेरहवीं शताब्दी में एक बार पुन: दिल्ली सल्तनत की प्रांतीय राजधानी बना । पश्चात्वर्ती समय में वाणिज्यिक और सामरिक महत्व की दृष्टि से इस नगर का स्थान परस्पर विरोधी नगरों – 15वीं शताब्दी में जौनपुर, 18वीं शताब्दी में फैज़ाबाद और 18वीं शताब्दी के अंत और 19वीं शताब्दी के आरंभ में लखनऊ द्वारा ले लिया गया । अयोध्या कभी क्षीण नहीं हुआ और यह अभिकथित किया जाता है कि यह नगर में धार्मिक जीवन के फलने-फूलने का साक्षी रहा है । बेकर ने चीन के स्रोतों का उल्लेख करते हुए मताभिव्यक्ति की : "जैसाकि हम चीन के स्रोतों से जानते हैं कि (परमार्थ के अनुसार) राजा विक्रमादित्य अर्थात् स्कंदगुप्त का राजसी न्यायालय अयोध्या या (ह्वेन त्सांग के अनुसार) स्रावस्ती देश में स्थापित था । यह संदेह के परे है कि 'स्रावस्ती देश कोसाला, जिसकी तत्समय राजधानी साकेत/अयोध्या थी, न कि स्रावस्ती, को निर्दिष्ट करता है । यहां पर इस बात की संभाव्यता उत्पन्न होती है कि राजसी न्यायालय पहले ही कुमारगुप्त के शासनकाल के दौरान पाटलिपुत्र से साकेत/अयोध्या को स्थानांतरित कर दिया गया था । हमने देखा है कि अयोध्या का नाम दर्शित करने वाला पहला शिलालेख इस राजा के शासनकाल का है । संरक्षित किए गए शिलालेखों में पाटलिपुत्र के शासक के रूप में वर्णित

अंतिम शासक कुमारगुप्त थे, जो चंद्रगुप्त द्वितीय के पिता थे ।" बेकर ने उल्लेख किया है कि अयोध्या में स्थानीय परंपरा का प्रचलन है, जो विक्रमादित्य द्वारा इस नगर की खोज से संबंधित है । इस मौखिक परंपरा को मार्टिन द्वारा वर्ष 1838 में संसूचित किया गया था और तत्पश्चात् कुलिंघम और कारनेजी द्वारा (1870) । यात्रियों के वृत्तांतों और गज़ेटियरों का विश्लेषण : विलियम फिंच (1608-11) ने 'ए सिटी आफ एनसिएंट नोट एंड सीट आफ ए पोटन किंग नाउ मच रुइंड' नामक वृत्तांत में आउद (अजोध्या) का उल्लेख किया है । फिंच ने एक महल का उल्लेख किया है, जिसका निर्माण 400 वर्ष पूर्व किया गया था और 'रामचंद्र के महल और मकानों' का भी उल्लेख किया है । फिंच ने भगवान राम के साथ जुड़े हुए धार्मिक विश्वासों को उनके अवतार के प्रयोजन को अभिकथित करते हुए स्वीकार किया है । टिफेंथेलर (1770) ने अयोध्या के साथ भगवान राम के संपर्क का भी उल्लेख किया है और 'इस स्थान पर एक मंदिर, जिसका निर्माण नदी के तट पर ऊंचे स्थान पर किया गया था' को भी निर्दिष्ट किया । टिफेंथेलर ने अभिकथित किया है कि मंदिर को औरंगजेब द्वारा ध्वस्त कर दिया गया था और उसके स्थान पर मस्जिद का निर्माण कराया गया था । टिफेंथेलर ने किला, जिसको रामकोट कहा जाता है, के औरंगजेब द्वारा ध्वस्त किए जाने और उसी स्थान पर 'तीन गुंबदों वाले एक मुस्लिम मंदिर' के निर्माण का भी विनिर्दिष्ट रूप से निदेश किया है । टिफेंथेलर के वृत्तांत में यह उल्लेख भी है कि कुछ लोगों के अनुसार मस्जिद का निर्माण बाबर द्वारा किया गया था । इस वृत्तांत में 14 काले पत्थर के स्तंभों, जिनमें से 12 मस्जिद की भीतरी मेहराबों को सहारा देते थे और दो प्रवेश द्वार पर स्थित थे, का निदेश भी समाविष्ट है । उसके वृत्तांत में एक वर्गाकार बक्से की उपस्थिति का भी निदेश है, जो भूमि से पांच इंच ऊपर उभरा हुआ है और 'जिसकी लंबाई 5 एल्स से अधिक और अधिकतम चौड़ाई 4 एल्स से अधिक थी' । टिफेंथेलर के अनुसार हिंदू इसको इस विश्वास के आधार पर बेदी या पालना कहते थे कि एक कालखंड ऐसा था जब इस मकान में बेसचन (विष्णु) भगवान राम के स्वरूप में जन्मे थे । तत्पश्चात् यद्यपि औरंगजेब या बाबर ने 'इस स्थान को नष्ट करा दिया था', फिर भी पाठ में यह मताभिव्यक्ति समाविष्ट है कि वह स्थान, जहां भगवान राम के पूर्वजों का घर स्थित था, हिंदू 'तीन बार चक्कर लगाते थे और फर्श पर दंडवत प्रणाम करते थे' । इस वृत्तांत में चैत्र माह के दौरान श्रद्धालुओं के एकत्रित होने का भी उल्लेख है । टिफेंथेलर के वृत्तांत का

मूल्यांकन करते हुए (और साथ ही अन्य लेखकों के यात्रा वृत्तांतों) का उल्लेख करते हुए यह आवश्यक है कि उसने अन्य लोगों से क्या सुना, जिसके आधार पर उसने वास्तव में अवलोकन किया और संज्ञान लिया । पूर्ववर्ती बातें अनुश्रुत हैं । टिफेंथेलर के वृत्तांत में काले पत्थर वाले स्तंभों के साथ तीन गुंबदों वाले ढांचे की मस्जिद की विद्यमानता के बाबत सुव्यक्त रूप से उसके द्वारा व्यक्तिगत रूप से किए अवलोकन पर आधारित है उसका विचार कि मस्जिद का निर्माण संभवत: औरंगजेब द्वारा कराया गया था । सुव्यक्त रूप से उन बातों पर आधारित है जिनको उसने सुना था और यह ऐसी बात नहीं है जो उसकी व्यक्तिगत जानकारी पर आधारित हो । इसी प्रकार से तथ्यों पर आधारित इस बाबत कोई भी निष्कर्ष कि मस्जिद का निर्माण मंदिर के निर्माण के पश्चात् कराया गया था, का स्वतंत्र रूप से सत्यापन कराए जाने की आवश्यकता है और इस तथ्य का सत्यापन मात्र टिफेंथेलर के वृत्तांत के आधार पर नहीं किया जा सकता । उसका वृत्तांत निश्चित रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें भगवान राम के प्रति हिंदुओं की आस्था और विश्वास और तीन गुंबदों वाले ढांचे, जहां 'वर्गाकार संदूक' की जन्म के पालने के प्रतीक के रूप में उपासना की जाती थी, के अत्यंत निकट जन्मस्थान की विद्यमानता का उल्लेख है । इस वृत्तांत में स्थल की परिक्रमा और वहां पर श्रद्धालुओं के एकत्रण के रूप में उपासना के स्वरूप का भी निदेश है । हेमिल्टन का वृत्तांत 'ईस्ट इंडियन गज़ेटियर आफ हिन्दुस्तान (1828)' में घाघरा नदी के दाहिने तट पर स्थित आउद का उल्लेख है । हेमिल्टन ने इस नगर का उल्लेख करते हुए लिखा है 'यह नगर प्राचीन काल के पवित्र स्थानों में से एक पवित्र नगर' है । उसने तीर्थ स्थानों का उल्लेख किया है 'जहां महान राम की राजधानी आउद के प्राचीन नगर के अवशेष आज भी देखे जा सकते हैं; इस नगर का पूर्ववर्ती वैभव चाहे कुछ भी रहा हो, किंतु वर्तमान में इस नगर में कुछ भी दिखाई नहीं देता सिवाय अवशेषों के आकारहीन ढेर के' । उसने 'मलबे और जंगल के मध्य राम, सीता, उनके भाई लक्ष्मण, उनके सेनापति हनुमान (एक विशाल बंदर) और उनके प्रधानमंत्री को समर्पित मंदिरों के विख्यात स्थल' पाए थे । हेमिल्टन ने धार्मिक भिक्षुकों का भी उल्लेख किया है, जो 'रामाता संप्रदाय के रीति-रिवाजों के आधार पर तीर्थ यात्रा करते हैं, मंदिरों और मूर्तियों के चारों ओर परिक्रमा करते हैं, पवित्र तालाबों में स्नान करते हैं और प्रथागत अनुष्ठानों का निर्वहन करते हैं' । यद्यपि हेमिल्टन ने स्पष्ट रूप से अयोध्या स्थित मंदिरों और भगवान राम में

आस्था और विश्वास और उपासना के प्रथागत स्वरूपों का उल्लेख किया है, किंतु फिर भी उसने राम जन्मभूमि मंदिर या मस्जिद के बारे में कोई विनिर्दिष्ट मताभिव्यक्ति नहीं की है । मार्टिन के वृत्तांत (1838) में अयोध्या स्थित मंदिरों के ध्वंस का उल्लेख यह लिखते हुए किया गया है कि 'उन मंदिरों की लघुतम निशानी भी शेष नहीं है', 'जिसको सामान्य रूप से औरंगजेब के हिंदुओं के प्रति उग्र कट्टरता के द्योतक' के रूप में समझा जा सकता है । अयोध्या स्थित मस्जिद के बारे में मार्टिन ने उल्लेख किया है 'यह मस्जिद प्रत्येक रूप से अत्यधिक आधुनिक दर्शित होती है' और इस बात को इसकी दीवारों पर स्थापित शिलालेख द्वारा अभिनिश्चित किया जा सकता है कि इसका निर्माण औरंगजेब की पांच पीढ़ियों पूर्व बाबर द्वारा कराया गया था । मार्टिन ने अयोध्या के लोगों के इस विश्वास का उल्लेख किया है कि व्रिहदबाला की मृत्यु के पश्चात् यह नगर वीरान हो गया था और 'उज्जैन के विक्रम' के काल तक वीरान पड़ा रहा, जो इस पवित्र नगर की खोज में यहां पर आए और भगवान राम पर आस्था के आधार पर पवित्र स्थानों पर 360 मंदिरों का निर्माण कराया । मार्टिन ने 'विक्रम' को निर्दिष्ट करते हुए उनका उल्लेख संवत् काल के प्रवर्तक और तत्पश्चात् विक्रम, दोनों प्रकार से किया है । मार्टिन के अनुसार इस बात की संभाव्यता थी कि भगवान राम की उपासना 'पूर्ववर्ती विक्रम काल' से हो रही है, फिर भी किसी संप्रदाय के भाग के रूप में उनकी उपासना को सर्वप्रथम रामानुज द्वारा स्थापित किया गया । यही इस नगर और इसके मंदिरों के उद्गम के बाबत मार्टिन की परिकल्पना है । किंतु परिकल्पना साक्ष्य गठित नहीं करती । मार्टिन ने बाबर द्वारा निर्मित मस्जिद में स्तंभों को निर्दिष्ट करते हुए उल्लेख किया है कि ये काले पत्थर के हैं और इनको किसी हिंदू भवन से निकाला गया है और उसके साक्ष्य में उन स्तंभों के आधारों, जिनको अपवित्र किया गया, की कुछ छवियां प्रस्तुत की गई हैं । मार्टिन के अनुसार यह स्तंभ किसी महल के अवशेषों से लिए गए होंगे । उपरोक्त विश्लेषण के अनुसार मार्टिन के वृत्तांत से जो उपदर्शित होता है, वह अनुमानों पर आधारित हैं । यद्यपि मार्टिन ने मस्जिद के संबंध में अपनी स्वयं की मताभिव्यक्तियां की हैं; किंतु जहां तक भगवान राम के साथ सहबद्ध आस्था और विश्वास का प्रश्न है; और जहां तक काले पत्थर के स्तंभों की उपस्थिति का संबंध है, इस वृत्तांत में उसके अपने स्वयं द्वारा किए गए पूर्ववर्ती इतिहास का विश्लेषण बड़ी मात्रा में समाविष्ट है । एडवर्ड थोर्नटन द्वारा 'गज़ेटियर आफ द टेरिटरीज़ अन्डर द गर्वनमेंट आफ

ईस्ट इंडिया कंपनी (1858)' में समाविष्ट वृत्तांत में 'बड़े पैमाने पर अवशेष, जिनको राम के किले के अवशेष कहा जाता है', का उल्लेख किया गया । थोर्नटन ने बुचानन को संदर्भित एक पाठ से लिए गए उद्धरणों को उद्धृत किया । उसने इस नगर में चारों तरफ फैली हुई विद्या, 360 मंदिरों के निर्माण और औरंगजेब द्वारा उनके ध्वंस के बाबत (जनसाधारण के) विश्वास का उल्लेख किया । उसके द्वारा (औरंगजेब पर) मंदिर के स्थल पर मस्जिद के निर्माण का आरोप किसी ऐतिहासिक तथ्य का साक्ष्य नहीं है । थोर्नटन ने वही अभिलिखित किया, जो उसने सुना : (वर्तमान में) न तो वे लोग, जिन्होंने उसको अपनी आस्था के बारे में बताया और न ही दस्तावेजों के लेखक उपलब्ध हैं, जिनका न्यायालय के समक्ष प्रतिपरीक्षा के अनुक्रम के दौरान परीक्षण किया जा सके । इस प्रकार के वृत्तांत स्वीकार्य साक्ष्य के कठिन स्तरमानों और साथ ही अधिसंभाव्यताओं की प्रधानता, जो सिविल विचारणों को शासित करती हैं, के अधिक सीमा तक शिथिल किए गए स्तरमानों को भी पूर्ण नहीं करते । (पैरा 561, 562, 563, 564, 565, 566, 567, 568, 569, 570, 571, 572, 573, 574, 575 और 576)

निर्मोही अखाड़ा का दावा है कि जन्मस्थान, जिसको सामान्यत: जन्मभूमि के नाम से जाना जाता है, जो भगवान राम का जन्मस्थान है, उससे 'संबंधित है और सदैव संबंधित रहा है' और वही इसका प्रबंध कर रहा है और वहां पर नियुक्त महंत और सर्बराकार के माध्यम से चढ़ावा प्राप्त कर रहा है । रिसीवर के अतिरिक्त दूसरे से पांचवां प्रतिवादी शासकीय प्रत्यर्थी है, जिनका प्रतिनिधित्व उत्तर प्रदेश राज्य और उसके अधिकारियों द्वारा किया गया है । वादपत्र में यह प्रकथन समाविष्ट है कि मंदिर 'सदैव' निर्मोही अखाड़ा के कब्जे में रहा है और कम से कम वर्ष 1934 से तो उसमें प्रवेश करने और उपासना करने की अनुज्ञा केवल हिंदुओं को रही है । अन्य शब्दों में निर्मोही अखाड़ा विवादित ढांचे की हैसियत को मस्जिद के रूप में स्वीकार करने से इनकार करता है । वाद के संस्थित किए जाने का आधार नगर मजिस्ट्रेट द्वारा 1898 की दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन कार्यवाहियों का आरंभ किया जाना था । यह कार्यवाहियां अभिकथित रूप से मुस्लिम पक्षों, जिनका प्रतिनिधित्व छठे और आठवें प्रतिवादियों द्वारा किया गया था, द्वारा 'दोषपूर्ण पैरवी' के आधार पर बिना किसी विधिक कारण के आरंभ की गई थीं । इसके परिणामस्वरूप निर्मोहियों ने अभिकथित किया कि उनको 'उक्त मंदिर के उनके प्रबंधन और प्रभार' के अधिकार से दोषपूर्ण ढंग से वंचित किया गया था और वे

धारा 145 के अधीन कार्यवाहियों, अर्थात् वे कार्यवाहियां, जिनको प्रतिवादियों की मिलीभगत के कारण अनुचित रूप से विलंबित किया गया है, के निष्कर्ष की प्रतीक्षा कर रहे हैं । मुस्लिम पक्षों को इसलिए पक्ष बनाया गया है, क्योंकि वे अभिकथित रूप से इस बात को सुनिश्चित करने में हितबद्ध हैं कि मंदिर का प्रभार और प्रबंधन निर्मोही अखाड़े के सुपुर्द न किया जाए । अभिकथित रूप से इस वाद का वादकारण तारीख 5 जनवरी, 1950 को उद्भूत हुआ था जब रिसीवर ने अवैध रूप से मंदिर का प्रबंधन और प्रभार निर्मोही अखाड़ा से ले लिया था । इस घटना के पश्चात्, जो तारीख 6 दिसंबर, 1992 को घटित हुई (जिसके बाबत निर्मोहियों का यह दावा है कि 'कुछ शरारती तत्वों' द्वारा मंदिर की संपत्ति को ध्वस्त कर दिया गया) के अनुसरण में वादपत्र को संशोधित किया गया था । संशोधित वादपत्र में उस न्यास-विलेख को निर्दिष्ट किया गया है, जिसको निर्मोही अखाड़ा द्वारा तारीख 19 मार्च, 1949 को निष्पादित किया गया था और जिसके द्वारा न्यास विलेख की विद्यमानता को लिखत में परिवर्तित कर दिया गया था । अखाड़ा का दावा है कि उसके स्वामित्वाधीन अनेक मंदिर और संपत्तियां हैं, जो उसमें निहित होती हैं । इस वाद में जिस अनुतोष का दावा किया गया है, वह 'जन्मभूमि के उपरोक्त मंदिर के प्रबंधन और प्रभार से' रिसीवर को हटाए जाने और उसका कब्जा वादी को दिए जाने के बाबत है । वादपत्र में समाविष्ट प्रकथन और साथ ही साथ उसमें याचित अनुतोष जिनका दावा निर्मोही अखाड़ा द्वारा किया गया है, यह उपदर्शित करते हैं कि दावा हक पर आधारित है, जो मंदिर के प्रभार और प्रबंधन के संबंध में है । निर्मोहियों ने इस हैसियत में यह अभिकथित किया है कि वे जन्मभूमि मंदिर के कब्जे में रहे हैं और श्रद्धालुओं द्वारा चढ़ाए गए चढ़ावे को प्राप्त करते रहे हैं । इस वादपत्र में उन मंदिरों का निदेश समाविष्ट है, जो निर्मोही अखाड़ा के स्वामित्वाधीन हैं और उनके द्वारा प्रबंधित हैं । अंततः, उस अनुतोष का दावा किया गया है, जिसके द्वारा रिसीवर को निदेशित किया जाए कि वह मंदिर का प्रबंधन और प्रभार उनको हस्तगत कर दे । लिखित कथन में, जिसको मुस्लिम पक्षों (प्रतिवादी संख्या 6 से 8) द्वारा फाइल किया गया था, यह अभिवाक् किया गया था कि 1885 का वाद, जिसको महंत रघुबर दास द्वारा संस्थित कराया गया था, ईप्सित अनुतोष मस्जिद के बाहर स्थित चबूतरे तक सीमित था और मस्जिद, जिसको स्थल मानचित्र में चित्रित किया गया था, के बाबत कोई आक्षेप नहीं किया गया था । निर्मोही अखाड़ा ने अपने प्रत्युत्तर में महंत रघुबर दास द्वारा फाइल किए गए वाद के बाबत अभिज्ञता व्यक्त की । अखाड़ा का यह दावा

था कि उसको इस वाद की कार्यवाहियों के परिणामस्वरूप मंदिर के प्रबंधन के अधिकार और प्रभार से दोषपूर्वक वंचित कर दिया गया है । यद्यपि वादपत्र के अवलोकन से यह दर्शित होता है कि वाद में किया गया दावा भीतरी बरामदे के संबंध में था, फिर भी दसवें प्रतिवादी द्वारा फाइल किए गए लिखित कथन के उत्तर में निर्मोही अखाड़ा द्वारा फाइल किए गए प्रत्युत्तर में यह अभिकथित किया गया कि बाहरी प्रांगण 1982 तक उनके कब्जे में था और उनके स्वामित्वाधीन था और उनके द्वारा प्रबंधित था और वर्ष 1982 में इसका कब्जा 1982 के नियमित वाद संख्या 39 में रिसीवर द्वारा ले लिया गया था । वाद संख्या 3 में निर्मोही अखाड़ा द्वारा फाइल किए गए अभिवचन में समाविष्ट प्रकथनों को वाद संख्या 5 में उनके द्वारा फाइल की गई प्रतिरक्षा की प्रकृति के साथ पढ़ा जाना चाहिए । वाद संख्या 5 भगवान राम के देवता और जन्मस्थान द्वारा वादमित्र के माध्यम से संस्थित कराया गया था । निर्मोही अखाड़ा ने वाद संख्या 5 में फाइल किए गए अपने लिखित कथन में वाद की पोषणीयता को इस आधार पर चुनौती दी है कि जन्मस्थान विधिक व्यक्ति नहीं है और वादमित्र को देवता और जन्मस्थान की तरफ से वाद को संस्थित कराने का कोई अधिकार या प्राधिकार नहीं था । निर्मोही अखाड़ा ने स्वयं को वाद संख्या 5 से यह दावा करते हुए दूर रखा कि भगवान राम की मूर्ति को 'रामलला विराजमान' के रूप में नहीं जाना जाता है और जन्मस्थान साधारणत: एक स्थान है और यह स्थान विधिक व्यक्ति नहीं है । निर्मोही अखाड़ा ने लिखित कथन में दावा किया है कि 'विवादित मंदिर में स्थापित भगवान श्रीराम का शिबायत' ही वास्तविक व्यक्ति है और 'केवल' अखाड़ा को ही मंदिर पर नियंत्रण रखने, उसका पर्यवेक्षण करने और मरम्मत कराने और यहां तक कि उसका पुनर्निर्माण कराने का अधिकार है, यदि ऐसा किया जाना आवश्यक हो । उन्होंने अपने लिखित कथन में यह दावा भी किया है कि शिबायत और प्रबंधक की अपनी हैसियत के रूप में 'मंदिर निर्मोही अखाड़ा की संपत्ति है' और वाद संख्या 5 में वादी 'को वास्तविक रूप से वाद फाइल करने का कोई स्वत्व प्राप्त नहीं है' । उन्होंने दलील दी कि वाद संख्या 5 मंदिर का प्रबंधन करने के निर्मोही अखाड़ा के अधिकारों का अतिलंघन करता है । निर्मोही अखाड़ा की दलील है कि संपूर्ण परिसर उनकी संपत्ति है और वाद संख्या 5 के वादियों को निर्मोही अखाड़ा के अधिकार और स्वत्व के विरुद्ध घोषणात्मक अनुतोष प्राप्त करने का कोई अधिकार नहीं है । अतिरिक्त लिखित कथन में यह दावा किया गया है कि विवादित ढांचे का बाहरी भाग निर्मोही अखाड़ा के प्रबंधन और प्रभार में था जब तक

कि उसको 1982 के नियमित वाद संख्या 239 में नियुक्त रिसीवर द्वारा कुर्क नहीं कर लिया गया । (पैरा 217, 218 और 219)

वाद संख्या 3 और वाद संख्या 5 के मध्य टकराव

वाद संख्या 3 के वादी और वाद संख्या 5 के प्रतिवादी के रूप में निर्मोही अखाड़ा के अभिवचनों के विश्लेषण से निम्नलिखित स्थिति उत्पन्न होती है – (i) निर्मोही अखाड़ा का दावा राम जन्मभूमि मंदिर के प्रबंधन और प्रभार के प्रयोजनार्थ है; (ii) ईप्सित अनुतोष रिसीवर द्वारा मंदिर का प्रबंधन और प्रभार उनको हस्तगत किए जाने के प्रयोजनार्थ है; (iii) निर्मोही अखाड़ा ने उपरोक्त (i) और (ii) के संदर्भ में यह दावा किया है कि वह मंदिर के कब्जे में था; (iv) जिस अधिकार का दावा किया गया है, उससे वंचित तब किया गया, जब रिसीवर ने तारीख 5 जनवरी, 1950 को प्रभार और प्रबंधन ले लिया; (v) निर्मोही अखाड़ा का दावा शिबायत की हैसियत और मंदिर के प्रबंधक के रूप में किया गया है; (vi) निर्मोही अखाड़ा वाद संख्या 5 की पोषणीयता का विरोध इस आधार पर करता है कि शिबायत के रूप में केवल उनको भगवान राम के देवता का प्रतिनिधित्व करने का अधिकार प्राप्त है; (vii) वाद फाइल करने के लिए निर्मोही अखाड़ा का अधिकार किसी तृतीय पक्ष के अपवर्जन में है और इसलिए वाद संख्या 5, जिसको वादमित्र के माध्यम से संस्थित कराया गया है, के बाबत दृढ़तापूर्वक यह प्रकथन किया गया है कि यह वाद पोषणीय नहीं है; और (viii) विधिक अस्तित्व के रूप में राम जन्मस्थान की हैसियत से इनकार किया गया है और इसलिए (निर्मोही अखाड़ा के अनुसार) वाद संख्या 5 में किए गए दावे की पैरवी के लिए उसको (राम जन्मस्थान को) अधिकार नहीं है । अभिवचनों और निवेदनों, जिनको सुनवाई के अनुक्रम के दौरान प्रस्तुत किया गया, के आधार पर वाद संख्या 3 और वाद संख्या 5 में वादियों के मध्य सुस्पष्ट रूप से दावों और हकदारी के टकराव उद्भूत होते हैं । वाद संख्या 5 में वादियों की ओर से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री के. पारासरन ने निवेदन किया कि वाद संख्या 3 परिसीमा द्वारा बाधित है, यह एक ऐसा निवेदन है, जिसको वाद संख्या 4 में वादी की तरफ से डा. धवन द्वारा प्रस्तुत नहीं किया गया । इसके विपरीत यह उल्लेख किया जाना चाहिए कि डा. धवन ने निवेदन किया कि निर्मोही अखाड़ा तथ्यात्मक और साक्ष्यिक रूप से जन्मस्थान में भगवान राम की मूर्तियों के संबंध में शिबायती अधिकारों का दावा करने का हकदार है । तथापि, उन्होंने यह दलील भी दी कि वाद संख्या 3 परिसीमा द्वारा बाधित है और इसलिए इस

वाद में कोई अनुतोष न तो प्रदान किया जाना चाहिए और न ही प्रदान किया जा सकता है । इसलिए, इस न्यायालय के समक्ष दी गई दलीलों के आधार पर निम्नलिखित बिंदु उद्भूत होते हैं – (i) वाद संख्या 4 और वाद संख्या 5 के वादियों ने वाद संख्या 3 को परिसीमा के वर्जन के आधार पर चुनौती दी है; (ii) वाद संख्या 5 के वादियों ने भगवान राम की मूर्तियों के शिबायत होने के नाते वाद संख्या 3 के वादियों के दावे का विरोध किया है; और (iii) वाद संख्या 4 के वादी ने वाद संख्या 3 के वादी की हकदारी को शिबायत होने के नाते यह सावधानी लेते हुए स्वीकार किया है कि वाद परिसीमा द्वारा बाधित है । इस न्यायालय के समक्ष वाद संख्या 3 में वादी की तरफ से उत्पन्न हो रहे विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री एस. के. जैन द्वारा यह शंका व्यक्त की गई कि क्या शिबायत को यह अधिकार है कि वह देवता के दावे के विपरीत किसी भी प्रकार से स्वत्व या स्वामित्व के बाबत दृढ़तापूर्वक दावा करे । इसके उत्तर में श्री जैन ने निवेदन किया कि निर्मोही अखाड़े का दावा प्रबंधन के लिए है और मंदिर के प्रबंधन का प्रभार शिबायत की प्रकृति का है और इससे अधिक कुछ भी नहीं । इसलिए, यद्यपि इस वाद में वाक्यांश 'स्वयं का' और 'संबंधित' का प्रयोग किया गया है, किंतु ये वाक्यांश इस वाद में शिबायत के ऊपर या उससे उच्चतर इस बाबत दृढ़तापूर्वक दावा किए जाने के प्रयोजनार्थ आशयित नहीं हैं । श्री जैन के निवेदन का परीक्षण परिसीमा के विवाद्यक के संदर्भ में कुछ समय पश्चात् किया जाएगा । तथापि, इस प्रक्रम पर यह उल्लेख भी किया जाना चाहिए कि श्री जैन ने सुनवाई के अनुक्रम के दौरान वाद संख्या 5 की पोषणीयता के बाबत निर्मोही अखाड़ा के पक्षकथन पर एक कथन प्रस्तुत किया, जो निम्नलिखित है – "निर्मोही अखाड़ा 1989 के वाद संख्या 5, जिसको वादी संख्या 1 और 2 देवताओं की तरफ से वादी संख्या 3, जो सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 32, नियम 1 के अधीन वादमित्र है, के माध्यम से फाइल किया गया की पोषणीयता के विवाद्यक पर बल नहीं देता । परंतु यह तब जबकि अन्य हिंदू पक्ष अर्थात् 1989 के मूल वाद संख्या 1 का वादी और 1989 के मूल वाद संख्या 5 का वादी संख्या 3 प्रश्नगत देवताओं के संबंध में निर्मोही अखाड़ा के शिबायती अधिकार और वादी निर्मोही अखाड़ा द्वारा 1989 के वाद संख्या 3 की पोषणीयता पर बल नहीं देते या उनको चुनौती नहीं देते । वादी – निर्मोही अखाड़ा द्वारा यह निवेदन किया गया है कि वे 1989 के वाद संख्या 3 में पक्षों के रूप में देवताओं की अनुपस्थिति में भी स्वतंत्र रूप से वाद को जारी रख सकते हैं, चूंकि देवताओं की पहचान का विलय शिबातय – निर्मोही अखाड़ा की

पहचान के साथ हो चुका है । यह अभिकथन किया गया है कि निर्मोही अखाड़ा द्वारा 'रिसीवर से प्रभार और प्रबंधन के पुनर्स्थापन के लिए' ईप्सित अनुतोषों को देवताओं, जिनके लिए यह कहा जा सकता है कि उनका प्रतिनिधित्व प्रतिवादी के रूप में किसी अनिच्छुक वादमित्र के द्वारा किया जाना चाहिए, के हित के 'विरुद्ध' अनुतोषों के रूप में कटिबद्ध नहीं किया जा सकता ।" अन्य शब्दों में निर्मोही अखाड़ा का पक्षकथन यह है कि वह अकेले ही शिबायत के रूप में अपनी प्रकृति में देवता के हित का प्रतिनिधित्व करने का हकदार है, जो उसने वाद संख्या 3 में किया है । इसके अतिरिक्त वाद शिबायत की तरफ से कुप्रबंधन के किसी अभिकथन की अनुपस्थिति में देवता के नाम में वादमित्र द्वारा संस्थित नहीं कराया जा सकता, जैसाकि वाद संख्या 5 में किया गया है । इस पहलू की विस्तारपूर्वक जांच की जाएगी, जब वाद संख्या 5 की पोषणीयता का विश्लेषण किया जाएगा । इस प्रक्रम पर हमको डा. धवन, जिन्होंने निर्मोही अखाड़ा के शिबायती दावे, के आशय का भी उल्लेख करना चाहिए । यह छूट शून्य में विद्यमान नहीं रह सकती । इस दावे का प्रकथन केवल उस संदर्भ में किया जा सकता है, जिसने देवता, जिनका प्रतिनिधित्व शिबायत करने की ईप्सा करता है, की विद्यमानता को स्वीकार किया जाता है । अत:, डा. धवन के समक्ष एक विनिर्दिष्ट शंका प्रस्तुत की गई कि क्या परिसीमा के विवाद्यक से पूर्णतया स्वतंत्र होकर कोई छूट, जो उसकी तरफ से दी गई है, आवश्यक रूप से राम जन्मस्थान पर देवता की उपस्थिति की स्थिति के संबंध में किसी विधिक परिणाम के रूप में सामने आएगी । इस बाबत यह उल्लेख किया जाना चाहिए कि डा. धवन का उनके निवेदनों में उत्तर यह था कि राम चबूतरा पर देवता की उपस्थिति हिंदू श्रद्धालुओं के लिए उपासना के सुखाचार वाले अधिकार के बाबत परिकल्पित थी ताकि वे पूजन कर सकें और इस प्रयोजन के लिए बरामदे में पहुंच सकें । (पैरा 220, 221 और 222)

क्या सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड द्वारा फाइल किया गया वाद संख्या 4 परिसीमा द्वारा बाधित है ।

वाद संख्या 4 की पोषणीयता

विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री पारासरन ने सुनवाई के दौरान वाद संख्या 4 की पोषणीयता के विरुद्ध इस आधार पर ऐतराज किया कि वाद केवल किसी मुतवल्ली की तरफ से संस्थित कराया जा सकता था । उन्होंने दलील दी कि सुन्नी सेंट्रल बोर्ड को वाद संस्थित कराने का अधिकार नहीं था । इस

दलील में कोई गुणागुण नहीं है । 1960 के उत्तर प्रदेश मुस्लिम वक्फ़ अधिनियम की धारा 19(2) विनिर्दिष्ट रूप से बोर्ड को किसी संपत्ति को पुन: प्राप्त करने के लिए उपाय अंगीकृत करने और वक्फ़ से संबंधित वादों को संस्थित कराने और उनकी प्रतिरक्षा किए जाने के प्रयोजनार्थ सशक्त करती है । धारा 3(2) के अधीन बोर्ड को अधिनियम के अधीन गठित सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड या शिया सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड के अर्थान्तर्गत परिभाषित किया गया है । इसलिए स्पष्टत: कानूनी निबंधनों के अनुसार सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड को विधिक कार्यवाहियां संस्थित कराने का अधिकार प्राप्त है । (पैरा 611)

वाद संख्या 4 में परिसीमा – अभिवचन

वाद संख्या 4 के वादपत्र में कार्यवाहियां संस्थित कराए जाने के प्रयोजनार्थ वादकारण उन घटनाओं पर आधारित है, जो तारीख 23 दिसंबर, 1949 को घटित हुई थी और जिनके दौरान हिंदुओं की भीड़ द्वारा मस्जिद के भीतर मूर्तियों को रख दिया गया था । ऐसा किए जाने का उद्देश्य मस्जिद को नष्ट करना, क्षति पहुंचाना और अपवित्र करना था । इसके अतिरिक्त वादियों के अनुसार मस्जिद में प्रवेश और मूर्तियों को रखे जाने के कार्य के परिणामस्वरूप मस्जिद का अपवित्रीकरण हो गया । यह वादपत्र के पैरा 11 में समाविष्ट प्रकथनों से स्पष्टत: प्रकट होता है : "मुस्लिम उपरोक्त मस्जिद के शांतिपूर्ण कब्जे में रहे हैं और उन्होंने उसमें तारीख 23 दिसंबर, 1949 तक नमाज अदा की, जब हिंदुओं की भारी भीड़ ने उक्त मस्जिद को नष्ट करने, क्षति पहुंचाने या अपवित्र किए जाने के शरारती आशय के साथ और तद्द्वारा मुस्लिम धर्म और मुस्लिमों की धार्मिक भावनाओं के अनादर के प्रयोजनार्थ मस्जिद में प्रवेश किया और मस्जिद के भीतर मूर्तियों को रखे जाने के द्वारा मस्जिद को अपवित्र कर दिया । हिंदुओं का यह आचरण अपराध गठित करता है, जो भारतीय दंड संहिता की धाराओं 147, 295 और 448 के अधीन दंडनीय है ।" उपरोक्त प्रकथन से संबंधित कथन पैरा 23 में समाविष्ट है, जो इस प्रकार है : "हिंदुओं के विरुद्ध वाद फाइल करने का वादकारण इस माननीय न्यायालय की अधिकारिता के भीतर जिला फैज़ाबाद के अयोध्या में तारीख 23 दिसंबर, 1949 को उद्भूत हुआ, जब हिंदुओं ने अवैध और विधिविरुद्ध तरीके से मस्जिद में प्रवेश किया और उसको मूर्तियां रखे जाने के द्वारा अपवित्र कर दिया और इस प्रकार मुस्लिमों के अधिकारों अर्थात् नमाज अदा करने और अन्य धार्मिक अनुष्ठानों के निर्वहन के अधिकार में व्यवधान और मध्यक्षेप किया । हिंदू कब्रिस्तान (गंज शाहिदान) और उसमें दफनाए गए मृत लोगों

के प्रति फातिहा पढ़े जाने में भी मुस्लिमों के अधिकारों में व्यवधान उत्पन्न कर रहे हैं । इस प्रकार से कारित क्षतियां निरंतर रूप से जारी क्षतियां हैं और इन क्षतियों से उद्भूत होने वाले वादकारण का दिन-प्रतिदिन के आधार पर नवीकरण हो रहा है और जहां तक प्रतिवादी संख्या 5 से 9 के विरुद्ध वादकारण का प्रश्न है, उनके विरुद्ध वादी को वाद फाइल करने का वादकारण तारीख 29 दिसंबर, 1949 को अर्थात् वह दिन जब फैज़ाबाद और अयोध्या के नगर मजिस्ट्रेट प्रतिवादी संख्या 7 ने वादग्रस्त मस्जिद को कुर्क कर लिया और उसका कब्जा रिसीवर प्रतिवादी संख्या 9 श्री प्रियदत्त राम को सौंप दिया, जिन्होंने उसका प्रभार तारीख 5 जनवरी, 1950 को ग्रहण किया, को उद्भूत हुआ । राज्य सरकार और उसके प्राधिकारियों प्रतिवादी संख्या 6 से 8 अपराधकर्ताओं को अभियोजित करने और मुस्लिमों के हितों की रक्षा करने के अपने कर्तव्य के निर्वहन में विफल रहे ।" चूंकि यह वाद मूलवाद के रूप से फाइल किया गया था, अत: इस वाद में इस बाबत घोषणा की ईप्सा की गई कि वादपत्र के साथ संलग्न नक्शे में ए. बी. सी. डी. वर्णों द्वारा दर्शित संपत्ति सार्वजनिक मस्जिद है, जिसको बाबरी मस्जिद के नाम से जाना जाता है और उसके साथ संलग्न भूमि, जिसको ई. एफ. जी. एच. वर्णों द्वारा दर्शित किया गया है, सार्वजनिक मुस्लिम कब्रिस्तान है । प्रार्थना (ख) के द्वारा हिंदुओं द्वारा रखी गई मूर्तियों और उपासना की अन्य वस्तुओं को हटाते हुए मस्जिद और कब्रिस्तान का कब्जा दिलाए जाने की डिक्री की ईप्सा की गई है, 'यदि न्यायालय के विचार में कब्जा प्रदान किए जाने को उचित अनुतोष प्रतीत किया जाता है' । प्रार्थना (खख) के द्वारा वैधानिक रिसीवर को इस बाबत आदेशित किए जाने की ईप्सा की गई कि वह अप्राधिकृत ढांचों को हटाते हुए अनुसूची 'क' में वर्णित संपत्ति का कब्जा हस्तगत करे । प्रार्थना (खख) को तारीख 25 मई, 1995 के संशोधन द्वारा अंत:स्थापित किया गया था । (पैरा 611)

लिखित कथन

परिसीमा के अभिवाक् का आश्रय विभिन्न लिखित कथनों में विनिर्दिष्ट रूप से लिया गया, जिनमें प्रथम और द्वितीय प्रतिवादियों के लिखित कथनों के पैरा 27 और 28 और अतिरिक्त लिखित कथन का पैरा 23 है । परिसीमा के अभिवाक् का आश्रय लिखित कथन के पैरा 35, जिसको प्रतिवादी संख्या 3 और 4 निर्मोही अखाड़ा और महंत रघुनाथ दास द्वारा फाइल किया गया; प्रतिवादी संख्या 10 अखिल भारतीय हिंदू महासभा के लिखित कथन के पैरा 29; और अनेक अन्य हिंदू पक्षों के

लिखित कथनों में भी लिया गया । दसवें प्रतिवादी ने तारीख 15 फरवरी, 1990 को लिखित कथन फाइल किया और वादपत्र के पैरा 23 से इनकार किया । उसने लिखित कथन के पैरा 29 और 79 में किए गए अतिरिक्त अभिवाकों में एक विनिर्दिष्ट अभिवाक् का आश्रय लिया कि यह वाद परिसीमा द्वारा बाधित है । लिखित कथन का पैरा 79 निम्नलिखित है : ".....वाद को जिस प्रकार से विरचित किया गया है, यह केवल घोषणा के लिए फाइल किया गया वाद है और कब्जा प्रदान किए जाने के लिए अनुतोष इन शब्दों में 'यदि न्यायालय के विचार में .....' जिसका आशय यह है कि वादी कब्जे के अनुतोष की ईप्सा नहीं कर रहे हैं और इस अनुतोष को उन्होंने न्यायालय के विवेक पर छोड़ दिया है कि वह स्वप्रेरणा से कब्जा प्रदान करे । अत: यह कारण स्पष्ट है कि वाद परिसीमा द्वारा बाधित था और इसीलिए कोई विनिर्दिष्ट प्रार्थना नहीं की गई ।" लिखित कथन का पैरा 39 न्यायालय के तारीख 23 नवंबर, 1992 के आदेश के मतावलंबन में अंत:स्थापित किया गया । दसवें प्रतिवादी के लिखित कथन में संशोधन के परिणामस्वरूप एक प्रत्युत्तर फाइल किया गया किंतु उसमें भी लिखित कथन के पैरा 79 का कोई विनिर्दिष्ट खंडन समाविष्ट नहीं था । वाद तारीख 18 दिसंबर, 1961 को प्रस्तुत और फाइल किया गया था । वाद संख्या 4 के प्रथम वादी को निर्मोही अखाड़ा द्वारा संस्थित कराए गए वाद संख्या 3 में न्यायालय के तारीख 23 अगस्त, 1979 के आदेश के मतावलंबन में नवें प्रतिवादी के रूप में पक्ष बनाया गया था । इस वाद में प्रथम वादी की तरफ से अपने काउंसेल के माध्यम से यह कथन किया गया कि लिखित कथन, जो वाद संख्या 5 में प्रतिवादी संख्या 1 से 5 की तरफ से और वाद संख्या 3 में प्रतिवादी संख्या 6 से 8 की तरफ से पहले ही फाइल किए जा चुके हैं, को इस वाद में लिखित कथन के रूप में अंगीकृत किया जाता है । वाद संख्या 1 में सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड को भी न्यायालय के तारीख 7 जनवरी, 1987 के आदेश के मतावलंबन में पक्ष बनाया गया था । वाद संख्या 1 में प्रतिवादी संख्या 1 से 5 द्वारा फाइल किए गए लिखित कथन के पैरा 22 में इस बात को विनिर्दिष्ट रूप से अभिकथित किया गया कि तारीख 16 दिसंबर, 1949 तक नमाज अदा की गई । इसी प्रकार से वाद संख्या 3 में प्रतिवादी संख्या 6 से 8 की तरफ से फाइल किए गए लिखित कथन के पैरा 26 में यह भी अभिकथित किया गया था कि नमाज तारीख 16 दिसंबर, 1949 तक निरंतर रूप से अदा की गई । अत:, परिसीमा के विवाद्यक के प्रयोजनार्थ यह आवश्यक है कि

मामले में इस आधार पर अग्रसर हुआ जाए कि अंतिम नमाज तारीख 16 दिसंबर, 1949 को अदा की गई । उच्च न्यायालय के समक्ष प्रतिवादी संख्या 20 की तरफ से उपस्थित विद्वान् काउंसेल द्वारा यह दलील दी गई कि : (i) घोषणा के वाद में 1908 के परिसीमा अधिनियम का अनुच्छेद 120 लागू होता है और यदि उस वादकारण, जिसका उल्लेख पैरा 23 में किया गया है, को सही माना जाए, तो 6 वर्ष व्यतीत हो जाने के पश्चात् संस्थित कराया गया वाद परिसीमा द्वारा बाधित हो जाता है; और (ii) यदि अनुच्छेद 120 के बाबत यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि वह लागू नहीं होता और यह भी अभिनिर्धारित किया जाता है कि अनुच्छेद 142 और 144 लागू होते हैं, तो भी वादकारण तारीख 16 दिसंबर, 1949 को उद्भूत हुआ और यह वादकारण निरंतर रूप से जारी दोष पर आधारित नहीं था । इसलिए, 12 वर्ष व्यतीत हो जाने के पश्चात् तारीख 18 दिसंबर, 1961 को फाइल किया गया वाद परिसीमा द्वारा बाधित है, चाहे दो दिन का विलंब ही क्यों न हो । न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने धारा 145 के उपबंधों पर विचार करते हुए अभिनिर्धारित किया कि यह कार्यवाही न्यायिक प्रकृति की कार्यवाही नहीं होती और न ही मजिस्ट्रेट इन कार्यवाहियों में न्यायिक दृष्टिकोण से विचार करता है और यह कार्यवाही अचल संपत्ति से संबंधित होती हैं । धारा 145 के अधीन कार्रवाई के परिणामस्वरूप न तो परिसीमा का विस्तार होता है और न ही इन कार्यवाहियों के आधार पर परिसीमा के संगणन के प्रयोजनार्थ किसी अपवर्जन को उपबंधित किया गया है । मजिस्ट्रेट द्वारा मात्र रिसीवर की नियुक्ति के आधार पर संपत्ति विधिक अभिरक्षा में चली जाती है और परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 142 के अर्थान्तर्गत किसी कब्जे के अंतर्गत नहीं रहती । संपत्ति की कुर्की के परिणामस्वरूप न तो संपत्ति स्वामी संपत्ति के कब्जे से बेकब्जा होता है और न ही उसका कब्जा समाप्त होता है । उच्च न्यायालय ने देव कौर बनाम शिव प्रसाद सिंह वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय का उल्लेख करते हुए इस सिद्धांत को अवेक्षित किया कि धारा 145 के अधीन कुर्की के आदेश के अनुसरण में संपत्ति विधिक अभिरक्षा में चली जाती है; चूंकि वह किसी निजी व्यक्ति के कब्जे में नहीं होती, इसलिए कब्जे की पुनर्स्थापना के लिए अनुतोष की ईप्सा किए जाने की कोई आवश्यकता नहीं होती और केवल हक की घोषणा का अनुतोष ही पर्याप्त होता है । ऐसे मामलों में कब्जे का अनुतोष अपेक्षित नहीं होता क्योंकि कोई भी निजी प्रतिवादी इस स्थिति में नहीं होता कि वह वादी को

कब्जा हस्तगत कर सके और मजिस्ट्रेट कुर्की की अवधि के दौरान उस पक्ष की तरफ से कब्जा धारण करता है, जिसे अंतत: न्यायनिर्णयन के पश्चात् कब्जे का हकदार पाया जाता है । न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने विधिक स्थिति का उल्लेख करते हुए अभिनिर्धारित किया कि वाद संख्या 4 में फाइल किए गए वादपत्र में ऐसा कोई प्रकथन समाविष्ट नहीं है कि वादियों को उस संपत्ति से, जिसके वे कब्जे में थे, बेकब्जा कर दिया गया था । इसके विपरीत यह अभिवाक् किया गया कि मस्जिद के भीतर मूर्तियों को रखे जाने के द्वारा अपवित्रीकरण का कार्य किया गया था, जिसके कारण वादियों के नमाज अदा करने के अधिकार में व्यवधान उत्पन्न हुआ । इसके अतिरिक्त वह अनुतोष जिसकी ईप्सा वादियों द्वारा की गई, नमाज अदा किए जाने के अधिकार को जारी रखे जाने के प्रयोजनार्थ नहीं थी बल्कि मस्जिद के रूप में ढांचे की स्थिति की घोषणा के बाबत थी । विद्वान् न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि इन अभिवचनों के आधार पर मामला अनुच्छेद 142 के अधीन नहीं आता, चूंकि वादपत्र के पैरा 23 में समाविष्ट अभिवाक् विवादित संपत्ति के संबंध में वादियों के कब्जे की निरंतरता या उनके बेकब्जा का मामला गठित किए जाने के प्रयोजनार्थ पर्याप्त नहीं थे । यह अभिनिर्धारित किया गया कि मस्जिद के भीतर मूर्तियों का रखे जाने से कब्जे से बेकब्जा किए जाने या कब्जे की निरंतरता को भंग किए जाने का मामला गठित नहीं होता, चूंकि ये संकल्पनाएं किसी व्यक्ति, जो पूर्व में कब्जे में था, को कब्जे से पूर्ण रूप से वंचित किए जाने को अनुध्यात करती हैं । यह अभिनिर्धारित किया गया कि व्यवधान या मध्यक्षेप कब्जे से बेकब्जा किए जाने या उसकी निरंतरता को भंग किए जाने को गठित नहीं करते । न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने उल्लेख किया कि यदि वादियों ने इस अभिवाक् को साबित नहीं किया कि उनको सुस्पष्टत: और स्पष्ट निबंधनों के अधीन बेकब्जा किया गया था या उनके कब्जे की निरंतरता को भंग किया गया था, तो न्यायालय इस कमी को किसी ऐसी बात को पढ़े जाने के द्वारा पूर्ण नहीं कर सकता, जो अभिवाक् में उपस्थित न रही हो । न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने यह अभिनिर्धारित किया कि उपरोक्त कारणोंवश न तो अनुच्छेद 47 और न ही अनुच्छेद 142 लागू होते हैं । विद्वान् न्यायाधीश ने अनुच्छेद 120 के अधीन मामले पर विचार करते हुए उल्लेख किया कि वादकारण तारीख 23 दिसंबर, 1949 और 29 दिसंबर, 1949 को उद्भूत हुआ । वाद 6 वर्षों की परिसीमा की अवधि के परे संस्थित कराया गया था । इसलिए इससे कोई

प्रभाव नहीं पड़ता कि क्या अंतिम नमाज तारीख 16 या 23 दिसंबर, 1949 को अदा की गई थी । वह तारीख, जिस पर अंतिम नमाज अदा की गई थी, कुछ सीमा तक प्रभावी अवश्य हो सकती है, यदि अनुच्छेद 120 लागू न होता । अनुच्छेद 142 और 144 के अधीन किसी आवेदन की अनुपस्थिति में केवल अनुच्छेद 120 ही आकर्षित होगा और वाद को परिसीमा द्वारा बाधित अभिनिर्धारित किया जाएगा । इस प्रश्न पर कि क्या निरंतर रूप से कोई दोषपूर्ण कार्य जारी था, न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने अभिनिर्धारित किया कि यदि वाद उपासना के अधिकार में व्यवधान के विरुद्ध अनुतोष की ईप्सा करते हुए संस्थित कराया गया होता, तो अधिसंभाव्य रूप से 1908 के परिसीमा अधिनियम की धारा 23 के अधीन निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य का सिद्धांत आकर्षित होता, विशेष रूप से सर सेठ हुकुमचंद बनाम महाराज बहादुर सिंह वाले मामले में प्रिवी कौंसिल द्वारा दिए गए विनिश्चय को दृष्टि में रखते हुए । तथापि, वाद नमाज अदा करने के अधिकार के प्रवर्तन की ईप्सा करते हुए संस्थित नहीं कराया गया था बल्कि विवादित भवन के मस्जिद के रूप में स्थिति की घोषणा अभिप्राप्त किए जाने और कब्जेदार हकधारकों की हैसियत में कब्जा प्राप्त किए जाने के प्रयोजनार्थ संस्थित कराया गया था । न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने अभिनिर्धारित किया कि निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य और उस दोषपूर्ण कार्य के कारण निरंतर रूप से पड़ने वाले प्रभाव के मध्य विभेद किया जाना चाहिए । वादियों द्वारा किए गए अभिवाकों में समाविष्ट तथ्य यह उपदर्शित करते हैं कि उनको विवादित परिसर से तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 को बेदखल कर दिया गया था और दोषपूर्ण कार्य तब पूर्ण हो गया, जब उनको संपत्ति से बेकब्जा किया गया । इस आधार पर विद्वान् न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि इस मामले में निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य का सिद्धांत आकर्षित नहीं होता । न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने अभिनिर्धारित किया कि वादियों की बेदखली मस्जिद के अपवित्रीकरण के साथ तारीख 23 दिसंबर, 1949 को पूर्ण हो गई थी और इसलिए परिसीमा के प्रयोजनार्थ वाद अनुच्छेद 120 द्वारा शासित होता था । वाद को परिसीमा द्वारा बाधित अभिनिर्धारित किया गया था । न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा ने अभिनिर्धारित किया कि वाद मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 145 के अधीन कुर्की के पश्चात् घोषणा की ईप्सा करते हुए संस्थित कराया गया था । घोषणा की ईप्सा करने के प्रयोजनार्थ फाइल किया गया वाद निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य के सिद्धांत द्वारा

शासित नहीं होता था और राजा राजगन महाराजा जगजीत सिंह बनाम राजा परताब बहादुर सिंह वाले मामले में प्रिवी कौंसिल द्वारा दिए गए विनिश्चय को दृष्टि में रखते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया कि अनुच्छेद 120 लागू होगा । इसलिए विद्वान् न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि न तो अनुच्छेद 142 और न ही अनुच्छेद 144 लागू होते हैं । विद्वान् न्यायाधीश ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि यद्यपि वाद 1961 में संस्थित कराया गया था, फिर भी उसको 33 वर्षों के पश्चात् (वर्ष 1995 में) कब्जे की ईप्सा करते हुए अनुच्छेद 142 और 144 के अधिक्षेत्र के अंतर्गत लाए जाने हेतु संशोधित किया गया था । इन आधारों पर वाद को परिसीमा द्वारा बाधित अभिनिर्धारित किया गया था । न्यायमूर्ति एस. यू. खान ने इसके विपरीत अभिनिर्धारित किया और उनका यह मत था कि वाद संख्या 4 परिसीमा के भीतर था । विद्वान् न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किए जाने के प्रयोजनार्थ पांच कारण उपदर्शित किए कि वाद संख्या 3, 4 और 5 परिसीमा द्वारा बाधित नहीं थे, जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है । अत: वाद अधिसंख्य न्यायाधीशों (न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल और न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा) द्वारा परिसीमा द्वारा बाधित अभिनिर्धारित किया गया था; न्यायमूर्ति एस. यू. खान ने इस विवाद्यक पर विपरीत मत व्यक्त किया था । (पैरा 613, 614, 615, 616, 617 और 618)

काउंसेल के निवेदन

वाद संख्या 5 में वादियों की ओर से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री के. पारासरन ने न्यायालय के समक्ष दलीलों के दौरान निवेदन किया कि वाद संख्या 4 केवल परिसीमा अधिनियम की धारा 120 द्वारा शासित होगा और अनुच्छेद 142 और 144 लागू नहीं होंगे । उन्होंने अपने इस निवेदन के समर्थन में निम्नलिखित प्रतिपादनाएं प्रस्तुत कीं : (i) प्राथमिक अनुतोष, जिसकी ईप्सा वाद संख्या 4 [अनुतोष (क)] में की गई है, इस बाबत घोषणा है कि विवादित संपत्ति एक सार्वजनिक मस्जिद है और इसलिए वाद में नमाज अदा करने के अधिकार के प्रवर्तन के लिए किसी घोषणा की ईप्सा नहीं की गई ; (ii) जब कोई वाद किसी संपत्ति, जिसको धारा 145 के अधीन कुर्क किया गया है, के हक की घोषणा के लिए फाइल किया जाता है, तो यह आवश्यक नहीं है कि कब्जा प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ अनुतोष की भी ईप्सा की जाए, चूंकि प्रतिवादी कब्जे में नहीं है और वह कब्जा देने की स्थिति में भी नहीं है । कुर्की के अधीन

संपत्ति के विधिक अभिरक्षा में होने के कारण रिसीवर उस संपत्ति का कब्जा उस पक्ष को देने के लिए बाध्य है, जो सिविल न्यायनिर्णयन के परिणामस्वरूप संपत्ति का हकदार अभिनिर्धारित किया जाता है; (iii) कब्जे की ईप्सा के प्रयोजनार्थ प्रार्थना आवश्यक नहीं थी । चूंकि संपत्ति दिसंबर, 1949 से विधिक अभिरक्षा में थी और प्रार्थना केवल अनुच्छेद 120 द्वारा अधिरोपित 6 वर्ष की परिसीमा की अवधि के बाबत धोखा देने के लिए की गई थी; (iv) परिसीमा का कानून विश्राम का कानून है; (v) अनुच्छेद 120 के अधीन 6 वर्ष की अवधि की संगणना उस तारीख से की जानी होती है, जब वाद फाइल करने का अधिकार उद्भूत होता है और वाद फाइल करने का कोई अधिकार तब तक उद्भूत नहीं होता जब तक कि वाद में दावाधीन अधिकार उद्भूत नहीं होता और कोई अतिलंघन नहीं होता या अधिकार के अतिलंघन का स्पष्ट और असंदिग्ध आशय नहीं होता; (vi) जैसाकि वादपत्र के पैरा 23 में अभिवचन किया गया है, वादकारण अभिकथित रूप से तारीख 23 दिसंबर, 1949 को उद्भूत हुआ जब हिंदुओं ने विधि विरुद्ध तरीके से मस्जिद में प्रवेश किया और उसके भीतर मूर्तियां रखे जाने के द्वारा उसको अपवित्र कर दिया और इस प्रकार मुस्लिमों द्वारा नमाज अदा किए जाने में मध्यक्षेप कारित किया गया; (vii) वादियों का पक्षकथन यह है कि उनके द्वारा जो क्षति बर्दाश्त की गई, वह निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य की प्रकृति की क्षति थी और वह कार्य ऐसा दोषपूर्ण कार्य नहीं था, जो अपवित्रीकरण की तारीख पर ही पूर्ण हो गया था । परिसीमा के वर्जन के प्रश्न पर यह अभिकथित किए जाने के द्वारा न्यायालय को विश्वास में लेने का प्रयास किया गया है कि वादकारण का नवीकरण निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य को दृष्टि में रखते हुए होता रहा है; (viii) वर्तमान मामले में निरंतर रूप से जारी दोषपूर्ण कार्य का प्रश्न उद्भूत नहीं हो सकता । चूंकि संपत्ति विधिक अभिरक्षा में थी । इसलिए यह अवधारणा करते हुए (बिना स्वीकार किए) भी कि केंद्रीय गुंबद के नीचे मूर्तियों का रखा जाना निरंतर रूप से दोषपूर्ण कार्य था और इसलिए वह कार्य संपत्ति की कुर्की के साथ ही समाप्त हो गया; और (ix) वादकारण तब उद्भूत हुआ, जब भीतरी बरामदे में मूर्तियों को रखा गया था । यह धारा 145 के अधीन कार्यवाहियों के पहले उद्भूत हो गया था और इसलिए यह तथ्य कि मजिस्ट्रेट ने कोई अंतिम आदेश पारित नहीं किया, का यह अर्थ नहीं होगा कि परिसीमा आरंभ नहीं हुई थी । (पैरा 619)

क्या वादी देवताओं द्वारा फाइल किया गया वाद संख्या 5 परिसीमा द्वारा बाधित है ।

इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तीन न्यायाधीशों में से प्रत्येक ने वाद संख्या 5 में यह अभिनिर्धारित करते हुए अपने-अपने कारण अभिलिखित किए कि वाद परिसीमा के भीतर था । न्यायमूर्ति एस. यू. खान ने समेकित विश्लेषण करते हुए परिसीमा के प्रश्न पर विचार किया और पांच कारण अभिलिखित किए, जिनमें से पहले और पांचवें कारण के बाबत यह अभिनिर्धारित किया गया कि वे वाद संख्या 5 पर लागू होते हैं । विद्वान् न्यायाधीश के अनुसार : (i) मजिस्ट्रेट ने धारा 145 के अधीन कार्यवाही को अनिश्चितकाल तक लंबित रखे जाने के द्वारा अपनी अधिकारिता के परे जाकर कार्य किया । परिणामस्वरूप, धारा 145 के अधीन कार्यवाही में कोई अंतिम आदेश पारित नहीं किया गया । ऐसा न करते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया कि परिसीमा का वर्जन उद्भूत नहीं होगा; और (ii) न्यायालय से प्रत्येक स्थिति में समस्त विवाद्यकों पर आदेश 14 के अधीन निष्कर्ष अभिलिखित किया जाना अपेक्षित था । न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने अभिलिखित किया कि वाद संख्या 5 में परिसीमा का अभिवाक् निम्नलिखित तथ्यों के संदर्भ में समझा जाना चाहिए : (i) विवादित स्थान के बाबत हिंदुओं को यह विश्वास है कि यह स्थान भगवान राम का जन्मस्थान है और इस स्थान की उपासना सदियों से इसी रूप में की जाती रही है; (ii) मस्जिद की प्रकृति में गैर-हिंदू ढांचा टिफीनथेलर (1766-71) के दौरे के पूर्व मुस्लिम शासक की आज्ञा पर निर्मित किया गया था; (iii) हिंदुओं ने उपरोक्त निर्माण के बावजूद अपनी आस्था के अनुसार कि यह स्थान भगवान राम का जन्मस्थान है, इस स्थान के दर्शन और उपासना करना जारी रखा; (iv) यद्यपि भवन के ढांचे को मस्जिद माना जाता था, फिर भी इससे हिंदुओं के विश्वास पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा; (v) अविभाजित मस्जिद परिसर के भीतर वेदी के आकार की एक गैर इस्लामिक संरचना थी, जिसका उल्लेख टिफीनथेलर द्वारा अपनी पुस्तक में किया गया है; (vi) समय व्यतीत होने के साथ-साथ सीता रसोई, राम चबूतरा और भंडार को सम्मिलित करते हुए अन्य हिंदू संरचनाएं भी निर्मित होती गई; (vii) इन संरचनाओं का उल्लेख 1858, 1873, 1885, 1949 और 1950 में किया गया और ये संरचनाएं तारीख 6 दिसंबर, 1992 को संपूर्ण ढांचे के ध्वंस के समय तक विद्यमान थी; (viii) यद्यपि संपूर्ण विवादित ढांचे को मस्जिद कहा जाता था, फिर भी ब्रिटिश सरकार ने विवादित स्थान को दो

भागों, जिनके भीतर प्रत्येक समुदाय पृथक् रूप से नमाज अदा कर सके और उपासना कर सके, विभाजित किए जाने के द्वारा दोनों समुदायों के परस्पर विरोधी दावों को मान्यता प्रदान कर दी थी; (ix) इस विभाजन के बावजूद हिंदुओं के पास न केवल बाहरी बरामदे का कब्जा रहा, बल्कि उन्होंने निरंतर शिकायतों और हटाए जाने के आदेशों, जिनकी पुष्टि 1858 से 1865 के मध्य के अभिलेखों से होती है, के बावजूद भीतरी बरामदे में भी प्रवेश करना जारी रखा; (x) ब्रिटिश सरकार ने विवादित ढांचे को मस्जिद प्रतीत करते हुए दो मुस्लिमों को ननकार ग्रांट प्रदान की, जिसके मतावलंबन में मुस्लिमों ने यह दावा किया कि उन्होंने भवन के रखरखाव पर आए खर्चों का संदाय किया है; (xi) तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 को हिंदुओं द्वारा भगवान राम की मूर्तियां भीतरी बरामदे में रख दी गई थीं; (xii) तारीख 29 दिसंबर, 1949 को भीतरी बरामदे को धारा 145 के अधीन कुर्क कर दिया गया था, जिसके बावजूद मजिस्ट्रेट ने यह सुनिश्चित किया था कि केंद्रीय गुंबद के नीचे स्थापित मूर्तियों की उपासना जारी रहे, जिसके पश्चात् सिविल न्यायालय ने तारीख 16 जनवरी, 1950 को व्यादेश का आदेश पारित किया, जिसको तारीख 19 जनवरी, 1950 को स्पष्ट किया गया, तारीख 3 मार्च, 1951 को पुष्टि की गई और तारीख 26 अप्रैल, 1955 को अंतिमता प्राप्त हुई । (xiii) तारीख 23 दिसंबर, 1949 को हिंदुओं द्वारा उपासना जारी थी जबकि इसके विपरीत किसी भी मुस्लिम ने नमाज अदा करने के लिए परिसर में प्रवेश नहीं किया; (xiv) तारीख 29 दिसंबर, 1949 से हिंदुओं द्वारा विभाजित करने वाली दीवार पर स्थापित लोहे के जाली वाले द्वार से उपासना जारी थी और केवल पुजारियों को उपासना के लिए परिसर के भीतर प्रवेश की अनुज्ञा थी; और (xv) जिला न्यायाधीश ने तारीख 1 फरवरी, 1986 के आदेश द्वारा और भीतरी बरामदे में मूर्तियों की उपासना के लिए हिंदुओं को प्रवेश की अनुज्ञा प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ तालों को हटाए जाने और दरवाजों को खोले जाने के लिए निर्देशित किया । न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने उपरोक्त तथ्यों के आधार पर अभिनिर्धारित किया कि देवताओं का पूजन निरंतर जारी था और ऐसी कोई भी कार्रवाई या अकर्मण्यता दर्शित नहीं की गई थी, जिसके संबंध में वादी परिसीमा की विशिष्ट अवधि का पालन करते हुए वाद प्रस्तुत करने के अधिकार का दावा कर सकते । विद्वान् न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि पूर्ववर्ती कुछ सौ वर्षों में एकमात्र कार्रवाई, जो वादियों के हित को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करते हुए की गई, विवादित ढांचे का निर्माण था ।

इसके बावजूद विवादित स्थान को हिंदुओं द्वारा उपासना के प्रयोजनार्थ प्रयोग किया जाता रहा । इसके विपरीत ऐसा कोई भी उल्लेख नहीं है कि किसी मुस्लिम ने निर्माण की तारीख से वर्ष 1856-57 तक नमाज अदा की हो । उपरोक्त तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए ऐसी कोई भी कार्रवाई नहीं की गई, जिससे हिंदू किसी विशिष्ट तारीख पर व्यथित होते, जिसके कारण परिसीमा के प्रयोजनों से वाद फाइल करने का अधिकार उद्भूत होता । परिणामस्वरूप न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि वाद संख्या 5 को परिसीमा द्वारा बाधित अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता । न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा ने अभिनिर्धारित किया कि देवता परिसीमा अधिनियम की धारा 6 के प्रयोजनों के लिए अवयस्क हैं और वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि वाद संख्या 5 परिसीमा के भीतर था । अत: अब यह आवश्यक हो जाता है कि इस मूलभूत विवाद्यक को संबोधित किया जाए कि वाद संख्या 5 परिसीमा द्वारा बाधित है । यह निर्धारण करते हुए कि क्या वाद संख्या 5 परिसीमा के भीतर है या परे, इस स्थिति पर विचार किया जाना चाहिए कि शेष वादों (वाद संख्या 1, 3 और 4) जिनको इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष आरंभ किया गया था, के किसी भी वादी को वाद संख्या 5 में पक्ष नहीं बनाया गया था । वाद संख्या 5 में किया गया प्रकथन यह है कि प्रथम और द्वितीय वादी, दोनों का अपना-अपना सुभिन्न न्यायिक व्यक्तित्व है । प्रथम वादी का उपासकों से स्वतंत्र रहते हुए अपना सुभिन्न न्यायिक व्यक्तित्व है । वादपत्र के पैरा 18 में वादियों ने प्रकथन किया है कि पूर्ववर्ती वादों के कुछ पक्ष, जो उपासक हैं, किसी सीमा तक अपने-अपने निजी हितों को संतुष्ट किए जाने की ईप्सा करते हुए 'अंतर्वलित' हैं, जिनको वादी देवताओं की उपासना पर नियंत्रण अभिप्राप्त किए जाने के द्वारा पूर्ण किया जा सकता है । महत्वपूर्ण रूप से वादी देवताओं की सेवा पूजा तारीख 29 दिसंबर, 1949 को विवादित संपत्ति की कुर्की के पश्चात् भी जारी रही । इसलिए यह दलील नहीं दी जा सकती कि वाद संख्या 5 का वादकारण तारीख 29 दिसंबर, 1949 को उद्भूत हुआ, जो उपासना और प्रार्थना में व्यवधान या विवादित संपत्ति की कुर्की से संबंधित है । वाद संख्या 5 में किए गए अभिवचनों में विवादित संपत्ति के संबंध में फाइल किए गए समस्त पूर्ववर्ती वाद निर्दिष्ट हैं । वाद संख्या 5 के प्रतिवादियों में हिंदू और मुस्लिम पक्षों के अतिरिक्त वाद संख्या 2, 3 और 4 के वादी और राज्य और उसके अधिकारी सम्मिलित हैं । वाद संख्या 5 इस अभिवाक् पर आधारित है कि तथ्यत: देवताओं के हित की रक्षा उन

व्यक्तियों या अस्तित्वों द्वारा नहीं की जा रही थी, जो पूर्ववर्ती कार्यवाहियों की पैरवी कर रहे थे । जब वाद संख्या 5 संस्थित कराया गया था, तब प्रथम और द्वितीय वादी के विधिक व्यक्ति का न्यायनिर्णयन नहीं हुआ था । वाद संख्या 5 को संस्थित कराए जाने पर वाद संख्या 3 और 4 के वादियों ने इस बात से अभिव्यक्त रूप से इनकार किया था कि द्वितीय वादी उपासना का स्वतंत्र अस्तित्व और विधिक व्यक्ति था । पुनः, भगवान राम के देवता के हित के संबंध में वादियों की यह आशंका कि उनके हितों का संरक्षण नहीं किया जा रहा है, इस घटना से स्पष्ट रूप से साबित हो जाती है, जिसका उल्लेख निर्मोही अखाड़ा द्वारा तारीख 14 अगस्त, 1989 को फाइल किए गए उनके लिखित कथन में किया गया है । निर्मोही अखाड़ा ने इस बात से इनकार किया कि वादी किसी भी अनुतोष के हकदार हैं और उन्होंने अपने इस अभिवाक् का आश्रय लिया कि वादियों द्वारा जिस परिसर का उल्लेख किया गया है, वह निर्मोही अखाड़े से संबंधित है और वादियों को '**निर्मोही अखाड़े के अधिकार और स्वत्व के विरुद्ध**' किसी घोषणा की ईप्सा का अधिकार नहीं है । वास्तव में निर्मोही अखाड़े ने वाद का अर्थान्वयन 'निर्मोही अखाड़े के मंदिर को ध्वस्त किए जाने की आशंका, जिसके लिए अखाड़े का वाद लंबित है' के रूप में किया । निर्मोही अखाड़े ने इस अभिवाक् का अवलंब लिया कि भगवान राम की मूर्ति अयोध्या स्थित राम जन्मभूमि में स्थापित नहीं है बल्कि उस मंदिर में स्थापित है, जिसको राम जन्मभूमि मंदिर के नाम से जाना जाता है और जिसका प्रभार और प्रबंधन दिलाए जाने के लिए निर्मोही अखाड़े ने वाद फाइल किया था । वादियों द्वारा ईप्सित व्यादेश के अनुतोष के उत्तर में निर्मोही अखाड़े ने इस अभिवाक् का अवलंब लिया कि केवल उसी को मंदिर पर नियंत्रण रखने, उसका पर्यवेक्षण करने और मरम्मत करने और यहां तक कि यदि आवश्यक हो तो पुनर्निर्माण करने का अधिकार है । निर्मोही अखाड़े ने इस अभिवाक् का अवलंब लिया कि उस न्यास, जो वर्ष 1985 में स्थापित किया गया है, को निर्मोही अखाड़े के स्वत्व और हित को नुकसान पहुंचाने के 'स्पष्ट इरादे' के अंतर्गत स्थापित किया गया है । वाद संख्या 5 की पोषणीयता पर सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड और निर्मोही अखाड़े, दोनों ने समान एतराज प्रस्तुत किए, जिससे वर्तमान कार्यवाहियों के अनुक्रम में उनके द्वारा किए गए पक्षकथन की पुनर्पुष्टि हो जाती है । डा. राजीव धवन ने सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड की तरफ से दलीलें देते हुए निवेदन किया कि यद्यपि वाद संख्या 3 परिसीमा द्वारा बाधित है, फिर भी इससे निर्मोही

अखाड़े का शिबायत के रूप में अपने दावों की पैरवी अधिकार समाप्त नहीं होता । उन्होंने दलील दी कि निर्मोही अखाड़े के शिबायत होने के नाते वाद संख्या 5 पोषणीय नहीं है । वादियों का पक्षकथन है कि वाद की कार्यवाहियों के दौरान जो तथ्य न्यायालय के समक्ष प्रकट हुए, से यह भली-भांति और सत्यतापूर्वक साबित हो जाता है कि वाद संख्या 5 का संस्थित किया जाना देवता के पूर्ववर्ती वादों में पक्ष न होने के परिणामस्वरूप आवश्यक था और इस आशंका पर आधारित था कि विद्यमान वादों में भगवान राम के देवता की स्वावलंबन से आवश्यकताओं और समस्याओं के समाधान के बिना अग्रणी पक्षों के व्यक्तिगत हितों के बाबत पैरवी की जा रही थी । वाद संख्या 5 के वादकारण के आधार पर वाद के संस्थित किए जाने के लिए उचित अर्थान्वयन पर परिसीमा द्वारा बाधित होने के कारण विचार नहीं किया जा सकता । निर्मोही अखाड़े द्वारा फाइल किया गया वाद (वाद संख्या 3) प्रबंधन और प्रभार के बाबत था और इस वाद में राम जन्मभूमि मंदिर को वर्णित किया गया था । निर्मोही अखाड़े के शिबायत होने का दावा वाद संख्या 3 के संस्थित किए जाने की तारीख पर उद्भूत नहीं हुआ था । वे विधित: शिबायत (कोई समर्पण विलेख न होने के कारण) नहीं थे और उनके वस्तुत: शिबायत होने के दावे को साक्ष्य के आधार पर साबित किया जाना था । वाद संख्या 5 इस अभिवाक् पर आधारित था कि पूर्ववर्ती वाद के पक्ष अपने-अपने हितों की पैरवी कर रहे थे । वाद संख्या 5 के आधार (वादकारण) के बाबत यह आशंका सारहीन है । निर्मोही अखाड़े की तरफ से उनकी प्रतिरक्षा, जो प्रबंधन और प्रभार के दावे के परे चली गई, में अभिकथित 'अधिकार और स्वत्व' और उनके 'स्वत्व और हित' का अवलंब लिए जाने की ईप्सा की गई थी, जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है । सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड ने देवता द्वारा वादमित्र के माध्यम से उनके हितों के संरक्षण के अधिकार को दी गई चुनौती को अधिक दृढ़ता प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ शिबायत के रूप में निर्मोही अखाड़े के वादकारण का समर्थन करते हुए उनके साथ संयुक्त रूप से वादकारण सृजित कर लिया । जब निर्मोही अखाड़ा अपने स्वयं के 'स्वत्व और हित' के बाबत अभिवाक् करता है, तो वह देवता के हित के प्रतिकूल अपने हित के बाबत अभिवाक् करता है । इस पृष्ठभूमि में वाद संख्या 5 में भगवान राम के देवता की तरफ से वादकारण के बाबत किए गए अभिवाक् को परिसीमा द्वारा बाधित अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता । श्री पारासरन ने निवेदन किया कि वाद संख्या 5 आवश्यकत:

भविष्य में राम जन्मभूमि स्थल पर भगवान राम को समर्पित मंदिर के निर्माण की आवश्यकता पर विचार किए जाने हेतु संस्थित कराया गया । डा. धवन ने वाद संख्या 5 की आवश्यकता और साथ ही 1985 में न्यास के गठन और व्यापक कार्यसूची (एजेंडा), जिसके परिणामस्वरूप 1992 की घटना घटित हुई, की आलोचना की । हमारे विचार में यह आलोचना इस बाबत विनिर्धारण का कारक नहीं हो सकती कि क्या वाद संख्या 5 विधि की दृष्टि में परिसीमा द्वारा बाधित है । साधारण शब्दों में वाद संख्या 5 में यह अभिवाक् समाविष्ट है कि पूर्ववर्ती वादों, उन वादों को सम्मिलित करते हुए जिनको हिंदू पक्षों द्वारा फाइल किया गया था, में देवता के पक्ष न होने के कारण उनके हितों और समस्याओं का पर्याप्त रूप से संरक्षण नहीं हो रहा था । वे कारण, जिनका अवलंब न्यायमूर्ति अग्रवाल द्वारा वाद संख्या 5 को परिसीमा के भीतर अभिनिर्धारित किए जाने के प्रयोजनार्थ किया गया, का उल्लेख नीचे किया गया है और जो स्वीकार किए जाने योग्य हैं । उपरोक्त चर्चा के आधार पर यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि वाद संख्या 5 परिसीमा अवधि के भीतर संस्थित कराया गया था । (पैरा 426, 427, 428 और 429)

1885 का वाद और पूर्व आदेश का अभिवाक्

पूर्व आदेश (res judicata) का अभिवाक् उस वाद, जो वर्ष 1885 में महंत रघुबर दास द्वारा राम चबूतरे पर मंदिर के निर्माण के लिए डिक्री की ईप्सा करते हुए, संस्थित कराया गया था, के समर्थन में फाइल की गई सामग्री और उसके परिणाम पर टिका हुआ है । इस बाबत विनिर्दिष्ट विवाद्यक कि क्या पूर्व आदेश का सिद्धांत आकर्षित होता है, वाद संख्या 1, 4 और 5 में विरचित किए गए थे, जो निम्नलिखित है : **वाद संख्या 1 : विवाद्यक संख्या 5(क)** : क्या वादग्रस्त संपत्ति फैज़ाबाद के उप-न्यायाधीश के न्यायालय में संस्थित 1885 के मूल वाद संख्या 61/280, **रघुबर दास महंत** बनाम **सेक्रेटरी आफ स्टेट फार इंडिया और अन्य** में अंतर्वलित है ? **विवाद्यक संख्या 5(ख)** : क्या यह विवाद्यक वादी के विरुद्ध निर्णीत किया गया ? **विवाद्यक संख्या 5(ग)** : क्या वाद सामान्य हिंदुओं की जानकारी में था और क्या समस्त हिंदू इस वाद में हितबद्ध थे ? **विवाद्यक संख्या 5(घ)** : क्या विनिश्चय वर्तमान वाद को पूर्व आदेश के सिद्धांत और किसी अन्य प्रकार से वर्जित करता है ? **वाद संख्या 4 : विवाद्यक संख्या 7(क)** : क्या 1885 के वाद संख्या 61/280 के वादी महंत रघुबर दास ने जन्मस्थान की तरफ से वाद फाइल किया था और लोगों का समस्त

निकाय जन्मस्थान में हितबद्ध था ? **विवाद्यक संख्या 7(ख)** : क्या मोहम्मद असगर अभिकथित बाबरी मस्जिद का मुतवल्ली था और उसने वाद में स्वयं की और मस्जिद की तरफ से प्रतिरक्षा नहीं की थी ? **विवाद्यक संख्या 7(ग)** : क्या उक्त वाद में पारित निर्णय को दृष्टि में रखते हुए मुकदमेबाजी करने वाले प्रतिवादियों और वर्तमान वाद के वादियों को सम्मिलित करते हुए हिंदू समुदाय के सदस्य विवादित संपत्ति के बाबत मुस्लिम समुदाय के स्वत्व से इनकार करने से विबंधित हैं; यदि ऐसा है तो इसके प्रभाव ? **विवाद्यक संख्या 7(घ)** : क्या पूर्वोक्त वाद में विवादित संपत्ति या उसके किसी भाग के बाबत मुस्लिमों के स्वत्व को उस वाद के वादी द्वारा स्वीकार कर लिया गया था ; यदि ऐसा हुआ, तो इसके प्रभाव ? **विवाद्यक संख्या 8 :** क्या 1885 के वाद संख्या 6/280, **महंत रघुबर दास** बनाम **सेक्रेटरी आफ स्टेट और अन्य** वाले मामले में पारित निर्णय इस वाद के वादियों के विरुद्ध पूर्व आदेश की भांति क्रियान्वित होता है ? **वाद संख्या 5 : विवाद्यक संख्या 23 :** क्या फैज़ाबाद के विशेष न्यायाधीश के न्यायालय में महंत रघुबर दास द्वारा फाइल किया गया 1885 के वाद संख्या 61/280 में पारित निर्णय विबंधन और पूर्व आदेश के सिद्धांतों की प्रयोज्यता द्वारा वादियों पर बाध्यकारी है, जैसाकि प्रतिवादी संख्या 4 और 5 द्वारा अभिकथित किया गया है ? धारा 11 की प्रयोज्यता कतिपय शासी सिद्धांतों पर आधारित है । ये सिद्धांत इस प्रकार हैं : (i) वाद में प्रत्यक्षत: और सारभूत रूप से अंतर्वलित मामलों में विवाद्यक पूर्ववर्ती वाद में प्रत्यक्षत: और सारभूत रूप से अंतर्वलित विवाद्यक होना चाहिए; (ii) पूर्ववर्ती वाद उन्हीं पक्षों के मध्य होना चाहिए, जिनके मध्य पश्चात्वर्ती वाद है या उन पक्षों के मध्य होना चाहिए, जिनमें वे या उनमें से कोई समान हक के अधीन मुकदमेबाजी करने का दावा करते हैं; (iii) वह न्यायालय जिसने पूर्ववर्ती वाद निर्णीत किया, को पश्चात्वर्ती वाद या वह वाद, जिसमें विवाद्यक सारभूत रूप से उठाया गया हो, के विचारण के सक्षम होना चाहिए ; और (iv) पूर्ववर्ती वाद में न्यायालय द्वारा विवाद्यक को सुना जाना चाहिए और अंतिम रूप से निर्णीत किया जाना चाहिए । धारा 11 का स्पष्टीकरण VI धारणा उपबंध की प्रकृति का उपबंध है, जो 'ऐसे पक्षकारों के बीच जिनसे व्युत्पन्न अधिकार के अधीन वे या उनमें से कोई दावा करते हैं' अभिव्यक्ति की परिधि के अंतर्गत विस्तारित होता है । स्पष्टीकरण VI, के अधीन, जहां कोई व्यक्ति किसी लोक अधिकार के या किसी ऐसे निजी अधिकार के लिए सद्भावनापूर्वक मुकदमा करते हैं, जिसका वे अपने और अन्य व्यक्तियों के

लिए सामान्यत: दावा करते हैं, वहां ऐसे अधिकार से हितबद्ध सभी व्यक्तियों के बारे में इस धारा के प्रयोजनों के लिए यह समझा जाएगा कि वे ऐसे मुकदमा करने वाले व्यक्तियों से व्युत्पन्न अधिकार के अधीन दावा करते हैं । अन्य शब्दों में स्पष्टीकरण VI को आकर्षित किए जाने के प्रयोजनार्थ यह आवश्यक है कि मुकदमेबाजी सद्भावी होनी चाहिए, जिसमें सार्वजनिक रूप से स्वयं और अन्य के लिए किसी सार्वजनिक अधिकार या निजी अधिकार के संबंध में दावा किया जाना चाहिए । यह केवल तभी हो सकता है जब सभी व्यक्तियों, जो ऐसे किसी अधिकार में हितबद्ध हैं, के बाबत यह अवधारणा की जाए कि वे इस धारा के प्रयोजनार्थ मुकदमेबाजी करने वाले व्यक्तियों के अधीन दावा कर रहे हैं । आदेश 1, नियम 8 में कतिपय उपबंध समाविष्ट हैं, जिनके अधीन एक ही हित में सभी व्यक्तियों की ओर से एक व्यक्ति वाद ला सकेगा या प्रतिरक्षा कर सकेगा । जब 1885 का वाद संस्थित कराया गया था, तो 1882 की सिविल प्रक्रिया संहिता प्रवृत्त थी । इस संहिता की धारा 13 में पूर्व आदेश (res judicata) का उपबंध समाविष्ट है । धारा 13, 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11 में समाविष्ट कतिपय तात्विक अंतरों के बावजूद समरूप हैं । धारा 13 के स्पष्टीकरण V में धारणा उपबंध समाविष्ट है, जो यह अभिकथित करता है कि समान हक के अंतर्गत मुकदमेबाजी करने वाले व्यक्तियों के बारे में यह धारणा कब की जाएगी कि वे दावा कर रहे हैं । तथापि, धारा 13 के स्पष्टीकरण V में केवल दो व्यक्ति आच्छादित हैं, जो किसी निजी अधिकार, जिसके बाबत वे यह दावा करते हैं कि वह अधिकार उनके और अन्य लोगों का सामान्य अधिकार है, के संबंध में मुकदमेबाजी करते हैं । इसके विपरीत 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11 का स्पष्टीकरण VI के अंतर्गत वे व्यक्ति आच्छादित हैं, जो किसी ऐसे सार्वजनिक अधिकार या निजी अधिकार के संबंध में मुकदमेबाजी करते हैं, जो उनके और अन्य के सामान्य अधिकार हैं । 1882 की सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 13 के स्पष्टीकरण V और 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11 के स्पष्टीकरण IV के मध्य भिन्नता को दोनों उपबंधों को समाविष्ट करने वाली निम्न तालिका में स्पष्ट किया गया है :–

1882 की सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 13	**1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11**
स्पष्टीकरण V – जहां कोई व्यक्ति किसी ऐसे प्राइवेट	**स्पष्टीकरण VI –** जहां कोई व्यक्ति किसी लोक अधिकार के

अधिकार के लिए सद्भावपूर्वक मुकदमा करते हैं जिसका वे अपने लिए और अन्य व्यक्तियों के लिए सामान्यत: दावा करते हैं वहां ऐसे अधिकार से हितबद्ध सभी व्यक्तियों के बारे में इस धारा के प्रयोजनों के लिए यह समझा जाएगा कि वे ऐसे मुकदमा करने वाले व्यक्तियों से व्युत्पन्न अधिकार के अधीन दावा करते हैं ।	या किसी ऐसे प्राइवेट अधिकार के लिए सद्भावपूर्वक मुकदमा करते हैं जिसका वे अपने लिए और अन्य व्यक्तियों के लिए सामान्यत: दावा करते हैं वहां ऐसे अधिकार से हितबद्ध सभी व्यक्तियों के बारे में इस धारा के प्रयोजनों के लिए यह समझा जाएगा कि वे ऐसे मुकदमा करने वाले व्यक्तियों से व्युत्पन्न अधिकार के अधीन दावा करते हैं ।

इस प्रक्रम पर यह उल्लेख किया जाता है कि 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 में ऐसा उपबंध समाविष्ट है, जो 1882 की सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 539 के सदृश्य है । तथापि, 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता में धारा 91 को जनता को प्रभावित करने वाले लोक न्यूसेंस और अन्य दोषपूर्ण कार्यों के विरुद्ध कार्रवाई करने के लिए प्रस्तुत किया गया था । 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11 के स्पष्टीकरण VI में विद्यमान 'लोक अधिकार के' शब्दों को धारा 91 में लोक न्यूसेंस से संबंधित वादों को प्रभावी ढंग से निपटारा किए जाने के प्रयोजनार्थ सम्मिलित किया गया था । अत: 1882 की सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 13 के स्पष्टीकरण V में समाविष्ट धारणा उपबंध को 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11 के स्पष्टीकरण VI में समाविष्ट तत्समान उपबंध में विस्तारित किया गया, ताकि किसी ऐसे मामले को भी आच्छादित किया जा सके, जिसमें लोग सद्भावी किसी ऐसे निजी या लोक अधिकार के संबंध में मुकदमेबाजी करते हैं, जिसका दावा जनसामान्य के लाभार्थ किया जाता है । जब 1885 का पूर्ववर्ती वाद संस्थित कराया गया था, तब स्पष्टीकरण V किसी ऐसी स्थिति में लागू नहीं होता था, जिसमें लोग निजी अधिकार से भिन्न लोक अधिकार के संबंध में मुकदमेबाजी कर सकें । विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री के. पारासरन ने दलील दी कि सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंधों में ऐसे उपबंध समाविष्ट हैं, जो प्रक्रिया के मामलों से संबंधित हैं, जब कि अन्य उपबंध सारभूत मामलों पर विचार करते हैं (देखें दुर्गेश शर्मा बनाम जयश्री वाला मामला) । उदाहरण के लिए यह अभिनिर्धारित किया गया है कि किसी वाद

में पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध अपील फाइल करने का अधिकार सारभूत अधिकार है और यह अधिकार उस विधि द्वारा शासित होगा, जो वाद संस्थित कराए जाने की तारीख पर अभिभावी थी । इसलिए, गरीकपाटी बी. राया बनाम एन. सुबइय्या चौधरी वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान पीठ ने यह अभिनिर्धारित किया : "... (iii) वाद संस्थित कराए जाने का परिणाम यह होता है कि तत्समय प्रवृत्त अपील के समस्त अधिकार वाद की पार्टियों के लिए वाद की शेष अवधि के लिए परिरक्षित हो जाते हैं । (iv) अपील का अधिकार निहित अधिकार होता है और उच्चतर न्यायालय के समक्ष अपील फाइल करने का अधिकार वाद के पक्षों को उद्भूत होता है और उस तारीख से विद्यमान होता है, जिस तारीख से वाद आरंभ होता है और यद्यपि वास्तव में इस अधिकार का प्रयोग तब किया जा सकता है, जब प्रतिकूल निर्णय पारित किया जाता है और तब यह अधिकार उस विधि द्वारा शासित होता है, जो वाद या कार्यवाही संस्थित कराए जाने की तारीख पर अभिभावी होती है और उस विधि द्वारा शासित नहीं होता, जो विनिश्चय पारित किए जाने की तारीख पर या अपील फाइल किए जाने की तारीख पर अभिभावी होती है । (v) अपील का यह निहित अधिकार केवल पश्चात्वर्ती अधिनियमितियों द्वारा वापस लिया जा सकता है, यदि कोई पश्चात्वर्ती अधिनियमिति अभिव्यक्त रूप से या आवश्यक अभिप्राय द्वारा ऐसा उपबंध करती है, अन्यथा नहीं ।" श्री के. पारासरन ने दलील दी कि 1882 की सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 13 के स्पष्टीकरण V द्वारा पूर्व आदेश (res judicata) की प्रयोज्यता को ऐसे मामलों में अपवर्जित कर दिया गया, जहां पूर्ववर्ती वाद जनसामान्य और अन्य लोगों के लिए किसी सार्वजनिक अधिकार का दावा करते हुए मुकदमेबाजी के प्रयोजनार्थ संस्थित कराया गया था । न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने इस निवेदन को अस्वीकृत कर दिया कि 1882 की सिविल प्रक्रिया संहिता को पूर्व आदेश (res judicata) के सिद्धांतों की प्रयोज्यता का विश्लेषण करते हुए लागू किया जाना चाहिए । तथापि, इस आधार पर कि 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता लागू होगी, विद्वान् न्यायाधीश इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि 1885 का वाद और इस वाद में न्यायिक आयुक्त द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष पूर्व आदेश (res judicata) की भांति क्रियान्वित नहीं होंगे । श्री के. पारासरन के निवेदन आवश्यक रूप से इन तथ्यों पर आधारित हैं : उनके अनुसार 1882 की सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 13 का स्पष्टीकरण V (जो तत्समय लागू था, जब 1885 का वाद संस्थित कराया गया था) लागू था, जब पूर्ववर्ती वाद में सार्वजनिक रूप से

अन्य लोगों के निजी अधिकार के आधार पर मुकदमेबाजी की जा रही थी । इसलिए, सार्वजनिक रूप से अन्य लोगों के अधिकार का दावा करते हुए पश्चात्वर्ती वाद पूर्व आदेश (res judicata) के सिद्धांत द्वारा बाधित नहीं है, जैसाकि स्पष्टीकरण V में समाविष्ट है । इस स्पष्टीकरण की परिधि को दूसरों के साथ समान रूप से सार्वजनिक और साथ ही निजी अधिकार पर आधारित दावे को आच्छादित करते हुए धारा 11 को 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता में स्पष्टीकरण VI को प्रस्तावित करते हुए विस्तारित किया गया था । श्री के. पारासरन ने दलील दी कि यह उपबंध, जिसको स्पष्टीकरण VI में प्रस्तावित किया गया है, का अर्थान्वयन यह नहीं हो सकता कि किसी ऐसे वाद को वर्जित कर दिया जाए, जो 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रवर्तन के पश्चात् किसी ऐसे वाद में न्यायनिर्णयन के आधार पर संस्थित कराया गया हो, जो 1885 में संस्थित कराया गया था, जब 1882 की सिविल प्रक्रिया संहिता लागू थी । उनके निवेदन के अनुसार यह प्रक्रिया का मामला होगा, किंतु यदि पूर्व आदेश (res judicata) का वर्जन लागू होगा, तो किसी पक्ष को उद्भूत सारभूत अधिकार को छीन लेगा, परिणामस्वरूप, जब तक कि 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता में भूतलक्षी प्रभाव से किसी सार्वजनिक अधिकार का दावा करने वाले वाद में पूर्व आदेश (res judicata) का सिद्धांत लागू किए जाने के प्रयोजनार्थ कोई सुव्यक्त अनुध्यापन उपलब्ध न हो, 1885 में संस्थित वाद 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता के स्पष्टीकरण VI के अर्थान्तर्गत वर्जन की परिधि के भीतर नहीं आ सकता । वर्तमान कार्यवाहियों के प्रयोजनार्थ यह वास्तव में आवश्यक नहीं है कि श्री के. पारासरन द्वारा किए गए इस निवेदन का अत्यंत विस्तारपूर्वक विश्लेषण मामले पर किसी भी दृष्टिकोण से किया जाए, यह स्पष्ट है कि 1885 का वाद 1882 की संहिता की धारा 13 के उपबंधों या 1908 की संहिता की धारा 11 की प्रयोज्यता के बाबत पूर्व आदेश (res judicata) की भांति क्रियान्वित नहीं होगा । 1885 के पूर्ववर्ती वाद में किए गए अभिवचनों और निकाले गए निष्कर्षों से यह दर्शित होता है कि महंत रघुबर दास केवल उस अधिकार का दावा दृढ़तापूर्वक कर रहे थे, जो उनका व्यक्तिगत अधिकार था । पूर्ववर्ती वाद प्रतिनिधिक हैसियत में संस्थित नहीं कराया गया था; उस वाद में विरचित विवाद्यक और ईप्सित अनुतोष भिन्न थे और इसलिए वे उसी वाद के गुण (properties) थे । इसके पहले कि किसी वाद में आदेश 1, नियम 8 के अधीन अभियोजन चलाया जाए या प्रतिरक्षा की जाए, यह आवश्यक है कि ऐसे अनेक व्यक्ति होने चाहिए, जिनका वाद में समान हित अंतर्वलित हो ।

इसके पहले कि किसी व्यक्ति को अन्य हितबद्ध व्यक्तियों की तरफ से किसी वाद को अभियोजित या प्रतिरक्षा करने की अनुज्ञा प्रदान की जाए, न्यायालय से विनिर्दिष्ट अनुज्ञा प्राप्त किया जाना आज्ञापक होगा । आदेश 1, नियम 8 की उपधारा 2 के अधीन यह अपेक्षित है कि वाद संस्थित कराए जाने की सूचना समस्त हितबद्ध व्यक्तियों को उसी प्रकार से दी जानी चाहिए, जैसाकि निर्देशित किया गया है या सार्वजनिक विज्ञापन द्वारा दी जानी चाहिए । कोई व्यक्ति जिसकी तरफ से या जिसके लाभार्थ वाद संस्थित कराया गया है या वाद में प्रतिरक्षा की जा रही है, वाद में पक्ष के रूप में सम्मिलित किए जाने के लिए आवेदन प्रस्तुत कर सकता है । किसी वाद में दावे का कोई भी भाग उपधारा 4 के अधीन परित्यक्त नहीं किया जा सकता और वाद वापस नहीं लिया जा सकता और न ही उस वाद में समझौता करार या संतुष्टि अभिलिखित की जा सकती है, जब तक कि समस्त हितबद्ध व्यक्तियों को सूचना न दे दी गई हो । आदेश 1, नियम 8 में समाविष्ट उपबंधों के अध्यधीन रहते हुए ऐसे किसी वाद में पारित की गई डिक्री समस्त व्यक्तियों पर बाध्यकारी होती है, जिनकी तरफ से या जिनके लाभार्थ वाद संस्थित कराया गया है या प्रतिरक्षा की गई है । कुमारावेलू चेतियार बनाम पी. पी. रामास्वामी अय्यर वाले मामले में प्रिवी कौंसिल ने अभिनिर्धारित किया : "स्पष्टीकरण VI उन मामलों तक सीमित नहीं है, जो आदेश 1, नियम 8 द्वारा आच्छादित होते हैं बल्कि ऐसे किसी भी मुकदमे में विस्तारित होता है, जिसमें पक्ष, इस नियम से बिल्कुल अलग, स्वयं के अतिरिक्त अन्य हितबद्ध व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करने के हकदार होते हैं ।" उपरोक्त सिद्धांत का अनुसरण नारायण प्रभु वेंकटेश्वरा प्रभु बनाम नारायण प्रभु कृष्णा प्रभु वाले मामले में इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा पारित विनिश्चय में किया गया । इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि संपत्ति के विभाजन के लिए फाइल किए गए किसी वाद में इस बाबत दावा कि संपत्ति संयुक्त प्रकृति की है, करने वाला प्रत्येक पक्ष, अपने अधिकार का दृढ़तापूर्वक दावा करता है और ऐसे हक के बाबत मुकदमेबाजी करते हैं, जो समान दावे करने वाले अन्य लोगों के लिए सामान्य है । इसलिए :... संपत्ति के विभाजन के वाद में इस बाबत दावा कि संपत्ति संयुक्त प्रकृति की है, करने वाला प्रत्येक व्यक्ति अपने अधिकार का दृढ़तापूर्वक दावा करता है और ऐसे हक के अंतर्गत मुकदमेबाजी करता है, जो समान दावे करने वाले अन्य लोगों के लिए सामान्य है । यदि ऐसे किसी विवाद्यक पर किसी अन्य वाद में मुकदमेबाजी की जाती है और उस मुकदमे में निर्णय पारित किया जाता है,

तो हम ऐसा कोई कारण नहीं पाते कि समान दावा करने वाले अन्य लोगों के बाबत यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता कि वे किसी ऐसे अधिकार का दावा कर रहे हैं, जो 'अपने और दूसरों के लिए समान' है । उनमें से प्रत्येक के बाबत स्पष्टीकरण VI के कारणवश अवधारणा की जा सकती है कि उसने उन सभी का प्रतिनिधित्व किया है, जिनके दावों की प्रकृति और हित सामान्य या समान हैं । यदि हम अन्यथा अभिनिर्धारित करते हैं, तो इसका आवश्यक रूप से यह अर्थ होगा कि ऐसे मामलों में दो असंगत डिक्रियां पारित हो जाएंगी । यह निर्णीत किए जाने के प्रयोजनार्थ एक परीक्षण कि क्या किसी विशिष्ट मामले में पूर्व आदेश (res judicata) का सिद्धांत लागू होता है या नहीं, इस बाबत यह अभिनिर्धारित किया जाना होगा कि यदि इस सिद्धांत को लागू नहीं किया गया, तो क्या दो असंगत डिक्रियां विद्यमानता में आएंगी । हम समझते हैं यहां पर ऐसा ही मामला उपस्थित होगा ।" गुरुशिदप्पा गुरुबसप्पा भुसालूर बनाम गुरुशिदप्पा चेनाविरप्पा चेतनी वाले मामले में बम्बई उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश (न्यायमूर्ति रंगनेकर) ने यह अभिनिर्धारित किया : आदेश 1, नियम 8 इस बाबत सर्वांगीण है कि जो इसमें उपबंधित किया गया है और जो इससे स्पष्ट है, यह है कि जहां एक ही वाद में बहुत से पक्ष हैं, तो वाद आदेश 1, नियम 8 के उपबंधों के अधीन संस्थित कराया जा सकता है । यह तभी संभव है, जब वाद स्पष्टीकरण VI के अर्थान्तर्गत प्रतिनिधिक वाद हो, यद्यपि यह आवश्यक नहीं कि यह वाद आदेश 1, नियम 8 के अधीन आच्छादित हो और इसलिए इस वाद को इस आदेश के उपबंधों के अधीन लाए जाने की आवश्यकता नहीं है और यह इस देश में बहुत शुरुआती समय में अभिनिर्धारित किया जा चुका है ... इसलिए, स्पष्टीकरण VI उन मामलों तक सीमित नहीं है, जो आदेश 1, नियम 8 द्वारा आच्छादित होते हैं, बल्कि इस स्पष्टीकरण में ऐसी कोई भी मुकदमेबाजी सम्मिलित होगी, जिसमें पक्ष नियम से बिल्कुल अलग स्वयं के अलावा अन्य हितबद्ध व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करने के हकदार हैं ।" अत: हम श्री नफाडे की दलीलों पर विचार किए जाने के प्रयोजनार्थ इस सिद्धांत पर विचार करते हुए अग्रसर होते हैं कि आदेश 1, नियम 8 के उपबंध 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11 के स्पष्टीकरण VI की प्रयोज्यता को नियंत्रित नहीं करते । वर्तमान मामले के तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए पूर्व आदेश (res judicata) के सिद्धांतों की प्रयोज्यता का विश्लेषण किए जाने की आवश्यकता है । वह स्थिति, जो धारा 11 में समाविष्ट सिद्धांतों की कसौटी पर विचारार्थ उद्भूत होती है, निम्नलिखित है : (i) प्रथम बिंदु जिस पर

विचार किया जाना आवश्यक है, यह है कि क्या पश्चात्वर्ती वाद के पक्ष वही है, जो पूर्ववर्ती वाद के पक्ष थे या क्या वे एक ही नाम से मुकदमेबाजी कर रहे थे । पूर्ववर्ती वाद महंत रघुबर दास द्वारा स्वयं अयोध्या स्थित जन्मस्थान के महंत की हैसियत से संस्थित कराया गया था । वाद रघुबर दास द्वारा निर्मोही अखाड़ा के महंत की हैसियत से संस्थित नहीं कराया गया था । अत: यह सुस्पष्ट है कि 1885 के वाद में निर्मोही अखाड़ा का नाम अनुपस्थित है । इसलिए धारा 11 के स्पष्टीकरण VI की प्रयोज्यता के लिए प्राथमिक अपेक्षा आकर्षित नहीं होती । 1885 का वाद महंत रघुबर दास द्वारा उनकी व्यक्तिगत हैसियत में संस्थित कराया गया था । यह वाद उनके निर्मोही अखाड़ा के महंत की हैसियत में या हिंदुओं की तरफ से संयुक्त रूप से संस्थित नहीं कराया गया था; (ii) 1885 के वाद में न तो देवता, जो वाद संख्या 5 में प्रथम और द्वितीय वादी हैं और न ही सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड, जो वाद संख्या 4 में वादी है, पक्ष थे । महंत रघुबर दास ने आरंभिकत: केवल सेक्रेटरी आफ स्टेट फार काउंसिल इन इंडिया को पक्ष बनाते हुए पूर्ववर्ती वाद संस्थित कराया था । तत्पश्चात् मोहम्मद असगर को उसकी मुतवल्ली की हैसियत में पक्ष बनाया गया था । पूर्ववर्ती कार्यवाहियों के पक्ष भिन्न थे; (iii) पूर्ववर्ती वाद में ईप्सित अनुतोष राम चबूतरा पर मंदिर के निर्माण की अनुज्ञा के प्रयोजनार्थ था । वर्तमान कार्यवाहियों में जो अनुतोष ईप्सित है, वह अन्य बातों के साथ-साथ विवादित संपत्ति की प्रकृति के संबंध में न्यायनिर्णयन का अनुतोष है । अर्थात् क्या वह स्थान एक मस्जिद है, जो जनता को समर्पित है या वह स्थान हिंदुओं का उपासना स्थल है; और (iv) 1885 के वाद में केवल 17 x 21 फीट की माप वाले जन्मस्थान के चबूतरे, जिसके बाबत यह दावा किया गया था कि वह वादी के कब्जे में है, पर विचार किया गया था । वाद की विषयवस्तु दर्शित करने वाला मानचित्र कार्यवाहियों के साथ संलग्न है । इसके विपरीत, वाद संख्या 4 और 5 में वादग्रस्त संपत्ति में भीतरी और बाहरी, दोनों बरामदे समाविष्ट हैं । वाद संख्या 5 में जिस अनुतोष का दावा किया गया है, वह निम्नलिखित है : "इस बाबत घोषणा कि अयोध्या स्थित श्रीराम जन्मभूमि का संपूर्ण परिसर, जैसाकि संलग्नकों I, II और III में वर्णित और चित्रित है, वादी देवताओं से संबंधित है ।" वादपत्र के पैरा 2 में संलग्नकों I, II और III को वर्णित किया गया है – "भवन परिसरों के दो स्थल मानचित्र और संलग्न क्षेत्र, जिसको श्रीराम जन्मभूमि के नाम से जाना जाता है, जिनको शिवशंकर लाल प्लीडर द्वारा तैयार किया गया था ..... इस वादपत्र के साथ उनकी तारीख 25 मई, 1950 की रिपोर्ट के साथ

संलग्न किए जा रहे हैं और संलग्नक I, II और III के रूप में अलग-अलग उसके भाग बनाए जा रहे हैं ।" डा. एम. इस्माइल फारुकी बनाम भारत संघ वाले मामले में संविधान पीठ द्वारा दिए गए निर्णय के पश्चात् अब यह विवाद मात्र भीतरी और बाहरी बरामदों, जिनको वाद संख्या 5 के वादपत्र में संलग्नक-I में वर्णित किया गया है, तक सीमित रह गया है । उच्च न्यायालय ने इस विवाद का न्यायनिर्णयन इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देशों के अनुसार किया । वाद संख्या 4 और 5 में वादग्रस्त संपत्ति 17 x 21 फीट की माप वाले चबूतरे से बृहत्तर प्रकृति की है, जो 1885 के पूर्ववर्ती वाद की विषयवस्तु थी, नि:संदेह रूप से चबूतरा भी वादग्रस्त संपत्ति का भाग था । श्रीमती बी. राजेश्वरी बनाम टी. सी. सर्वणाबवा वाले मामले में अपीलार्थी ने एक वाद वर्ष 1984 में 1817 वर्ग फीट की माप वाली संपत्ति के हक की घोषणा और कब्जे की पुनर्प्राप्ति के लिए संस्थित कराया था । इसके पूर्व वर्ष 1965 में उसके पूर्वजों ने प्रत्यर्थी के विरुद्ध संपत्ति पर स्थित भवन के प्रथम तल पर स्थित 240 वर्ग फीट क्षेत्रफल वाले भाग के बाबत हक की घोषणा और कब्जे के लिए एक वाद संस्थित कराया था । उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अपीलार्थी के पूर्वज द्वारा संस्थित कराए गए वाद में हक और कब्जे का विवाद्यक निर्णीत हो गया था और पश्चात्वर्ती वाद पूर्व आदेश (res judicata) द्वारा वर्जित था । उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय को पलटते हुए इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया – "अब हम वर्तमान मामले के तथ्यों पर वापस लौटते हैं, स्वीकृतत: पूर्व आदेश (res judicata) का अभिवाक् विचारण न्यायालय और प्रथम अपीली न्यायालय के समक्ष अभिवचनों द्वारा नहीं उठाया गया था और उस पर विचार नहीं किया गया था । वादी ने प्रथम अपीली न्यायालय में साक्ष्य के रूप में पूर्ववर्ती वाद, जिसमें उसके हक-हिताधिकारी पक्ष थे, के निर्णय और डिक्री को अभिलेख पर लाए जाने की ईप्सा की थी । उसने यह दलील दी थी कि वह न केवल दस्तावेजों की श्रृंखला द्वारा वादग्रस्त संपत्ति के बाबत उसके हक को साबित करने में सफल रहा है, बल्कि पूर्ववर्ती निर्णय, जो उसकी वादग्रस्त संपत्ति के एक भाग से संबंधित था, द्वारा भी उसके पूर्वजों के हक को मान्य ठहराया गया था और जिससे उसका मामला और अधिक मजबूत हो गया था । उस मामले में प्रत्यर्थी को दस्तावेजों की जानकारी थी, फिर भी उसने पूर्व आदेश (res judicata) के अभिवाक् का आश्रय नहीं लिया । उच्च न्यायालय को इस बाबत अनुमान लगाने का जोखिम नहीं उठाना चाहिए था कि मामले में विवाद्यक क्या है और पूर्ववर्ती वाद में किन विवाद्यकों पर

सुनवाई हुई थी और क्या निर्णय पारित किया गया था । अब यह तथ्य विचारार्थ शेष रह जाता है कि क्या पूर्ववर्ती वाद संपूर्ण संपत्ति, जो वर्तमान में वाद में अंतर्वलित है, के छोटे से भाग तक सीमित था और संपत्ति के किसी विनिर्दिष्ट भाग के संबंध में पारित किया गया विनिश्चय किसी भी स्थिति में संपूर्ण संपत्ति, जो वर्तमान में मुकदमेबाजी की विषयवस्तु है, के बाबत पूर्व आदेश (res judicata) गठित नहीं कर सकता था ।" श्री नफाडे ने के. एथिराजन बनाम लक्ष्मी वाले मामले में इस न्यायालय के दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा दिए गए विनिश्चय का अवलंब इस प्रतिपादना के समर्थन में लिया कि धारा 11 के अधीन पूर्व आदेश (res judicata) का सिद्धांत तब आकर्षित होता है जब पूर्ववर्ती और पश्चात्वर्ती वादों के पक्ष समान हों और उनके मध्य समान विवाद्यक प्रत्यक्षत: और सारभूत रूप से अंतर्वलित हों और यद्यपि पूर्ववर्ती वाद में संपत्ति का केवल एक भाग अंतर्वलित था, जबकि पश्चात्वर्ती वाद में संपूर्ण संपत्ति विवाद की विषयवस्तु हो । पूर्व न्याय के अभिवाक्, जिसके बाबत श्री नफाडे द्वारा दलील दी गई, को स्वीकार किए जाने में निम्नलिखित कठिनाई है : (i) वर्ष 1885 में महंत रघुबर दास द्वारा फाइल किया गया पूर्ववर्ती वाद प्रतिनिधिक हैसियत में फाइल किया गया वाद नहीं था । महंत रघुबर दास ने स्वयं के बाबत जन्मस्थान के महंत होने का दावा किया था । उन्होंने निर्मोही अखाड़ा के महंत के रूप में कोई अभिवाक् नहीं किया था । उनका दावा व्यक्तिगत था; (ii) न तो वाद संख्या 4 में प्रतिवादी और न ही वाद संख्या 5 में वादी देवता पूर्ववर्ती कार्यवाहियों के पक्ष थे । 1885 का वाद हिंदुओं की तरफ से प्रतिनिधिक हैसियत में संस्थित नहीं कराया गया था और न ही इस बाबत कोई अभिवचन किया गया था । महंत रघुबर दास ने उनके द्वारा फाइल किए गए वाद में शिबायती अधिकारों के बाबत कोई दावा नहीं किया था और न ही उनके द्वारा फाइल किए गए वाद के न्यायनिर्णयन में शिबायती प्रकृति के किसी दावे पर विचार किया गया था । इसके विपरीत वाद संख्या 3 में किए गए दावे और निर्मोही अखाड़ा की तरफ से फाइल किए गए वाद संख्या 5 में प्रतिरक्षा में उठाए गए प्रश्न में पोषणीयता का प्रश्न शिबायती अधिकारों से ही सृजित होता है; (iii) विचारण न्यायालय ने 1885 के वाद को खारिज करते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि चबूतरे का कब्जा और स्वामित्व हिंदुओं में निहित था । तथापि, यह वाद इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि मंदिर निर्माण के लिए अनुज्ञा प्रदान किए जाने से विधि और व्यवस्था का गंभीर रूप से भंग अंतर्वलित हो जाएगा । इस आधार पर वाद को खारिज किए

जाने वाले आदेश की पुष्टि जिला न्यायाधीश द्वारा अपील में कर दी गई थी । तथापि, चबूतरा के कब्जे और स्वामित्व के संबंध में निष्कर्ष को निरर्थक बताया गया और तद्नुसार इस निष्कर्ष को समाप्त किए जाने के लिए निर्देशित किया गया । न्यायिक आयुक्त ने वाद खारिज किए जाने वाले आदेश की पुष्टि कर दी थी । यद्यपि न्यायिक आयुक्त ने यह अभिनिर्धारित किया था कि हिंदुओं का निकटवर्ती मस्जिद परिसर के भीतर कतिपय स्थानों तक प्रवेश का सीमित अधिकार था, फिर भी उन्होंने यह मताभिव्यक्ति की कि इस बात को साबित किए जाने के लिए अभिलेख पर कोई भी सामग्री उपलब्ध नहीं है कि वादी (महंत रघुबर दास) प्रश्नगत भूमि का कर्ताधर्ता है । यह निष्कर्ष ऐसे वाद में निकाला गया, जिसमें न तो वादी देवता और न ही निर्मोही अखाड़ा पक्ष थे, इसलिए, यह निष्कर्ष उनके विरुद्ध पूर्व आदेश (res judicata) की भांति क्रियान्वित नहीं हो सकता; (iv) पूर्व आदेश (res judicata) का सिद्धांत किसी ऐसे व्यक्ति को प्रवारित किए जाने के प्रयोजनार्थ ईप्सित है, जो समान वादकारण पर आधारित किसी विवाद के संबंध में बार-बार वाद फाइल करता है । 1885 के वाद का वादकारण, जैसाकि पहले भी विचार किया गया है, पूर्णत: सुभिन्न था ; और (v) 1885 के वाद में दिया गया विनिश्चय व्यक्ति बंधी प्रकृति का विनिश्चय था, जो उस वाद में वादी द्वारा किए गए दावे पर आधारित था । न्यायिक आयुक्त द्वारा दिए गए विनिश्चय में की गई कोई भी मताभिव्यक्ति न तो देवताओं (वाद संख्या 5 में वादी), जो न तो पूर्ववर्ती कार्यवाहियों में पक्ष थे, पर बाध्यकारी होगी और न ही हिंदुओं पर । इसके अतिरिक्त वाद संख्या 4 में मुस्लिमों द्वारा फाइल किए गए 1885 के वाद, जो हक का दावा था, में कोई न्यायनिर्णयन नहीं किया गया था । इस दलील में कोई भी गुणागुण नहीं है कि रचनात्मक पूर्व आदेश (constructive res judicata) का सिद्धांत पश्चात्वर्ती वादों को वर्जित कर देगा । पश्चात्वर्ती वाद के पक्ष भिन्न थे । पूर्ववर्ती वाद में किया गया दावा भिन्न था । वास्तव में उस वाद में किए गए दावे का आधार वह नहीं था, जो पश्चात्वर्ती वादों की विषयवस्तु था । इसी प्रकार से विवाद्यक पर विबंधन के सिद्धांत (doctrine of issue estoppel) या अभिलेख द्वारा विबंधन (estoppel by record) पर आधारित निवेदन में भी कोई गुणागुण नहीं है । परिणामस्वरूप और उपरोक्त कारणोंवश विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री नफाडे द्वारा किए गए निवेदनों, जिनके द्वारा वाद संख्या 5 की पोषणीयता पर पूर्व आदेश (res judicata) के आधार पर एतराज प्रस्तुत किए गए, में कोई गुणागुण नहीं है । (पैरा 430, 439 से 446)

वाद संख्या 1 में ईप्सित उपासना का अधिकार – क्या उपासना का अधिकार निजी अधिकार है या एक बृहत्तर सार्वजनिक अधिकार है, जिसका दावा अन्य उपासनाकर्ताओं के साथ सामूहिक रूप से किया जा सकता है

गोपाल सिंह विशारद द्वारा फाइल किया गया वाद संख्या 1 आवश्यक रूप से ऐसा वाद है, जिसको एक उपासक द्वारा जन्मभूमि पर भगवान राम की उपासना के उसके अधिकार के प्रवर्तन के प्रयोजनार्थ फाइल किया गया है । निर्मोही अखाड़ा द्वारा फाइल किया गया वाद संख्या 3 जन्मभूमि मंदिर का प्रबंधन और भार उनको सौंपे जाने के लिए फाइल किया गया है । सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड द्वारा फाइल किया गया वाद संख्या 4 घोषणात्मक अनुतोष प्राप्त करने के लिए फाइल किया गया है कि बाबरी मस्जिद और उसके चारों तरफ स्थित कब्रिस्तान को सम्मिलित करते हुए विवादित स्थल संपूर्णत: एक सार्वजनिक मस्जिद है और इस वाद में कब्जे की डिक्री ईप्सित है । भगवान राम की मूर्ति (देवता) और जन्मस्थान (जिन दोनों को न्यायिक व्यक्ति कहा गया है) द्वारा वादमित्र के माध्यम से फाइल किया गया वाद संख्या 5 में इस बाबत घोषणात्मक अनुतोष ईप्सित है कि संपूर्ण परिसर, जिसमें वादपत्र के संलग्नक 1, 2 और 3 में वर्णित स्थान सम्मिलित हैं, राम जन्मभूमि का गठन करते हैं और इस वाद में विद्यमान भवन के ध्वंस के पश्चात् नए मंदिर के निर्माण में मध्यक्षेप के विरुद्ध व्यादेश की ईप्सा भी की गई है । अब इस निर्णय में इन वादों में ईप्सित दावों का विश्लेषण और न्यायनिर्णयन किया जाएगा । (पैरा 206)

1991 का पूजा स्थल अधिनियम

संसद् ने 1991 का उपासना स्थल (विशेष उपबंध) अधिनियम अधिनियमित किया है । इस अधिनियम की धारा 3, 6 और 8 अधिनियम के प्रवृत्त होने की तारीख (18 सितंबर, 1991) पर प्रभावी हो गई थी जबकि अन्य उपबंध के बारे में यह उपधारणा की जाती है कि वे तारीख 11 जुलाई, 1991 को प्रभाव में आए । इस अधिनियम का पूरा नाम अधिनियम को अधिनियमित किए जाने के बाबत संसद् के आशय को प्रकट करता है, जो कि इस प्रकार है : "किसी उपासना स्थल का संपरिवर्तन प्रतिषिद्ध करने के लिए और 15 अगस्त, 1947 को यथाविद्यमान किसी उपासना स्थल के धार्मिक स्वरूप को बनाए रखे तथा उससे संसक्त या उसके आनुषंगिक विषयक उपबंध करने के लिए अधिनियम ।" यह विधि दो

प्रयोजनों को पूर्ण करने के लिए अधिनियमित की गई है । प्रथमत:, यह किसी उपासना स्थल के संपरिवर्तन को प्रतिषिद्ध करती है । ऐसा करने के लिए यह विधि यह आज्ञा करते हुए भविष्य के बारे में अभिकथित करती है कि किसी उपासना स्थल के धार्मिक स्वरूप को परिवर्तित नहीं किया जाएगा । द्वितीयत:, यह विधि प्रत्येक उपासना स्थल की धार्मिक प्रकृति, जैसीकि वह 15 अगस्त, 1947 को यथा विद्यमान थी, को बनाए रखे जाने के प्रयोजनार्थ, जब भारत साम्राज्यवादी शासन से स्वाधीनता अभिप्राप्त की, निश्चायक बाध्यता अधिरोपित करती है । अभिव्यक्ति 'उपासना स्थल' को धारा 2(ग) में परिभाषित किया गया है, जो निम्न प्रकार है : "2(ग) 'उपासना स्थल' से कोई मंदिर, मस्जिद, गरुद्वारा, गिरजाघर, मठ या किसी धार्मिक संप्रदाय या उसके अनुभाग का, चाहे वह किसी भी नाम से ज्ञात हो, लोक धार्मिक उपासना का कोई अन्य स्थल अभिप्रेत है ।" उपासना स्थल अधिनियम धारा 2(क) के अधीन उपबंधित करता है कि 'इस अधिनियम का प्रारंभ' से जुलाई 1991 को इस अधिनियम का प्रारंभ अभिप्रेत है । धारा 3 किसी धार्मिक संप्रदाय या उसी धार्मिक संप्रदाय के भिन्न अनुभाग के उपासना स्थल को किसी भिन्न धार्मिक संप्रदाय या उसी धार्मिक संप्रदाय के भिन्न अनुभाग के उपासन स्थल में संपरिवर्तित किए जाने पर वर्जन अधिनियमित करती है : "उपासना स्थलों के संपरिवर्तन का वर्जन – कोई भी व्यक्ति किसी धार्मिक संप्रदाय या उसके किसी अनुभाग के किसी उपासना स्थल का उसी धार्मिक संप्रदाय के भिन्न अनुभाग के या किसी भिन्न धार्मिक संप्रदाय या उसके किसी अनुभाग के उपासना स्थल में संपरिवर्तित नहीं करेगा ।" धारा 4 कतिपय उपासना स्थलों के धार्मिक स्वरूप के बारे में घोषणा और न्यायालयों आदि की अधिकारिता का वर्जन करती है : "कतिपय उपासना स्थलों के धार्मिक स्वरूप के बारे में घोषणा और न्यायालयों आदि की अधिकारिता का वर्जन – (1) यह घोषित किया जाता है कि 15 अगस्त, 1947 को विद्यमान उपासना स्थल का धार्मिक स्वरूप वैसा ही बना रहेगा जैसा वह उस दिन विद्यमान था । (2) यदि इस अधिनियम के प्रारंभ पर, 15 अगस्त, 1947 को विद्यमान उपासना स्थल के धार्मिक स्वरूप के संपरिवर्तन के बारे में कोई वाद, अपील या अन्य कार्यवाही किसी न्यायालय, अधिकरण या अन्य प्राधिकारी के समक्ष लंबित है तो वह उपशमित हो जाएगी और ऐसे किसी मामले की बाबत कोई वाद, अपील या अन्य कार्यवाही ऐसे प्रारंभ पर या उसके पश्चात् किसी न्यायालय, अधिकरण या अन्य प्राधिकारी के समक्ष नहीं होगी : परंतु यदि

इस धारा पर किए ऐसे किसी स्थल के धार्मिक स्वरूप में 15 अगस्त, 1947 के पश्चात् संपरिवर्तन हुआ है, संस्थित या फाइल किया गया कोई वाद, अपील या अन्य कार्यवाही इस अधिनियम के प्रारंभ पर लंबित है, तो ऐसा वाद, अपील या अन्य कार्यवाही इस प्रकार उपशमित नहीं होगी और ऐसे प्रत्येक वाद, अपील या अन्य कार्यवाही का निपटारा उपधारा (1) के उपबंध के अनुसार किया जाएगा । (3) उपधारा (1) और उपधारा (2) की कोई बात निम्नलिखित को लागू नहीं होगी, – (क) उक्त उपधारा में निर्दिष्ट कोई उपासना स्थल, जो प्राचीन संस्मारक तथा पुरातत्वीय स्थल और अवशेष अधिनियम, 1958 (1958 का 24) या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अंतर्गत आने वाला कोई प्राचीन और ऐतिहासिक संस्मारक या कोई पुरातत्वीय स्थल या अवशेष है; (ख) उपधारा (2) में निर्दिष्ट किसी मामले की बाबत कोई वाद, अपील या अन्य कार्यवाही, जिसका इस अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व किसी न्यायालय, अधिकरण या अन्य प्राधिकारी द्वारा अंतिम रूप से विनिश्चय, परिनिर्धारण या निपटारा कर दिया गया है; (ग) ऐसे किसी मामले के बारे में कोई विवाद जो ऐसे प्रारंभ के पूर्व पक्षकार द्वारा आपस में तय हो गया है; (घ) ऐसे किसी स्थल का कोई संपरिवर्तन जो ऐसे प्रारंभ के पूर्व उपमति द्वारा किया गया है; (ङ) ऐसे प्रारंभ के पूर्व ऐसे किसी स्थल का किया गया कोई संपरिवर्तन, जो तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन परिसीमा द्वारा वर्जित होने के कारण किसी न्यायालय, अधिकरण या अन्य प्राधिकारी के समक्ष आक्षेपणीय नहीं है । तथापि, उपासना स्थल अधिनियम में इस अधिनियम के उपबंधों के लागू होने से एक छूट समाविष्ट है, 'जिसे सामान्य बोलचाल की भाषा में रामजन्म भूमि-बाबरी मस्जिद' के नाम से जाना जाता है और जिसके संबंध में कोई वाद, अपील या कार्यवाही के बाबत छूट प्राप्त है । अधिनियम की धारा 5 अनुध्यात करती है : **अधिनियम का रामजन्म भूमि-बाबरी मस्जिद को लागू न होना** – इस अधिनियम की कोई बात उत्तर प्रदेश राज्य के अयोध्या में स्थित रामजन्म भूमि-बाबरी मस्जिद के रूप में सामान्यतया ज्ञात स्थान या उपासना स्थल को और उक्त स्थान या उपासना स्थल से संबंधित किसी वाद, अपील या अन्य कार्यवाही को लागू नहीं होगी ।" अधिनियम की धारा 6 धारा 3 के उपबंधों के अतिलंघन के लिए और इस धारा के अंतर्गत किए गए किसी प्रयास या उपशमन के कार्य के लिए तीन वर्षों के कारावास और जुर्माना के लिए दंड अधिरोपित करती है : **धारा 3 के उल्लंघन के लिए दंड –** (1) जो कोई धारा 3 के उपबंधों का

उल्लंघन करेगा, वह कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक ही हो सकेगी, दंडनीय होगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा । (2) जो कोई उपधारा (1) के अधीन दंडनीय कोई अपराध करने का प्रयत्न करेगा या ऐसा अपराध कराएगा और ऐसे प्रयत्न में अपराध करने की दिशा में कोई कार्य करेगा, वह उस अपराध के लिए उपबंधित दंड से दंडनीय होगा । (3) जो कोई उपधारा (1) के अधीन दंडनीय किसी अपराध का दुष्प्रेरण करेगा या उसे करने में आपराधिक षड्यंत्र का पक्षकार होगा, चाहे ऐसा अपराध ऐसी दुष्प्रेरणा के परिणामस्वरूप या ऐसे आपराधिक षड्यंत्र के अनुसरण में किया गया हो या न किया गया हो, वह भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 116 में किसी बात के होते हुए भी, उस अपराध के लिए उपबंधित दंड से दंडनीय होगा ।" उपासना स्थल अधिनियम की धारा 7 अध्यारोही बल और प्रभाव रखती है : **अधिनियम का अन्य अधिनियमितियों पर अध्यारोही होना** – इस अधिनियम के उपबंध, तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि या इस अधिनियम से भिन्न किसी विधि के आधार पर प्रभावी किसी लिखत में उससे असंगत किसी बात के होते हुए भी, प्रभावी होंगे ।" उपासना स्थल अधिनियम 2 दृढ़ और आज्ञापक नियम अधिरोपित करता है : (i) धारा 3 किसी धार्मिक समूह या किसी धार्मिक समूह के किसी वर्ग के उपासना स्थल को समान धार्मिक समूह के किसी भिन्न वर्ग या किसी भिन्न धार्मिक समूह के उपासना स्थल में परिवर्तित किए जाने पर वर्जन अधिरोपित करती है । 'उपासना स्थल' अभिव्यक्ति को समस्त धर्मों और धार्मिक समूहों के सार्वजनिक धार्मिक उपासना के स्थानों को आच्छादित किए जाने के प्रयोजनार्थ यथासंभव व्यापकतम शब्दों में परिभाषित किया गया है; और (ii) यह विधि प्रत्येक उपासना स्थल की धार्मिक प्रकृति को उसी स्थिति में परिरक्षित करती है, जिस स्थिति में वह तारीख 15 अगस्त, 1947 को विद्यमान था । यह विधि इस प्रयोजन को अभिप्राप्त किए जाने के उद्देश्य से ऐसे किसी भी उपासना स्थल की धार्मिक स्वरूप को परिवर्तित किए जाने के संबंध में उन वादों और विधिक कार्यवाहियों के उपशमन के लिए उपबंधित करती है, जो तारीख 15 अगस्त, 1947 को विद्यमान थे । उपासना स्थल अधिनियम इस उद्देश्य के अतिरिक्त नए वादों और विधिक कार्यवाहियों को संस्थित किए जाने पर भी वर्जन अधिरोपित करता है । एकमात्र अपवाद उन वादों, अपीलों या कार्यवाहियों के संबंध में इस आधार पर उपबंधित किया गया है कि जो वाद इस विधि के आरंभ की तारीख को लंबित थे कि किसी उपासना स्थल का परिवर्तन तारीख 15 अगस्त, 1947

के पश्चात् किया गया था । धारा 4 की उपधारा (2) का परंतुक उन वादों, अपीलों और विधिक कार्यवाहियों को संरक्षण प्रदान करता है, जो इस अधिनियम के आरंभ की तारीख पर लंबित थे, यदि वे अधिनियम के लागू होने की तारीख के पश्चात् किसी उपासना स्थल की धार्मिक प्रकृति के परिवर्तन से संबंधित थे । तथापि, धारा 4 की उपधारा (3) अनुध्यात करती है कि पूर्ववर्ती दोनों धाराएं लागू नहीं होंगी : (क) उक्त उपधारा में निर्दिष्ट कोई उपासना स्थल, जो प्राचीन संस्मारक तथा पुरातत्वीय स्थल और अवशेष अधिनियम, 1958 (1958 का 24) या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अंतर्गत आने वाला कोई प्राचीन और ऐतिहासिक संस्मारक या कोई पुरातत्वीय स्थल या अवशेष है; (ख) उपधारा (2) में निर्दिष्ट किसी मामले की बाबत कोई वाद, अपील या अन्य कार्यवाही, जिसका इस अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व किसी न्यायालय, अधिकरण या अन्य प्राधिकारी द्वारा अंतिम रूप से विनिश्चय, परिनिर्धारण या निपटारा कर दिया गया है; (ग) ऐसे किसी मामले के बारे में कोई विवाद जो ऐसे प्रारंभ के पूर्व पक्षकार द्वारा आपस में तय हो गया है; (घ) ऐसे किसी स्थल का कोई संपरिवर्तन जो ऐसे प्रारंभ के पूर्व उपमति द्वारा किया गया है; (ङ) ऐसे प्रारंभ के पूर्व ऐसे किसी स्थल का किया गया कोई संपरिवर्तन, जो तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन परिसीमा द्वारा वर्जित होने के कारण किसी न्यायालय, अधिकरण या अन्य प्राधिकारी के समक्ष आक्षेपणीय नहीं है । इस अधिनियम की धारा 5 अनुध्यात करती है कि यह अधिनियम रामजन्म भूमि बाबरी मस्जिद से संबंधित किसी वाद, अपील या उससे संबंधित किसी कार्यवाही में लागू नहीं होगा । परिणामस्वरूप इस अधिनियम में एक विनिर्दिष्ट अपवाद समाविष्ट है, जो वर्तमान विवाद के संबंध में उपासना स्थल के उपबंधों द्वारा सृजित किया गया है । **संसद् का आशय** – उपरोक्त विधि (उपासना स्थल अधिनियम) अधिनियमित किए जाने के प्रयोजन को केंद्रीय गृह मंत्री द्वारा लोक सभा में तारीख 10 सितंबर, 1991 को स्पष्ट किया गया था : "हमने देखा कि यह विधेयक प्रेम, शांति और सद्भाव की हमारी गौरवपूर्ण परंपराओं को उपबंधित और विकसित किए जाने का एक उपाय है । ये परंपराएं उस सांस्कृतिक विरासत का भाग हैं जिस पर प्रत्येक भारतीय को न्यायोचित रूप से गर्व होता है । <u>समस्त आस्थाओं के लिए सहनशीलता अनादिकाल से हमारी महान सभ्यता की विशेषता रही है</u> । मेल-जोल, सद्भाव और एक दूसरे के लिए सम्मान की ये परंपराएं स्वाधीनतापूर्व अवधि के दौरान

अत्यधिक खतरे में आ गई थी जब साम्राज्यवादी शक्ति ने देश में साम्प्रदायिक विघटन को सक्रिय रूप से सृजित और प्रोत्साहित किया । हमने स्वाधीनता के पश्चात् भूतकाल के जख्मों को भरने का कार्य किया और साम्प्रदायिक मेल-जोल और मंगलकामना की परंपराओं को उसी स्थान पर पुनर्स्थापित करने का प्रयास किया, जहां वे स्वाधीनता की पूर्व की अवधि के दौरान थीं । किसी सीमा तक हम इसमें सफल भी हुए, यद्यपि हमको इस बात को भी स्वीकार करना चाहिए कि हमें दुर्भाग्यपूर्ण रूप से कुछ विफलताएं भी हाथ लगी । फिर भी उन विफलताओं से हतोत्साहित होने के बजाय यह हमारा कर्तव्य और वायदा है कि हम भविष्य के लिए उन विफलताओं से सबक लें ।" केंद्रीय गृह मंत्री ने उल्लेख किया कि वह विधि, जो उपासना स्थलों को जबरन परिवर्तित किए जाने को प्रतिषिद्ध करती है, को अधिनियमित किए जाने का प्रयोजन यह है कि 'नए विवादों को सृजित होने से और उन पुराने विवादों को उठाए जाने से रोका जा सके, जिनको लोगों द्वारा लंबी अवधि के पूर्व भुला दिया गया है ... और साथ ही को इस विधि द्वारा ईप्सित उद्देश्यों को अभिप्राप्त किया जा सके' । तारीख 15 अगस्त, 1947 की निर्धारित तारीख के समर्थन में बोलते हुए सदस्यों (श्रीमती मालनी भट्टाचार्या) ने स्पष्ट किया – किंतु मैं यह समझती हूं कि यह 15 अगस्त, 1947 की तारीख महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह उपधारणा की जाएगी कि उस तारीख पर हमारा आधुनिक, लोकतांत्रिक और प्रभुसत्तासंपन्न राष्ट्र के रूप में आविर्भाव हुआ और हमने सदैव के लिए भूतकाल की बर्बरता को नकार दिया । हमने इस तारीख से स्वयं को भी एक राष्ट्र, जिसका कोई आधिकारिक धर्म नहीं है और जो समस्त विभिन्न धार्मिक समूहों को समान अधिकार प्रदान करता है, के रूप में ... पहचाना है । इसलिए, इस तारीख के पहले जो कुछ भी घटित हुआ है, हम सभी आशा करते हैं कि वह इस तारीख के पश्चात् भविष्य में ऐसा कोई पतनोन्मुख कार्य नहीं होगा । उपासना स्थल अधिनियम, जो संसद् द्वारा वर्ष 1991 में अधिनियमित किया गया, संविधान द्वारा प्रदत्त संवैधानिक मूल्यों को संरक्षण प्रदान करता है और उनको सुनिश्चित करता है । संविधान की प्रस्तावना विचारों, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता को संरक्षण प्रदान की जाने की आवश्यकता पर बल देती है । यह प्रस्तावना मानवीय गरिमा और बंधुत्व पर बल देती है । सहनशीलता, सभी धर्मों और आस्थाओं के लोगों के लिए सम्मान और समता की स्वीकार्यता इस बंधुत्व का आधारी समादेश है । केंद्रीय गृह मंत्री द्वारा

तारीख 12 सितंबर, 1991 को राज्यसभा को संबोधित करते हुए यह अभिकथित किया गया – "मेरा यह विश्वास है कि भारत अपनी सभ्यता के लिए जाना जाता है और विश्व को भारत का महानतम योगदान वह सहनशीलता, समझ, समावेशी भावना और विश्ववादी दृष्टिकोण है, जो यह दर्शित करता है कि ..... अद्वैत दर्शन .... में स्पष्टत: कहा गया है कि ईश्वर और स्वयं के मध्य कोई अंतर नहीं है । हमको इस बात को महसूस करना होगा कि ईश्वर केवल मंदिर या मस्जिद में नहीं है, किंतु ईश्वर प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में है .... इस बात को प्रत्येक व्यक्ति को समझना होगा कि उसको संविधान के प्रति निष्ठावान होना है, देश की एकता के प्रति निष्ठावान होना है – शेष सभी बाते अतात्विक हैं ।" संसद् ने सार्वजनिक उपासना स्थलों, जो जिस स्थिति में तारीख 15 अगस्त, 1947 को विद्यमान थे, की धार्मिक प्रकृति के संरक्षण के लिए प्रत्याभूति प्रदान करते हुए और सार्वजनिक उपासना के स्थानों को परिवर्तित किए जाने के विरुद्ध यह निर्णय लिया कि साम्राज्यवादी शासन से स्वतंत्रता का संवैधानिक आधार यह है कि प्रत्येक धार्मिक समुदाय को भूतकाल के अन्याय पर मरहम लगाए जाने के प्रयोजनार्थ इस बाबत विश्वास में लिया जाए कि उनके उपासना स्थल संरक्षित रहेंगे और उनकी प्रकृति में कोई परिवर्तन नहीं किया जाएगा । यह विधि राज्य को और साथ ही राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक को स्वयं ही संबोधित करती है । इसमें उपबंधित नियम ऐसे प्रत्येक व्यक्ति पर बाध्यकारी हैं, जो प्रत्येक स्तर पर राष्ट्र के मामलों को शासित करते हैं । वे नियम अनुच्छेद 51-क के अधीन मूल कर्तव्यों को क्रियान्वित करते हैं और इसलिए प्रत्येक नागरिक के लिए निश्चायक रूप से आज्ञापक है । राज्य ने इस विधि को अधिनियमित किए जाने के द्वारा एक संवैधानिक प्रतिबद्धता प्रवर्तित की है और समस्त धर्मों के मध्य समता और पंथनिरपेक्षता, जो संविधान के आधारी लक्षणों के भाग हैं, को सर्वोपरि रखे जाने के प्रयोजनार्थ अपनी संवैधानिक बाध्यताओं को क्रियान्वित किया है । उपासना स्थल अधिनियम भारत के संविधान के अंतर्गत पंथनिरपेक्षता की हमारी प्रतिबद्धता को प्रवर्तित किए जाने के पश्चात् एक गैर अपमानजनक दायित्व अधिरोपित करता है । इसलिए, यह विधि एक विधायी लिखत है, जो भारतीय राजव्यवस्था, जो हमारे संविधान के आधारी लक्षणों में से एक हैं । संविधान के आधारी सिद्धांतों का एक लक्षण है गैर-पतनोन्मुखता, जिसका पंथनिरपेक्षता केंद्रीय संघटक है । अत:, उपासना स्थल अधिनियम एक विधायी मध्यक्षेप है, जो गैर-पतनोन्मुखता को

पंथनिरपेक्ष मूल्यों के आवश्यक लक्षण के रूप में संरक्षण प्रदान करता है । **संवैधानिक मूल्य के रूप में पंथनिरपेक्षता :** एस. आर. बोम्मई बनाम भारत संघ वाले मामले में इस न्यायालय की नौ न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा दिए गए विनिश्चय में न्यायमूर्ति बी. पी. जीवन रेड्डी ने यह अभिनिर्धारित किया : ... सामाजिक न्याय, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता और प्रतिष्ठा और अवसर की समता के संवैधानिक वायदों को किस प्रकार से अभिप्राप्त किया जाना है, जब तक कि राज्य किसी व्यक्ति के अधिकारों, उसके कर्तव्यों और उसकी पात्रताओं पर विचार करते हुए उसके धर्म, आस्था या विश्वास पर विचार करने से पूर्णतया इनकार नहीं कर देता ? अत:, पंथनिरपेक्षता धार्मिक सहिष्णुता के सकारात्मक व्यवहार से बढ़कर किया जाने वाला व्यवहार है । यह समस्त धर्मों के लिए समान व्यवहार की सकारात्मक संकल्पना है । इस व्यवहार को कुछ लोगों द्वारा धर्म के प्रति तटस्थता या एक प्रकार की परोपकारी तटस्थता भी कहा जाता है । यह एक ऐसी संकल्पना है जिसको पश्चिम के उदारवादी विचार द्वारा अंतर्वलित किया गया है अथवा यह, जैसाकि कुछ लोग कहते हैं, समस्त समय-बिंदुओं पर भारतीय लोगों द्वारा पालन की जाने वाली आस्था है । यह तात्विक नहीं है । जो तात्विक है, वह यह है कि यह एक संवैधानिक लक्ष्य है और भारत के संविधान का आधारी लक्षण है, जैसाकि केशवानंद भारती {केशवानंद भारती **बनाम** केरल राज्य, (1973) 4 एस. सी. सी. 225 = [1973] सप्ली. एस. सी. आर. 1} और इंदिरा एन. गांधी **बनाम** राजनारायण, {(1975) सप्ली. एस. सी. सी. 1 = [1975] 2 एस. सी. आर. 347} वाले मामले में अभिपुष्टि की गई है । सरल शब्दों में इस संवैधानिक नीति के असंगत की गई कोई भी कार्रवाई असंवैधानिक है ।" उपासना स्थल अधिनियम आंतरिक रूप से पंथनिरपेक्ष राज्य की बाध्यताओं से संबंधित अधिनियम है । यह अधिनियम भारत की समस्त धर्मों के प्रति समता के दृष्टिकोण की बाध्यता को परावर्तित करता है । इन सब बातों के अतिरिक्त उपासना स्थल अधिनियम उस पवित्र कर्तव्य का तुष्टीकरण है, जिसको राज्य पर समस्त आस्थाओं के मध्य समानता को संरक्षित और सुरक्षित किए जाने के प्रयोजनार्थ एक आवश्यक संवैधानिक मूल्य, एक मानक, जो संविधान का आधारी लक्षण होने की हैसियत रखता है, के रूप में अधिरोपित किया गया था । उपासना स्थल अधिनियम को अधिनियमित किए जाने का यही वास्तविक प्रयोजन है । यह विधि हमारे इतिहास और राष्ट्र के भविष्य के बारे में चर्चा करती है । हम अपने इतिहास और राष्ट्र

के लिए उससे टकराव के प्रति अत्यधिक जागरूक हैं, क्योंकि स्वाधीनता भूतकाल के जख्मों पर मरहम लगाने का ऐतिहासिक क्षण था । ऐतिहासिक भूलों को लोगों द्वारा कानून अपने हाथ में लिए जाने के द्वारा दुरुस्त नहीं किया जा सकता । संसद् ने सार्वजनिक उपासना के स्थानों के स्वरूप का संरक्षण किए जाने के प्रयोजनार्थ स्पष्ट शब्दों में आज्ञापक किया है कि इतिहास और उसकी भूलों को वर्तमान और भविष्य में उत्पीड़न के आयुद्ध के रूप में प्रयोग नहीं किया जाएगा । न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा द्वारा उपासना स्थल अधिनियम पर की गई मताभिव्यक्तियां विधि की योजना के विपरीत हैं क्योंकि वे जहां तक उनका संबंध संवैधानिक मूल्यों की रूपरेखा से है । न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा ने मताभिव्यक्ति की वह निम्नलिखित है – "1(ग) धारा 9 अत्यधिक व्यापक है । किसी ईसाई धर्म से संबंधित न्यायालयों की अनुपस्थिति में कोई भी धार्मिक विवाद संज्ञेय है, सिवाय अत्यधिक विरल मामलों के, जिनमें ईप्सित घोषणा वह घोषणा हो सकती है, जो धार्मिक अधिकार सृजित करती हो । 1991 का उपासना स्थल (विशेष उपबंध) अधिनियम उन मामलों को विवर्जित नहीं करता, जिनमें घोषणा अधिनियम के प्रवृत्त होने के पूर्व की अवधि के लिए ईप्सित है या उन अधिकारों के प्रवर्तन के लिए ईप्सित है, जिनको अधिनियम के पूर्व मान्यता प्रदान की गई थी ।" न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा द्वारा निकाला गया उपरोक्त निष्कर्ष प्रत्यक्षत: धारा 4(2) के उपबंधों के विपरीत है । न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा ने उपरोक्त मताभिव्यक्तियों में यह अनुध्यात किया कि उपासना स्थल अधिनियम निम्नलिखित प्रकृति के मामलों, जिन पर विचार किया जा रहा है, को विवर्जित नहीं करेगा, अर्थात् – (i) ऐसे मामलों जिनमें उपासना स्थल अधिनियम के प्रवर्तन की पूर्व की अवधि के लिए घोषणा ईप्सित है; या (ii) ऐसे मामलों जिनमें किसी ऐसे अधिकार का प्रवर्तन ईप्सित है, जिसको उपासना स्थल अधिनियम के प्रवर्तन के पूर्व मान्यता प्रदान की गई थी । (पैरा 78 से 84)

क्या सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड को 1960 के उत्तर प्रदेश मुस्लिम वक्फ़ अधिनियम के अंतर्गत वाद संख्या 4 को चलाने के लिए सक्षम है

वाद संख्या 4 की पोषणीयता के विरुद्ध इस आधार पर ऐतराज किया कि वाद केवल किसी मुतवल्ली की तरफ से संस्थित कराया जा सकता था । उन्होंने दलील दी कि सुन्नी सेंट्रल बोर्ड को वाद संस्थित कराने का अधिकार नहीं था । इस दलील में कोई गुणागुण नहीं है । 1960 के उत्तर

प्रदेश मुस्लिम वक्फ़ अधिनियम की धारा 19(2) विनिर्दिष्ट रूप से बोर्ड को किसी संपत्ति को पुन: प्राप्त करने के लिए उपाय अंगीकृत करने और वक्फ़ से संबंधित वादों को संस्थित कराने और उनकी प्रतिरक्षा किए जाने के प्रयोजनार्थ सशक्त करती है । धारा 3(2) के अधीन बोर्ड को अधिनियम के अधीन गठित सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड या शिया सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड के अर्थान्तर्गत परिभाषित किया गया है । इसलिए स्पष्टत: कानूनी निबंधनों के अनुसार सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड को विधिक कार्यवाहियां संस्थित कराने का अधिकार प्राप्त है । (पैरा 611)

उच्चतम न्यायालय द्वारा नियुक्त सुलह पैनल द्वारा निपटारा, जो वास्तव में निपटारा नहीं था, चूंकि यह सशर्त था

भारत के मुख्य न्यायमूर्ति ने 2013 के उच्चतम न्यायालय नियम के आदेश vi, नियम 1 के उपबंधों का अनुसरण करते हुए तारीख 8 जनवरी, 2019 के प्रशासनिक आदेश द्वारा अपीलों की सुनवाई के लिए पांच न्यायाधीशों की न्यायपीठ गठित की । रजिस्ट्री को तारीख 10 जनवरी, 2019 को अभिलेखों का निरीक्षण करने और आवश्यकता होने पर शासकीय अनुवादकों की नियुक्ति की जाने के लिए निर्देशित किया गया । इस न्यायालय ने तारीख 26 फरवरी, 2019 को पक्षों को न्यायालय द्वारा नियुक्त और न्यायालय की निगरानी में कार्य करने वाले मध्यस्थों को निर्दिष्ट कर दिया ताकि अपीलों में उठाए गए विवाद्यकों के स्थाई समाधान के बाबत किसी संभाव्यता का पता लगाया जा सके । तारीख 8 मार्च, 2019 को मध्यस्थों का एक पैनल गठित किया गया, जिसमें (i) इस न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश न्यायमूर्ति फकीर मुहम्मद इब्राहीम कलीफुल्ला; (ii) श्री श्री रविशंकर; और (iii) वरिष्ठ अधिवक्ता श्री श्रीराम पंचू को सम्मिलित किया गया । मध्यस्थों को मध्यस्थता की कार्यवाही समाप्त करने के लिए प्रदान किया गया समय तारीख 10 मई, 2019 तक विस्तारित कर दिया गया । चूंकि तारीख 2 अगस्त, 2019 तक मामले का कोई निपटारा नहीं हो सका, इसलिए यह निर्देशित किया गया कि अपीलों की सुनवाई तारीख 6 अगस्त, 2019 से पुन: आरंभ की जाए । सुनवाई के अनुक्रम के दौरान मध्यस्थों के पैनल द्वारा एक रिपोर्ट इस बाबत प्रस्तुत की गई कि कुछ पक्षों ने विवाद के समाधान की इच्छा व्यक्त की । अत: इस न्यायालय ने तारीख 18 सितंबर, 2019 के आदेश द्वारा मताभिव्यक्ति की कि यद्यपि मामले की सुनवाई चलती रहेगी, फिर भी यदि पक्ष विवाद के समाधान का इच्छुक है, तो उनको यह स्वतंत्रता है कि

वे मध्यस्थों के समक्ष उपस्थित हों और उसके समक्ष अपना समाधान प्रस्तुत करें और यदि समाधान हो जाता है, तो उसको इस न्यायालय के समक्ष भी प्रस्तुत किया जाए । तारीख 16 अक्तूबर, 2019 को अपीलों के बंडल में अंतिम दलीलें भी समाप्त हो गई । उसी दिन मध्यस्थता पैनल ने 'समिति की अंतिम रिपोर्ट' शीर्षक के अंतर्गत अपनी रिपोर्ट यह अभिकथित करते हुए प्रस्तुत की कि वर्तमान विवाद के कुछ पक्षों द्वारा मामले का एक समाधान निकाला गया है । इस समाधान पर सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड के अध्यक्ष जफ़र अहमद फारुकी द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे । यद्यपि इस समाधान के अंतर्गत सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड विवादित भूमि के संबंध में अपने समस्त अधिकारों, हितों और दावों के अधित्यजन के लिए सहमत हो गया था, किंतु फिर भी यह समाधान कतिपय अनुध्यात शर्तों के पूर्ण किए जाने के अध्यधीन था । मध्यस्थता पैनल से इस न्यायालय द्वारा प्राप्त किए गए समाधान करार वर्तमान विवाद के समस्त पक्षों द्वारा न तो सहमति व्यक्त की गई थी और न ही उस पर हस्ताक्षर किए गए थे । इसके अतिरिक्त यह समाधान कतिपय अनुध्यापनों को पूर्ण किए जाने की शर्त के अंतर्गत था । अतः, इस समाधान को विवाद के पक्षों के मध्य बाध्यकारी या अंतिम करार नहीं माना जा सकता । तथापि, हम मध्यस्थता पैनल के सदस्यों द्वारा इस न्यायालय द्वारा उनको सौंपे गए कार्य को करने के लिए गंभीरतापूर्वक किए गए प्रयासों की सराहना करते हैं । मध्यस्थों ने विवाद के पक्षों को स्वतंत्र और बेझिझक वार्ता के लिए एक मंच पर लाकर एक ऐसा कार्य किया है जिसकी सराहना किए जाने की आवश्यकता है । हम पक्षों के प्रति भी प्रशंसा व्यक्त करते हैं जिन्होंने मध्यस्था कार्यवाहियों का अनुसरण करने का गंभीरतापूर्वक प्रयास किया । (पैरा 32)

भारत 'न्याय, समता और सद्विवेक का सिद्धांत' को लागू करने का इतिहास

भारत में न्याय, समता और सद्विवेक के सिद्धांत का उपयोग बाम्बे में साम्राज्यवादी शासन के साथ आरंभ हुआ । चूंकि बाम्बे ने वाणिज्यिक केंद्र के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी, इसलिए भारत और साथ ही इंग्लिश नौवाहन न्यायालयों में प्रचलित सामान्य विधि में व्याप्त कमियों को दूर किए जाने के प्रयोजनार्थ वाणिज्यिक विधि की प्रणाली की आवश्यकता उत्पन्न हुई । इसलिए वर्ष 1669 में नियुक्त किए गए कंपनी न्यायाधीशों से अपेक्षा की गई कि वे सद्विवेक के अनुसार न्यायनिर्णयन करें । अंततः, तारीख 9 अगस्त, 1683 के रॉयल चार्टर्स द्वारा (i) बाम्बे में वाणिज्यिक और नौवाहन न्यायालय और (ii) तारीख 30 दिसंबर, 1687 के

रॉयल चार्टर द्वारा मद्रास में नगरपालिका और मेयर के न्यायालय स्थापित किए गए । बाम्बे की अधिकारिता रखने वाले न्यायालयों से 'समता और सद्विवेक के नियमों और व्यापारियों पर लागू होने वाले कानूनों और रूढ़ियों के अनुसार न्यायनिर्णयन किए जाने की अपेक्षा की गई' । मद्रास स्थित मेयर के न्यायालय का मार्गदर्शन समता और सद्विवेक अनुसार किया जाना था । गवर्नर जर्नल वारेन हेस्टिंस ने तारीख 5 जुलाई, 1781 को बंगाल, बिहार और उड़ीसा प्रांतों की दीवानी अदालत के न्यायालयों में न्याय प्रशासन के लिए विनियम पारित किए । उक्त विनियम के विनियम 60 में यह अभिकथित किया गया है – "मोफस्सिल दीवानी अदालतों की अधिकारिता के भीतर आने वाले समस्त मामलों, जिनके लिए एतदद्वारा कोई विनिर्दिष्ट निर्देश नहीं दिए जा रहे हैं और इन न्यायालयों के माननीय न्यायाधीश न्याय, समता और सद्विवेक के अनुसार कार्य करेंगे ।" सदर न्यायालय के न्यायाधीशों के लिए इसी प्रकार का एक उपबंध विनियम 93 के अधीन विरचित किया गया । यद्यपि ये उपबंध प्रक्रियात्मक प्रकृति के थे, फिर भी इन नियमों ने भारतीय प्रशासनिक और विधिक अवसंरचना में संकल्पना संबंधी दखलअंदाजी की । वर्ष 1832 के विनियम VII का विनियम 9 निम्नलिखित है – "ऐसे मामलों, जिनमें पक्ष भिन्न-भिन्न विश्वासों को मानने वाले हैं, उनमें धर्मों से संबंधित विधियां किसी भी पक्ष को उस संपत्ति से वंचित नहीं करेंगी, जिसके लिए वह पक्ष उक्त विधियों के क्रियान्वयन के अंतर्गत हकदार हो । ऐसे सभी मामलों में विनिश्चय न्याय, समता और सद्विवेक के सिद्धांतों द्वारा शासित होंगे । तथापि, इस बात को स्पष्टत: समझा जाना चाहिए कि इन उपबंधों को इंग्लिश या किसी विदेशी विधि या ऐसे मामलों में इन सिद्धांतों द्वारा मंजूरी प्राप्त किसी नियम को प्रस्तावित किए जाने के प्रयोजनार्थ न्यायसंगत नहीं ठहराया जाएगा ।" इसी के साथ पक्षों पर लागू होने वाली व्यक्तिगत विधियों के उपयोजन के लिए भी गुंजाई की गई थी । उदाहरण के लिए वर्ष 1781 में ही संसद् ने 1781 का अधिनियम पारित किया जिसकी धारा 17 में यह अनुध्यात किया गया कि उच्चतम न्यायालय को कलकत्ता के निवासियों के विरुद्ध समस्त वादों पर विचार करने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिए – "परंतु यह तब जबकि भूमि की विरासत और उत्तराधिकार, किराए और माल और संविदा के समस्त मामलों और ऐसे मामलों, जिनमें दो पक्षों के मध्य संव्यवहार किए गए हों, विनिर्धारित किए जाएंगे और मुसलमानों के मामलों में उन पर लागू होने वाली विधियों और रूढ़ियों को ध्यान में रखते हुए विनिर्धारित किए जाएंगे और जहां तक राष्ट्र का मामला है, राष्ट्र

की विधियों और रूढ़ियों द्वारा विनिर्धारित किए जाएंगे और ऐसे मामलों जिनमें दोनों पक्षों में से एक पक्ष मुस्लिम है या राष्ट्र है, प्रतिवादी पर लागू होने वाली विधियों और रूढ़ियों द्वारा विनिर्धारित किए जाएंगे ।" वारेन हेस्टिंग द्वारा न्याय प्रशासन के लिए प्रारूपित योजना को दो मुख्य लक्षणों द्वारा चिह्नित किया गया – जिनमें से एक था अधीनस्थ न्यायालयों, सिविल और दांडिक दोनों को स्थापित किए जाने के द्वारा विकेंद्रीयकरण किया जाना था । अन्य लक्ष्ण हिंदुओं और मुसलमानों, दोनों को उनके घरेलू संबंधों के अधिक्षेत्र में उनकी अपनी व्यक्तिगत विधियों और रूढ़ियों का पालन किए जाने के बाबत छूट प्रदान करना था । हिंदुओं ने वर्ष 1850 तक हिंदू व्यक्तिगत विधि और मुस्लिम व्यक्तिगत विधि का अवलंब आस्था और विश्वास के मामले निर्णीत किए जाने के प्रयोजनार्थ लिया । ऐसे मामलों, जिनमें विधि के सटीक उपबंध निश्चित नहीं थे, न्यायाधीश इस बाबत दोहरे आश्वासन की अपेक्षा करते थे कि प्रत्येक मामले में उनके विनिश्चय न्याय की आवश्यकता के सामंजस्य में हों । उन्होंने इस प्रयोजन को ध्यान में रखते हुए 'न्याय, समता और सद्विवेक' का आश्रय लिया । **संकल्पना और इंग्लिश विधि का विलय** – भारतीय विधिक प्रणाली में 'न्याय, समता और सद्विवेक' को प्रस्तावित किए जाने के साथ-साथ क्रमिक रूप से एक अन्य समानांतर विकास हुआ – इस शब्द की व्यापक रूप से मजबूती, जिसने समय के साथ-साथ विधि की विभिन्न प्रणालियों को समानता के साथ निर्दिष्ट किए जाने की अनुज्ञा प्रदान की, के बावजूद यह उपधारणा भी उद्भूत हुई कि 'न्याय, समता और सद्विवेक' शब्द इंग्लिश विधि के पर्याय हैं । ईस्ट इंडिया कंपनी में शक्तियों के विस्तार के साथ ही न्याय प्रशासन की शक्ति भी निहित हो गई । श्री एम. सी. सीतलवाड ने लिखा है – "चूंकि कंपनी के राज्यक्षेत्र निपटारों और विजय के साथ धीरे-धीरे विस्तारित होते गए, इसलिए प्रिवी कौंसिल भारतीय न्यायालयों द्वारा पारित विनिश्चयों से उद्भूत होने वाली अपीलों पर विचार के प्रयोजनार्थ उच्चतम न्यायालय के रूप में इंग्लिश न्यायशास्त्र के आधारी सिद्धांतों के उपयोजन में संपूर्ण देश में विनिश्चयों के नियम के रूप में बढ़ता हुआ प्रभाव बन गई । यह नैसर्गिक था और शायद अपरिहार्य भी कि प्रख्यात इंग्लिश न्यायाधीश, जो अधिकरणों की अध्यक्षता कर रहे थे, को ऐसे समस्त मामलों, जो उनके समक्ष उपस्थित हुए, जिनमें भारतीय विनियमों या कानूनों में समाविष्ट उपबंधों के आधार पर समस्याओं के हल के लिए लागू होने योग्य उपबंध समाविष्ट नहीं थे, का हल निकालने के प्रयास उस अध्ययन, जिसके आधार पर उनकी शिक्षा हुई थी और उन नियमों और

सिद्धांतों, जिनके वे अपने जीवन की लंबी अवधि के दौरान अभ्यस्त थे, पर आधारित होकर करने चाहिए थे । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत में प्राचीनकाल से इस अधिकरण (प्रिवी कौंसिल) के समक्ष फाइल होने वाली अपीलों में पारित विनिश्चय भारतीय न्यायशास्त्र के निकाय में सामान्य विधि और साम्या के सिद्धांतों को स्थिर और निरंतर रूप से लागू किए जाने में परिणित हुए ।" ईस्ट इंडिया कंपनी के क्रियाकलापों में वृद्धि के साथ भारतीय न्यायिक प्रणाली इंग्लिश विधि में प्रशिक्षित न्यायाधीशों और बैरिस्टरों के रंग में रंग गई । इसके कारणवश ब्रिटिश इंडिया के न्यायालयों के समक्ष दलीलों और साथ ही न्यायालयों द्वारा पारित निर्णयों, दोनों में इंग्लिश विधि के निदेश बढ़ गए । प्रख्यात अमेरिकन विद्वान् मार्क गैलेंटर ने इंग्लिश विधि के साथ इन (न्याय, समता और सद्विवेक) शब्दों का विलय किया है – "अंग्रेजों ने विधि के प्राधिकृत निकायों की खोज में प्राचीन पाठों और नवीनतम टीका-टिप्पणियों के संग्रह और अनुवाद किए । तथापि, भारतीय विधि आश्चर्यजनक रूप से भ्रामक साबित हुई ... इस बात को शीघ्र ही मान्यता प्रदान कर दी गई कि शास्त्र केवल विधि के अंग हैं और अनेक मामलों में भारतीय प्रथागत विधियों के कमतर औपचारिक निकायों द्वारा विनियमित हैं । किंतु प्रथागत विधियां भी पर्याप्त नहीं थीं ... अंततः इस प्रकार से महसूस किए गए अंतरालों को भरे जाने की आवश्यकता इंग्लिश विधि के आधार पर कानूनी रूप से संहिताकरण की ओर ले गई । किंतु इसी दौरान न्यायालय, जो 'न्याय, समता और सद्विवेक' के अनुसार मामलों को निर्णीत किए जाने के लिए सशक्त थे, ने शास्त्र और प्रथाओं के अंतरालों को 'विदेशी विधि के अनेकीकृत अंतराल' द्वारा भर दिया । यद्यपि, अन्य स्त्रोतों से इस अति उपयुक्त नियम को प्राप्त करने का प्रयास किया गया, फिर भी अधिकांश मामलों में 'इंग्लिश' न्यायाधीश यह उपधारणा करने के लिए आनत थे कि इंग्लिश विधि ही सर्वाधिक उपयुक्त विधि है ।" लागू विधि को व्यक्तिगत विधि के रूप में अभिकथित किया गया और साम्राज्यवादी सरकार ने आरंभिकतः पंडितों और मौलवियों के परिसाक्ष्य का अवलंब धार्मिक पाठों, जिनका प्रयोग न्याय-निर्णयन के लिए किया जाना था, के अनुवाद के प्रयोजनार्थ लिया । अंततः, इस प्रणाली को समाप्त कर दिया गया और सुसंगत धार्मिक पाठों के अंग्रेजी अनुवाद का अवलंब अधिक मात्रा में लिया जाने लगा । अंततः, साम्राज्यवादी सरकार ने इंग्लिश विधि में किसी अधिशेष कमी को पूर्ण करने की ईप्सा की । एक अन्य विवाद वर्ष 1833 में प्रिवी कौंसिल को भारत में निर्णीत होने वाले मामलों से उद्भूत होने वाली अपीलों के अंतिम

न्यायालय के रूप में स्थापित किए जाने के संबंध में था । फिर भी सत्यता में 'न्यास, समता और सद्विवेक' शब्द विधि की सदृश्य प्रणाली को व्यापक तौर पर निर्दिष्ट किए जाने के लिए प्राधिकृत करते हैं ताकि विधिक सिद्धांतों, जिनको न्यायालय के समक्ष विनिर्दिष्ट मामलों में लागू किया जा सकता है और न्यायसंगत परिणाम प्राप्त किया जा सकता है, के स्त्रोतों का पता लागया जा सके । मुख्य न्यायमूर्ति बर्नेस पीकॉक ने शुद्ध विधिक स्थिति का उल्लेख डेगनबारी डाबी बनाम ईशान चंदर सेन वाले मामले में किया, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया – "अब हम न्याय, समता और सद्विवेक के सिद्धांत को लागू करते हुए उन सिद्धांतों, जिनसे हमें मार्गदर्शन प्राप्त होना है, की खोज में कहां पर खड़े हैं ? हमें अन्य देशों, जहां न्याय और समता के सिद्धांत को उन सिद्धांतों पर लागू किया जाता है, जो समय के साथ-साथ विकसित हुए हैं, यह देखना होगा कि न्यायालय समान परिस्थितियों में किस प्रकार से कार्य करते हैं और अपनाए जाने वाले सिद्धांतों पर भी विचार करना होगा; और यदि हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि वे नियम, जिनको अधिकथित किया गया है, समता के सत्य आधारित सिद्धांतों के अनुसार हैं, तो हम उनका अनुसरण करके कोई दोषपूर्ण निर्णय पारित नहीं कर सकते ।" भारत में इस संकल्प के विकास की सत्य आधारित समझ को न्यायिक विनिश्चयों में अभिव्यक्ति प्रदान की गई है । गाथाराम मिस्त्री बनाम मूहिता कोचीन अत्तीह डोमुनी वाले मामले में वादी ने दाम्पत्य अधिकारों की पुनर्स्थापना के लिए वाद फाइल किया था । इस मामले में उप-आयुक्त ने अभिनिर्धारित किया कि यद्यपि समारोह आयोजित किया गया था, किंतु इस समारोह से औपचारिक रूप से विवाह गठित नहीं होता । इस बाबत कोई अन्य कारण दर्शित नहीं किए गए और इसलिए मामले को प्रतिप्रेषित (रिमांड) कर दिया गया । न्यायमूर्ति डब्ल्यू. मार्कबी ने इस निर्देश के अतिरिक्त दाम्पत्य संबंधों की पुनर्स्थापना की डिक्री की प्रवर्तनीयता के संबंध में एक अन्य मताभिव्यक्ति भी की – "किंतु निश्चित रूप से जब हम मार्गदर्शन के प्रयोजनार्थ इंग्लैंड की विधि पर विचार करते हैं, तो यहां पर <u>हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि विद्यमान विधि समता के समान सिद्धांतों के सामंजस्य में है और यही वह न्यायशास्त्र है, जिसको हमें अंगीकृत करना चाहिए और न कि ऐसे न्यायशास्त्र को जो अपवादिक हों</u> । जहां तक दाम्पत्य अधिकारों को प्रवर्तित किए जाने के विषय पर इंग्लिश विधि का संबंध है, मुझे किसी भी प्रकार की कोई शंका नहीं है ... इसलिए मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यदि हमको यह अभिनिर्धारित करना हो कि न्यायालय असीमित जुर्माने और

कारावास द्वारा दाम्पत्य कर्तव्यों के निरंतर रूप से निर्वहन को प्रवर्तित कर सकते थे, तो हमको इस देश की विधि को संपूर्ण सभ्य समाज की विधि के विपरीत रखना होगा, सिवाय इंग्लैंड के गिरिजाघर वाले कानूनों के ।" न्यायालय ने स्पष्ट किया कि यद्यपि ऐसे मामलों, जिनमें न्यायालय ने मार्गदर्शन के प्रयोजनार्थ इंग्लिश विधि का अवलंब लिया, तो उसको प्रथमत: इस बात की पुष्टि करनी थी कि क्या इंग्लिश विधि ने सामान्य समता और न्याय के सिद्धांतों की पुष्टि की । न्यायालय ने इस बात को मान्यता प्रदान की कि यद्यपि दाम्पत्य अधिकारों की मांग या असीमित जुर्माने या कारावास की पीड़ा इंग्लैंड में लागू स्थिति की पुष्टि करते हैं, किंतु ऐसे मामलों, जिनमें सभ्य विधिक व्यवस्था के शासी सिद्धांत यह उपदर्शित करते हैं कि वे न्याय, समता और सद्विवेक के विरुद्ध हैं, न्यायालय उसको अंगीकृत करने के लिए बाध्य नहीं है । राधा किशन बनाम राज कौर वाले मामले में एक व्यक्ति, जिसने अपनी जाति के बाहर की स्त्री से बच्चे उत्पन्न किए थे, को जाति बाहर मान लिया गया था । महिला ने उसकी मृत्यु पर उसकी संपत्ति अपने कब्जे में ले ली, किंतु उसने अपनी मृत्यु पर संपत्ति का कब्जा अपने बच्चों को दे दिया । उस व्यक्ति के भाइयों ने उसकी संपत्ति की प्राप्ति के लिए यह अभिवचन करते हुए वाद फाइल किया कि महिला और उसके अवैध बच्चों का संपत्ति पर कोई अधिकार नहीं है । न्यायालय ने इंग्लिश विधि को निर्दिष्ट किए बिना अभिनिर्धारित किया कि संपत्ति स्वअर्जित थी और इसलिए न्याय, समता और सद्विवेक के सिद्धांत की यह अपेक्षा है कि वाद को खारिज कर दिया । इलाहाबाद उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति एडगर और न्यायमूर्ति नॉक्स ने एक साथ निर्णय पारित करते हुए यह अभिनिर्धारित किया – "हम हमारे समक्ष उद्धृत की गई निर्णयज विधियों और पाठ्यों के आधार पर इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकते कि इस मामले में हमारा मार्गदर्शन कोई निश्चित सिद्धांत करेगा । हमको इन परिस्थितियों के अंतर्गत न्याय और सद्विवेक के सिद्धांतों के अनुसार कार्य करना चाहिए और विक्रेता के भाइयों के लाभार्थ खुम्मन द्वारा अर्जित संपत्ति के कब्जे से उसके पुत्रों, उनकी माता और मृतक पुत्र की विधवा को बेदखल करने से इनकार कर देना चाहिए ...।" इस मामले में इंग्लिश विधि को सुस्पष्ट रूप से निर्दिष्ट नहीं किया गया बल्कि उन सामान्य सिद्धांतों को निर्दिष्ट किया गया, जो 'न्याय, समता और सद्विवेक' की संकल्पना को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं । प्रिवी कौंसिल ने राजा किशन दत्त राम बनाम राजा मुमताज अली खान वाले मामले में एक बंधककर्ता, जिसकी संपत्ति की कीमत कब्जेदार बंधकगृहीता

द्वारा कतिपय विलयनों के कारण बढ़ोतरी हो गई थी, के उन्मोचन के अधिकारों पर विचार किया । न्यायमूर्ति जे. डब्ल्यू. कोलविले ने मताभिव्यक्ति की – ... यदि उन सिद्धांतों, जिनका अवलंब लिया गया, इंग्लिश विधि के तकनीकी नियमों पर आधारित थे, तो वे समता और सद्विवेक के व्यापक सिद्धांतों के आधार पर निश्चित रूप से किसी ऐसे मामले, जैसाकि वर्तमान मामला है, के विनिर्धारण के प्रयोजनार्थ लागू नहीं होंगे । यह सिद्धांत केवल तब लागू होगें, जब वे सामान्य समता और सद्विवेक से सम्मत हो और पुन: यदि वे सिद्धांत उस लक्षण को धारण करते हों, तो उनके उपयोजन की सीमाओं पर इंग्लिश विनिश्चयों के अनुक्रम द्वारा कठोरतापूर्वक परिभाषित शब्दों के आधार पर विचार नहीं किया जा सकता, यद्यपि वे विनिश्चय नि:संदेह रूप से मूल्यवान हैं, जहां तक वे सामान्य समता के सिद्धांत को मान्यता प्रदान करने वाले हैं और यह दर्शित करते हैं कि इस सिद्धांत को इस देश के न्यायालयों द्वारा किस प्रकार से लागू किया गया है ।" इस स्थिति का समर्थन नहीं किया जा सकता कि 'न्याय, समता और सद्विवेक' शब्द इंग्लिश विधि को उपदर्शित करते हैं, यह सूत्र 'इंग्लिश विधि से प्रस्थान की युक्ति था, न कि उसके उपयोग की' । यह सत्य है कि भारत में इस सूत्र के उपयोजन से भारतीय विधि प्रणाली में वैश्विककरण, सांस्कृतिक-संक्रमण, ज्ञानमीमांसीय समुदाय को दृष्टि में रखते हुए इंग्लिश विधि के प्रसार की घोषणा हुई । इस सूत्र ने राष्ट्रीय सीमाओं के परे विधि की प्रणालियों की समानता द्वारा निदेश प्राधिकृत किए । यद्यपि, इस शब्द की रोमन उत्पत्ति के कारण यह शब्द उन स्थितियों में व्यापक उपयोजन के लिए तात्पर्यित है, जहां ऐसा कोई अभिव्यक्त उपबंध विद्यमान हो, जो मामले को शासित करने वाला हो, चूंकि यह शब्द भारत में विकसित हुआ, इस शब्द का विकास यह उपदर्शित करता है कि इसका उपयोजन केवल उन मामलों में होगा, जिनमें निश्चायक विधि और प्रथागत विधि मौन हैं या अनुचित या बेतुके परिणामों की ओर ले जाने वाली है जिससे न्याय, समता और सद्विवेक के सिद्धांतों को लागू किया जा सके । **वर्तमान परिदृश्य में न्याय, समता और सद्विवेक** – हिंदू संहिता और 1937 के शरीयत अधिनियम में प्रथाओं के विकासशील संहिताकरण को सम्मिलित करते हुए कानून और न्यायिक विनिश्चयों के विकास के साथ न्याय, समता और सद्विवेक पर अवलंब की आवश्यकता क्रमश: घटती गई । वर्तमान में न्याय, समता और सद्विवेक के उपयोजन का दायरा घट गया है (कम से कम सैद्धांतिक रूप से) जबकि किसी कानून के अंतर्गत स्थापित सैद्धांतिक स्थिति तथ्यात्मक स्थितियों या ऐसी

स्थितियों को आच्छादित करने वाली होती है, जिनमें प्रश्नगत व्यक्तिगत विधि प्रणाली को रेखांकित करने वाले सिद्धांतों को निश्चित रूप से अभिनिश्चित किया जा सकता हो । किंतु फिर भी किसी ऐसे सिद्धांत को अपनाया जाना न्यायिक शिल्प को नुकसान पहुंचाने वाला होगा, जो न्याय, समता और सद्विवेक के उपयोजन को कानून द्वारा शासित विधि के क्षेत्र में अपवर्जित करता हो । विधि क्रमिक रूप से तब विकसित होती है, जब न्यायाधीश उन पर निष्पक्ष निष्कर्ष पर पहुंचने के प्रयोजनार्थ कानून के सामंजस्य में कार्य करते हैं । ऐसे मामलों जिनमें पक्षों के अधिकार किसी विशिष्ट व्यक्तिगत विधि द्वारा शासित नहीं होते या ऐसे मामलों जिनमें व्यक्तिगत विधि मौन होती है या किसी न्यायालय द्वारा अभिनिश्चित किए जाने के योग्य नहीं होती, ऐसे मामलों जिनमें संहिता में कोई कमी होती है या ऐसे मामलों जिनमें विधि का स्रोत विफल हो जाता है या उसको पूर्णता प्रदान किया जाना अपेक्षित हो जाता है तो न्याय, समता और सद्विवेक को युक्तियुक्त रूप से निर्दिष्ट किया जा सकता है । स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय न्यायालयों ने इस संकल्पना (न्याय, समता और सद्विवेक) का बारंबार प्रयोग किया, किंतु 'न्याय, समता और सद्विवेक' शब्दों को व्यापक दृष्टिकोण में अंगीकृत किया गया । इस बाबत इस न्यायालय द्वारा दो मामलों में पारित निर्णय निदेशात्मक हैं । नामदेव लोकमन लोधी बनाम नर्मदाबाई वाले मामले में इस न्यायालय के समक्ष यह दलील दी गई कि संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 111(छ) में वर्ष 1929 में किए गए संशोधन, जिनके द्वारा पट्टादाता द्वारा पट्टे के विनिर्धारण के प्रयोजनार्थ लिखित सूचना दिए जाने की अपेक्षा की गई, न्याय, समता और सद्विवेक के सिद्धांत का अनुपालन किया गया । न्यायमूर्ति मेहरचंद महाजन, जो तत्समय माननीय न्यायाधीश थे, ने इस न्यायालय के दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ की तरफ से निर्णय पारित करते हुए यह अभिनिर्धारित किया – अत: विचारार्थ जो मुख्य बिंदु उद्भूत होता है, यह है कि क्या वर्ष 1929 में संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 111 की उपधारा (छ) में सम्मिलित किए गए विशिष्ट उपबंध कुछ और नहीं बल्कि न्याय, समता और सद्विवेक के सिद्धांत को मान्यता प्रदान करते हैं या क्या यह विधान मंडल द्वारा इस धारा में सम्मिलित किया गया मात्र एक प्रक्रियात्मक और तकनीकी नियम है और समता के किसी सुस्थापित सिद्धांत पर आधारित नहीं है । उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया और जैसाकि हम न्यायत: समझते हैं, धारा 111 की उपधारा (छ) के अधीन सूचना दिए जाने के संबंध में सम्मिलित किया गया यह उपबंध न्याय,

समता और सद्विवेक के सिद्धांत पर आधारित नहीं था । ... इंग्लैंड में किसी संपत्ति के स्वामी के लिए किराए के असंदाय के मामले में यह आवश्यक नहीं है कि वह किसी उन्मोचन के परिणाम के पूर्व सूचना दे । अत: यह नहीं कहा जा सकता कि धारा 111 की उपधारा (छ) में जो अधिनियमिति की गई है, ऐसा मामला है, जो इंग्लैंड में आज भी न्याय, समता और सद्विवेक के मामले के रूप में विचारित किया जाता है ।" इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि देयों के असंदाय के बाबत पट्टादाता द्वारा जारी की जाने वाली सूचना की अपेक्षा प्रक्रिया नहीं है और किसी कानूनी आज्ञा की अनुपस्थिति में ऐसी प्रक्रिया को 'न्याय, समता और सद्विवेक' के बहाने सम्मिलित नहीं किया जा सकता । एक दृष्टि में ऐसा प्रतीत होता है कि न्यायपीठ ने न्याय, समता और सद्विवेक को इंग्लिश विधि में उल्लिखित स्थिति के साथ मिश्रित कर दिया । यह सही स्थिति नहीं है । इस न्यायालय द्वारा इस मामले में व्यक्त किए गए विचारों का पुनर्निर्वचन मुरारी लाल बनाम देवकरण, जो अपीलार्थी के विरुद्ध प्रत्यर्थी द्वारा उन्मोचन के प्रयोजनार्थ फाइल किए गए वाद में उद्भूत हुआ था, वाले मामले में किया गया । प्रत्यर्थी ने दलील दी कि यद्यपि उसके द्वारा कतिपय संपत्तियों के बंधक द्वारा प्राप्त किए गए ऋण के संदाय की अवधि व्यतीत हो चुकी थी, फिर भी उन्मोचन का अधिकार उसमें निहित रहा । अपीलार्थी द्वारा इसका विरोध यह दलील देते हुए किया गया कि वह अनुध्यात पुनर्संदाय की अवधि के व्यतीत हो जाने पर बंधक संपत्ति का एकमात्र स्वामी बन गया था । यद्यपि संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 60 में उन्मोचन पर समता आधारित सिद्धांतों को सम्मिलित किया गया है, फिर भी वे सिद्धांत अलवर वाले मामले, जिसमें विवाद उद्भूत हुआ, पर लागू नहीं होते । इस न्यायालय की संविधान पीठ ने अभिनिर्धारित किया कि बंधक अभिलेख में एक उपबंध समाविष्ट है, जिसके परिणामस्वरूप उन्मोचन की साम्या पर रुकावट उत्पन्न हो गई है । मुख्य न्यायमूर्ति पी. बी. गजेन्द्र गडकर ने न्यायपीठ की तरफ से निर्णय पारित करते हुए यह अभिनिर्धारित किया – इसलिए वर्तमान अपील में जो प्रश्न विचारार्थ उद्भूत होता है, यह है – क्या वर्तमान मामले में बंधककर्ताओं के उन्मोचन के समता आधारित अधिकार को सुनिश्चित किए जाने के प्रयोजनार्थ समता आधारित सिद्धांत, बंधक विलेख में ऐसे अनुध्यापन द्वारा समता आधारित किसी अधिकार पर सृजित रुकावट के बावजूद, लागू होते हैं ? यह प्रश्न इसी स्वरूप में उद्भूत होता है क्योंकि संपत्ति अंतरण अधिनियम तत्समय अलवर में लागू नहीं होता था, जब बंधक विलेख निष्पादित किया गया था

और न ही उस समय लागू होता था जब 15 वर्षों की अनुध्यात अवधि व्यतीत हुई । इस दलील पर विचार करते हुए यह सह सुसंगत होगा कि इस बात पर विचार किया जाए कि भारत में न्यायालय परंपरागत रूप से समता के सिद्धांतों, जो बंधक विलेखों के अनुध्यापनों को प्रवर्तित किए जाने पर रोक लगाते हैं, को निरंतर रूप से प्रवर्तित करते रहे हैं और जो असुसंगत रूप से बंधककर्ता के उन्मोचन किए जाने के अधिकारों को निषिद्ध या प्रतिबंधित करते हैं ... वास्तव में नामदेव लोकमन लोधी बनाम नर्मदा बाई, [1953] एस. सी. आर. 1009 वाले मामले में इस न्यायालय ने सुस्पष्ट रूप से मत व्यक्त किया कि यह स्वयं सिद्ध होगा कि न्यायालय न्याय, समता और सद्विवेक के सिद्धांत को उन संव्यवहारों पर लागू करें जो उनके समक्ष विनिर्धारण के लिए उपस्थित हों यद्यपि संपत्ति अंतरण अधिनियम के कानूनी उपबंध उन संव्यवहारों पर लागू न होते हों । सारत: ये मताभिव्यक्तियां जरूरतमंद बंधककर्ताओं पर बंधकगृहीताओं द्वारा, जब बंधक विलेख निष्पादित किए जाते हैं, दमनकारी, अन्यायपूर्ण और अयुक्तियुक्त ढंग से अधिरोपित किए गए निर्बंधनों पर विचार करते हुए उसी परंपरागत न्यायिक दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करते हैं । ... फिर भी हम यह समझते हैं कि यह उपधारणा करना युक्तिसंगत होगा कि अलवर राज्य में स्थापित सिविल न्यायालय संपूर्ण देश में स्थापित सिविल न्यायालयों के समान हैं, जिनसे ऐसे मामलों, जिनमें उनके समक्ष उठाए गए प्रश्नों पर विचार किए जाने के प्रयोजनार्थ कोई विनिर्दिष्ट कानूनी उपबंध उपलब्ध नहीं है, तो न्याय और समता का प्रशासन किए जाने की अपेक्षा की जाती है । ... इस बिंदु पर हम अभिलेख पर किसी सामग्री की अनुपस्थिति में सरयू प्रसाद की इन दलीलों को स्वीकार कर पाने में अनिच्छुक हैं कि न्याय और समता के सिद्धांत को वर्तमान विवाद पर विचार किए जाने के प्रयोजनार्थ असुसंगत प्रतीत किया जाना चाहिए । अत: यह स्पष्ट है कि सिविल न्यायालयों द्वारा न्याय, समता और सद्विवेक के साम्यापूर्ण सिद्धांत को राजस्थान के सारभूत भाग में बंधकों पर विचार किए जाने के प्रयोजनार्थ निरंतर रूप से लागू किया गया और इससे प्रत्यर्थी की इस दलील को बल मिलता है कि इस बात को अलवर में भी मान्यता प्रदान की गई कि यदि किसी बंधक विलेख में कोई ऐसा अनुध्यापन समाविष्ट है, जो उन्मोचन न्यायालयों द्वारा बंधककर्ता के समता आधारित अधिकारों को अयुक्तियुक्त रूप से निर्बंधित करता हो, को उस अनुध्यापन का अनदेखा किए जाने और बंधककर्ता के उन्मोचन के अधिकार को प्रवर्तित किए जाने के लिए सशक्त किया गया, निश्चित रूप से इस बाबत

परिसीमा की सामान्य विधि के अध्यधीन रहते हुए । अत: हम इस बाबत संतुष्ट हैं कि राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए इस निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए कि सुसंगत अनुध्यापन, जिसका अपीलार्थी ने अवलंब लिया, को प्रवर्तित किया जाना चाहिए, यद्यपि यह अनुध्यापन उन्मोचन की सक्षमता पर रुकावट सृजित करता है, के आधार पर अपीलार्थी के पक्ष में हमारे द्वारा मध्यक्षेप को न्यायसंगत ठहराए जाने का कोई मामला नहीं बनता ।" न्यायालय ने उच्च न्यायालयों द्वारा दिए गए विनिश्चयों, जिनके द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 60 में न्यायसंगत और साम्यापूर्ण सिद्धांतों को सम्मिलित किया गया था, को उद्धृत किया । न्यायपीठ ने इस दृष्टि से न्याय, समता और सद्विवेक द्वारा सम्मिलित किए गए सिद्धांतों का व्यापक दृष्टिकोण अंगीकृत किया । न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि नामदेव वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए विचार असुसंगत और दमनकारी संविदात्मक निबंधनों के अनुरूप स्थिति के समरूप हैं और इस बात को ध्यान में रखते हुए न्याय, समता और सद्विवेक इंग्लिश विधि के केवल उस स्थिति में अनुरूप हैं, जिसमें इंग्लिश विधि स्वयमेव न्याय, समता और सद्विवेक द्वारा समर्थित सिद्धांतों के पुष्टिकरण में हो । यहां पर समस्त तथ्यों को एक धागे में बांधने वाला सिद्धांत यह है कि न्याय, समता और सद्विवेक न्यायालयों को अनुपूरक भूमिका का निर्वाह करने के लिए सक्षम बनाते हैं ताकि वे परिस्थितियों, जो उनके समक्ष उपस्थित होती हैं, की उपयुक्तता के अनुसार न्यायसंगत परिणाम सुनिश्चित किए जाने के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए अनुतोष प्रदान कर सके । ऐसी परिस्थितियों, जिनमें न्यायालयों के लिए उनके समक्ष उपस्थित विवाद के न्यायनिर्णयन हेतु विद्यमान कानूनी अवसंरचना अपर्याप्त हो या कोई भी स्थिरीकृत न्यायिक सिद्धांत या प्रथा उपलब्ध न हो, तो न्यायालय मामले के प्रभावपूर्ण और निष्पक्षतापूर्ण निस्तारण के लिए न्याय, समता और सद्विवेक के सिद्धांतों का आश्रय ले सकते हैं । न्यायालय विधिक अधिकारों के बाबत किसी विवाद को निर्णीत करने के अपने दायित्व को मात्र इस कारणवश कि किसी मामले के तथ्य विद्यमान विधि में उल्लिखित निबंधनों के अनुरूप नहीं है, त्याग नहीं सकता । भारत में न्यायालयों ने विधिक विवादों की इस आधारी सत्यता को ध्यान में रखते हुए विधि में निबंधनों की अपूर्णता या अनुपयोगिता को पूर्ण किए जाने के प्रयोजनार्थ लंबी अवधि से न्याय, समता और सद्विवेक के सिद्धांतों को लागू किया है, ताकि पक्षों के मध्य न्याय किया जा सके । समता न्याय के आवश्यक संघटक होने के नाते

विवादों के न्यायसंगत न्यायनिर्णयन में अंतिम कार्रवाई सृजित करती है । विद्वानों ने अनेक विधिक प्रणालियों से विधिक सिद्धांतों का आश्रय लेने के पश्चात् इस विषय पर अनेक पुस्तकें लिखीं और यदि बार और बेंच के अनुभव के आधार पर विनिश्चय नहीं हो पाता या किसी न्यायसंगत निर्णय पर नहीं पहुंचा जा सकता, तो न्यायाधीश पक्षों के मध्य यह सुनिश्चित किए जाने के प्रयोजनार्थ कि न्याय सुलभ हो, समता के सिद्धांतों को लागू कर सकता है । ये सिद्धांत बहुधा अनुतोषों, जो विधिक रूप से मान्य ठहराए जाने योग्य हों और न्यायसंगत भी, को सृजित किए जाने के प्रयोजनार्थ न्यायालय की शक्ति का अंग रहा है । सिद्धांत के रूप में न्याय, समता और सद्विवेक की संकल्पना का उद्देश्य निष्पक्ष परिणाम को सुनिश्चित करना और इस सिद्धांत को भारत के संविधान के अनुच्छेद 142 में भी अभिव्यक्ति प्राप्त होती है, जो इस प्रकार है – (1) उच्चतम न्यायालय अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए ऐसी डिक्री पारित कर सकेगा या ऐसा आदेश कर सकेगा, जो उसके समक्ष लंबित किसी वाद या विषय में पूर्ण न्याय करने के लिए आवश्यक हो और इस प्रकार पारित डिक्री या किया गया आदेश भारत के राज्य क्षेत्र में सर्वत्र ऐसी रीति से, जो संसद् द्वारा बनाई गई हो, किसी विधि द्वारा या उसके अधीन विहित की जाए और जब तक इस निमित इस प्रकार उपबंध नहीं किया जाता है, तब तक ऐसी रीति से जो राष्ट्रपति आदेश द्वारा विहित करे प्रवर्तनीय होगा ।" 'पूर्ण न्याय करने के लिए आवश्यक हो' व्यापक आयाम का वाक्यांश है और अपने भीतर समता की शक्ति को समाहित करता है, जिसको तब योजित किया जाता है, जब कोई न्यायसंगत निष्कर्ष प्राप्त किए जाने के प्रयोजनार्थ विधि का कड़ाईपूर्वक पालन अपर्याप्त हो गया हो । न्याय की मांग के लिए न केवल निश्चायक विधि को ध्यान में रखते हुए बल्कि निश्चायक विधि की मौनता को भी ध्यान में रखते हुए अत्यंत करीब से ध्यान में रखा जाना अपेक्षित होता है ताकि इसके अंतरालों के मध्य किसी हल को खोजा जा सके, जो साम्यापूर्ण और निष्पक्ष, दोनों हो । न्यायालयों के समक्ष विधि उद्यम किसी मामले के विनिर्दिष्ट तथ्यों के बाबत सामान्य शब्दांकित विधियों के उपयोजन पर आधारित होता है । मानवीय इतिहास की जटिलताएं और क्रियाकलाप अनिवार्यत: विलक्षण मुकदमेबाजी की ओर ले जाने वाली होती है – जैसेकि इस मामले में, जिसमें धर्म, इतिहास और विधि अंतर्वलित हैं – जिसमें विधि अपनी सामान्य प्रकृति द्वारा मामले में निपटारे के प्रयोजनार्थ अपर्याप्त हैं । ऐसे मामलों, जिनमें निश्चायक विधि स्पष्ट होती है, अनुच्छेद 142 के अधीन शक्ति का

जानबूझकर व्यापक आयाम न्यायालय को ऐसा आदेश पारित करने के लिए शक्ति प्रदान करता है, जो न्याय के साथ समाप्त होता है । चूंकि न्याय ही वह आधार है, जो किसी विधिक उद्यम के प्रयोजन को सार्थक करता है और जिसके आधार पर विधि के नियम की विधिसम्मत्ता टिकी होती है । संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन न्यायसंगत शक्ति सामान्य और विनिर्दिष्ट विधियों के मध्य चारों तरफ से आने वाले मार्गों को एक स्थान पर ले आती है । न्यायालय स्वयं को ऐसी स्थिति में पाते हैं, जिनमें विधि की मौनता पर उसके धारदार शब्दों के अर्थों या कठोर अर्थों के साथ विचार किए जाने की आवश्यकता होती है और जिसको विधि की दृष्टि में विनम्रता प्रदान किए जाने की भी आवश्यकता होती है ताकि विधि के मानवतावादी और सहानुभूतिपूर्ण चेहरे को बनाए रखा जा सके । इन सभी बातों के अतिरिक्त विधि का विनिर्धारण और निर्वचन किए जाने की आवश्यकता होती है और उसे इस मामले में लागू किया जाना है ताकि भारत अनेक धर्मों और बहुलतावादी मूल्यों के लिए गृह और आश्रय के रूप में अपनी प्रतिष्ठा को बनाए रख सके । यह भारत की बहुभाषीय और बहुसांस्कृतिक स्वरों के कोलाहल में है, जो मिलीजुली संस्कृति या क्षेत्रों और धर्मों पर आधारित होता है और साथ ही भारतीय नागरिक ऐसा व्यक्ति है और भारत ऐसा राष्ट्र है, जिसको अपने भीतर शांति का भाव महसूस करना चाहिए । यह एक न्यायसंगत समाज के लिए इस अंततोगत्वा संतुलन को बनाए रखने के लिए आवश्यक है कि हम न्याय, समता और सद्विवेक के सिद्धांत को लागू करें । यही वह स्थितियां हैं, जिनमें न्यायालय ऐसा आदेश पारित करने के द्वारा, जो पक्षों के मध्य संपूर्ण न्याय सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक हो, न्यायसंगत निर्णय सुनिश्चित करने के लिए सशक्त हैं । यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन बनाम भारत संघ वाले मामले में इस न्यायालय की तरफ से निर्णय पारित करते हुए मुख्य न्यायमूर्ति रंगनाथ मिश्र ने अनुच्छेद 142 के अधीन प्रदत्त शक्तियों को निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट किया – ... सामान्य विधियों में समाविष्ट प्रतिषेध या परिसीमाएं या उपबंध स्वयमेव ही अनुच्छेद 142 के अधीन प्रदत्त संवैधानिक शक्तियों के आधार पर प्रतिषेध या परिसीमा के रूप में कार्य नहीं कर सकते ... किंतु हम यह समझते हैं कि ऐसे प्रतिषेधों को लोक नीति के कुछ आधारी और सामान्य विवाद्यकों पर आधारित दर्शित किया जाना चाहिए और किसी विशिष्ट कानूनी योजना या पद्धति के आनुषांगिक नहीं । पुन: यह कहना दोषपूर्ण होगा कि अनुच्छेद 142 के अधीन प्रदत्त शक्तियां अभिव्यक्त कानूनी प्रतिषेधों के अध्यधीन होती हैं ।

इससे हमको यह विचार संप्रेषित होता है कि कानूनी उपबंध किसी संवैधानिक उपबंध पर अध्यारोही प्रभाव रखते हैं । निश्चित रूप से इस विचार को अभिव्यक्त करने का उचित तरीका यह है कि सर्वोच्च न्यायालय अनुच्छेद 142 के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करने और साथ ही किसी वादकारण या मामले में 'पूर्ण न्याय' प्रदान किए जाने की आवश्यकता का निर्धारण करने में लोक नीति के कुछ आधारी सिद्धांतों पर आधारित किसी सारभूत कानूनी उपबंध में अभिव्यक्त प्रतिषेधों का आश्रय लेगा और तद्नुसार अपनी शक्तियों और विवेकाधिकार का प्रयोग करेगा । यह प्रतिपादना अनुच्छेद 142 के अधीन न्यायालय की शक्ति से संबंधित नहीं है बल्कि केवल इस बात से संबंधित है कि किसी वादकारण या मामले और शक्ति के प्रयोग के औचित्य के अंतिम विश्लेषण के संबंध में 'पूर्ण न्याय' क्या है और क्या नहीं है । अधिकारिता की कमी या उसकी शून्यता का प्रश्न उद्भूत नहीं होता ।" ऐसे मामले, जिनको अनमनीयता की स्थिति पर विचार किए जाने के प्रयोजनार्थ अपर्याप्त समझा जाता है, तो पूर्ण न्याय प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ इस न्यायालय की व्यापक शक्ति अंतिम अपील के न्यायालय की है, जो साम्या का अंतर्निहित विशिष्ट लक्षण है कि विधि को इस प्रकार से प्रारूपित किया जाए कि इस बाबत संरक्षण प्रदान किया जा सके और यह सुनिश्चित किया जा सके कि न्यायालय ऐसा अनुतोष प्रदान करने के लिए सशक्त है, जो कारण और न्याय दोनों के साथ समान रूप से व्यवहार करता हो । इसी प्रकार से सुप्रीम कोर्ट बार एसोसिएशन बनाम भारत संघ वाले मामले में न्यायमूर्ति ए. एस. आनंद ने न्यायालय की तरफ से निर्णय पारित करते हुए यह अभिनिर्धारित किया – तथापि, यह स्मरण रखे जाने की आवश्यकता है कि अनुच्छेद 142 द्वारा न्यायालय को प्रदत्त शक्तियों की प्रकृति क्यूरेटिव (न्याय प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ सुनवाई का अंतिम असाधारण अवसर) होने के कारण ऐसी शक्तियों के रूप में विचारित नहीं किया जा सकता, जो न्यायालय को उसके समक्ष लंबित किसी मामले पर विचार करते समय किसी पक्ष के सारभूत अधिकारों का अनदेखा करने के लिए प्राधिकृत करती हों ... यद्यपि अनुच्छेद 142 में समाविष्ट व्यापक शक्तियों का प्रयोग किसी ऐसे नए पक्षकथन, जो पहले से विद्यमान नहीं था, के निर्माण के प्रयोजनार्थ नहीं किया जा सकता, साथ ही अभिव्यक्त कानूनी उपबंधों का अनदेखा करते हुए किसी ऐसे विषय पर विचार नहीं किया जाना चाहिए और तद्द्वारा परोक्ष रूप से किसी ऐसे अनुतोष को अभिप्राप्त नहीं किया जाना चाहिए, जिसको प्रत्यक्षत: अभिप्राप्त नहीं किया

जा सकता ।" न्यायालय के विचार में किसी डिक्री या आदेश को पारित किए जाने के प्रयोजनार्थ असाधारण संवैधानिक शक्ति संपूर्ण न्याय प्रदान किए जाने के लिए आवश्यक होती है और इसमें यह विचार भी सम्मिलित होता है कि न्यायालय को आवश्यक रूप से ऐसे निर्णय पारित करने के लिए सशक्त होना चाहिए, जिनसे न्यायसंगत परिणाम सुनिश्चित हो सकें । जब किसी न्यायालय के समक्ष मुश्किल प्रश्नों से परिपूर्ण मामले प्रस्तुत होते हैं, तो वे विधि के ऐसे निर्वचन पर आधारित होते हैं, जो सर्वोत्तम रूप से मामले की परिस्थितियों के लिए उपयुक्त होते हैं और विद्यमान विधिक परिदृश्य – जैसेकि संविधान, कानून, नियम, विनियम, प्रथाएं और सामान्य विधि में न्यायसंगत होते हैं । ऐसे मामलों, जिनमें विधि के अनन्य नियम आधारित सिद्धांत न्यायिक प्रणाली के कामकाज को स्पष्ट करने या कोई ऐसा अनुतोष, जो पूर्ण न्याय सुनिश्चित करता हो, को सृजित करने में अपर्याप्त साबित होते हैं, तो यह आवश्यक है कि साम्यापूर्ण स्तरमानों के सिद्धांतों पर आधारित किसी प्रतिमान को लागू किया जाए । तथापि, अनुच्छेद 142 के अधीन शक्तियां असीमित होती हैं । यह अनुच्छेद न्यायालय को उसके समक्ष उपस्थित मामले में संपूर्ण न्याय सुनिश्चित करने के लिए प्राधिकृत करती हैं । अनुच्छेद 142 में न्याय, साम्या और सद्विवेक की धारणा और साथ ही न्यायालय द्वारा संपूर्ण न्याय प्रदान किए जाने की अनुपूरक शक्ति सम्मिलित होती है । (पैरा 660 से 676)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2019]	2019 एस. सी. सी. ऑनलाइन एस. सी. 1098 : **चेन्नादी जलपथी रेड्डी** बनाम **बद्दम प्रतापा रेड्डी** ;	493
[2019]	2019 एस. सी. सी. ऑनलाइन 953 : **आलियाथम्मुदा बीथाथिय्याप्पुरा पोकोया** बनाम **पट्टक्कल चेरियाकोया** ;	591
[2019]	(2019) 9 एस. सी. सी. 729 : **रविन्दर कौर ग्रेवाल** बनाम **मनजीत कौर** ;	754
[2018]	2018 एस. सी. सी. ऑनलाइन एस. सी. 2196 : **शांति** बनाम **टी. डी. विश्वनाथन** ;	269
[2017]	(2017) 5 एस. सी. सी. 817 : **एस. पी. एस. राठौर** बनाम **सी. बी. आई.** ;	493

[2016] (2016) 4 एस. सी. सी. 571 :
प्रेम सागर मनोचा बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली)** ; 487

[2015] (2015) 7 एस. सी. सी. 601 :
राजस्थान हाऊसिंग बोर्ड बनाम **न्यू पिंक सिटी निर्माण सहकारी समिति लिमिटेड** ; 132

[2013] (2013) 9 एस. सी. सी. 319 :
आंध्र प्रदेश राज्य बनाम **स्टार बोन मिल एंड फर्टिलाइजर कंपनी** ; 785

[2009] (2009) 4 सी. टी. सी. 801 :
श्री सभानायगर टेंम्पल, चिदम्बरम बनाम **तमिलनाडु राज्य** ; 176,181

[2008] (2008) 8 एस. सी. सी. 648 :
भारत संघ बनाम **तरसेन सिंह** ; 263

[2008] (2008) 9 एस. सी. सी. 648 :
दुर्गेश शर्मा बनाम **जयश्री** ; 441

[2008] (2008) 17 एस. सी. सी. 448 :
पुंडरीक जालान पाटिल बनाम **एक्जीक्यूटिव इंजीनियर, जलगांव मीडियम प्रोजेक्ट** ; 410

[2007] (2007) 8 एस. सी. सी. 600 :
शिव कुमार शर्मा बनाम **संतोष कुमारी** ; 793

[2007] (2007) 14 एस. सी. सी. 308 :
अन्नाकिल्ली बनाम **ए. वेदन्यागम** ; 752

[2007] (2007) 14 एस. सी. सी. 183 :
सी. नटराजन बनाम **अशीम बाई** ; 627

[2007] (2007) 6 एस. सी. सी. 186 :
सूरजभान बनाम **वित्त आयोग** ; 774

[2005] (2005) 1 एस. सी. सी. 457 : 130,132,
थायारअम्मल बनाम **कनकम्मल** ; 156,176

[2004] (2004) 10 एस. सी. सी. 779 :
कर्नाटक बोर्ड आफ वक्फ़ बनाम **भारत सरकार** ; 585,752

[2004] (2004) 8 एस. सी. सी. 724 :
चंडी प्रसाद बनाम **जगदीश प्रसाद** ; 269

[2004] (2004) 2 एस. सी. सी. 747 :
भारत संघ बनाम **वेस्ट कॉस्ट पेपर मिल्स लिमिटेड** ; 269

[2004] (2004) 7 एस. सी. सी. 541 :
रमइय्या बनाम **एन. नारायण रेड्डी** ; 254

[2004] (2004) 8 एस. सी. सी. 569 :
सम्सू सुहारा बीबी बनाम **जी. एलेक्स** ; 793

[2004] (2004) 10 एस. सी. सी. 65 :
अमरेन्द्र प्रताप सिंह बनाम **तेज बहादुर प्रजापति** ; 132

[2004] (2004) 1 एस. सी. सी. 551 :
श्रीमती वी. राजेश्वरी बनाम **टी. सी. सर्वणाबवा** ; 444

[2003] (2003) 10 एस. सी. सी. 578 :
के. एथिराजन बनाम **लक्ष्मी** ; 437,445

[2003] (2003) 7 एस. सी. सी. 546 :
गुरुवायूर देवस्वम् मैनेजिंग कमेटी बनाम **सी. के. राजन** ; 176,180

[2003] (2003) 3 एस. सी. सी. 472 :
चीफ कंज़रवेटर आफ फॉरेस्ट्स, आंध्र प्रदेश सरकार बनाम **कलक्टर** ; 785

[2002] (2002) 3 एस. सी. सी. 258 :
कोंडा लक्ष्मणा बाबूजी बनाम **आंध्र प्रदेश सरकार** ; 765

[2000] (2000) 6 एस. सी. सी. 540 :
ब्रजकिशोर जगदेव बनाम **लिंगराज सामंतरे** ; 766

[2000] (2000) 4 एस. सी. सी. 146 :
शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, अमृतसर बनाम **सोमनाथ दास** ; 88,130, 150,176

[1999] (1999) 5 एस. सी. सी. 50 : 102,132,
राम जानकीजी डीटीज़ बनाम **बिहार राज्य** ; 165,176

[1998] (1998) 4 एस. सी. सी. 409 :
सुप्रीम कोर्ट बार एसोसिएशन बनाम **भारत संघ** ; 675

[1997] (1997) 4 एस. सी. सी. 606 :
श्री आदि विशेश्वर आफ काशी विश्वनाथ टेंम्पल
बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ; 176,183

[1997] (1997) 43 डी. आर. जे. 270 :
न्यू मुल्तान टिम्बर स्टोर बनाम **रतन चंद सूद** ; 480

[1995] (1995) (सप्ली.) 1 एस. सी. सी. 485 :
बालाशंकर महाशंकर भट्टजी बनाम **चेरिटी कमिश्नर,**
गुजरात राज्य ; 591

[1995] (1995) 1 एस. सी. सी. 311 :
श्याम सुंदर प्रसाद बनाम **राजपाल सिंह** ; 244

[1994] (1994) 6 एस. सी. सी. 360 :
डा. एम. इस्माइल फारुकी बनाम **भारत संघ** ; 227,406,443

[1993] (1993) (सप्ली.) 2 एस. सी. सी. 433 :
एम. वी. एलिज़ाबेथ बनाम **हरवान इनवेस्टमेंट**
एंड ट्रेडिंग प्राइवेट लिमिटेड ; 96

[1993] (1993) 4 एस. सी. सी. 403 :
जत्तूराम बनाम **हकम सिंह** ; 774

[1992] (1992) 3 एस. सी. सी. 700 :
महाराष्ट्र राज्य बनाम **सुखदेव सिंह** ; 493

[1991] [1991] 1 डब्ल्यू. एल. आर. 1362 (2) :
बम्पर डेवलपमेंट कारपोरेशन लिमिटेड बनाम
कमिश्नर आफ पुलिस आफ द मेट्रोपुलिस ; 103

[1991] (1991) 4 एस. सी. सी. 584 :
यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन बनाम **भारत संघ** ; 675

[1991] (1991) 1 एस. सी. सी. 441 :
ओम प्रकाश बनाम **राम कुमार** ; 793

[1990] (1990) 2 एस. सी. सी. 22 :
बिमला बाई बनाम **हीरा लाल गुप्ता** ; 590

[1988] (1988) 4 एस. सी. सी. 452 :
झुम्मामल उर्फ **देवनदास** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ; 235

[1988] (1988) 4 एस. सी. सी. 302 :
उत्तर प्रदेश राज्य बनाम **कृष्ण गोपाल** ; 506

[1988] (1988) (सप्ली.) एस. सी. सी. 144 :
एम. एस. जगदंबल बनाम **साऊथ इंडियन एजुकेशन ट्रस्ट** ; 785

[1986] (1986) 1 एस. सी. सी. 445 :
मायारानी पुंज बनाम **सी. आई. टी.** ; 262

[1986] (1986) (सप्ली.) एस. सी. सी. 700 :
नवाब सरमीर उस्मान अली खान (मृतक) बनाम **कमिश्नर ऑफ वेल्थ टैक्स** ; 250

[1985] (1985) 1 एस. सी. सी. 427 :
रामसुमेर पुरी महंत बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ; 236

[1981] ए. आई. आर. 1981 एस. सी. 2198 :
गुलाम अब्बास और अन्य बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** ; 609

[1981] (1981) 2 एस. सी. सी. 790 :
कमिश्नर ऑफ वेल्थ टैक्स, अमृतसर बनाम **सुरेश सेठ** ; 261

[1980] (1980) 1 एस. सी. सी. 704 :
मुरारी लाल बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ; 493

[1979] (1979) 3 एस. सी. सी. 409 :
प्रोफुल्ला कोरोन रिक्विटै बनाम **सत्या कोरोन रिक्विटै** ; 131, 325,331

[1979] (1979) 4 एस. सी. सी. 274 :
सुपरिंटेंडेंट ऑफ लीगल एफेयर्स, पश्चिमी बंगाल राज्य बनाम **अनिल कुमार भुंजा** ; 243,752

[1979] ए. आई. आर. 1979 एस. सी. 1314 :
बद्रीनाथ बनाम **पुन्ना** ; 331

[1977] (1977) 2 एस. सी. सी. 181 :
नारायण प्रभु वेंकटेश्वरा प्रभु बनाम **नारायण प्रभु कृष्णा प्रभु** ; 442

[1975] (1975) 2 एस. सी. सी. 326 :
डा. एन. जी. दस्ताने बनाम **एस. दस्ताने** ; 506

[1973] (1973) 4 एस. सी. सी. 46 :
श्रीमती भगवान कौर बनाम **श्री महाराज कृष्ण शर्मा** ; 493

[1972] (1972) 2 एस. सी. सी. 890 :
बिहार राज्य बनाम **देवकरण नेन्शी** ; 260

[1971] ए. आई. आर. 1971 मद्रास 405 :
पिनचाई बनाम **कमिश्नर, हिंदू रिलीजियस एंड चेरिटेबल इनडाउमेंट्स बोर्ड** ; 176

[1971] ए. आई. आर. 1971 मद्रास 405 :
पिचाल उर्फ **चोकालिंगम पिल्लई** बनाम **कमिश्नर, हिंदू रिलीजियस एंड चेरिटेबल इनडाउमेंट्स एडमिनिस्ट्रेटिव डिपार्टमेंट** ; 182

[1971] (1971) 3 एस. सी. सी. 265 :
भारत संघ बनाम **सुधांशु मजूमदार** ; 645

[1969] (1969) 1 एस. सी. सी. 555 :
योगेन्द्रनाथ नास्कर बनाम **आय-कर आयुक्त, कलकत्ता** ; 104,118,130, 176,180,185

[1969] [1969] 1 एस. सी. आर. 624 :
कामराजू वेंकट कृष्ण राव बनाम **उप-कलक्टर, औंगोले** ; 130,149,176

[1968] ए. आई. आर. 1968 एस. सी. 1165 :
नायर सर्विस सोसाइटी लिमिटेड बनाम **के. सी. एलेक्जेंडर** ; 785

[1967] [1967] 2 एस. सी. आर. 618 :
विश्वनाथ बनाम **श्री ठाकुर राधा बल्लभजी** ; 343, 412, 424

[1966] ए. आई. आर. 1966 एस. सी. 1603 :
सारंगदेव पेरिया मातम बनाम **रामास्वामी गाउंडर (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधिगण** ; 423

[1966] [1966] (सप्ली.) एस. सी. आर. 436 :
महंत श्री श्रीनिवास रामानुज दास बनाम **सूरज नारायण दास** ; 590

[1966] ए. आई. आर. 1966 एस. सी. 359 :
देव कौर बनाम **शिव प्रसाद सिंह** ; 616,624

[1966] [1966] 1 एस. सी. आर. 357 :
पेमा चिबर बनाम **भारत संघ** ; 645

[1966] [1966] 3 एस. सी. आर. 242 :
शास्त्री यगनापुरुशद जी बनाम **मुलदास भुदरदास वैश्य** ; 130

[1966] [1966] (सप्ली.) एस. सी. आर. 270 :
वेमारेड्डी रामराघव रेड्डी बनाम **कोंडूरु सेशु रेड्डी** ; 340

[1965] ए. आई. आर. 1965 एस. सी. 1923 :
राजा मोहम्मद अमीर अहमद खान बनाम **म्युनिसिपल बोर्ड ऑफ सीतापुर** ; 249

[1965] ए. आई. आर. 1965 एस. सी. 1966 :
राय साहेब डा. गुरुदीत्तमल कापुर बनाम **महंत अमर दास चेला महंत रामशरण** ; 422

[1965] [1965] 1 एस. सी. आर. 96 :
आईडल आफ ठाकुरजी श्री गोविन्द्र देवजी महाराज, जयपुर बनाम **बोर्ड आफ रेवेन्यू, राजस्थान** ; 131

[1965] ए. आई. आर. 1965 एस. सी. 516 :
सी. पेरियास्वामी गाउंडर बनाम **सुंदरेसा अय्यर** ; 763

[1964] [1964] 6 एस. सी. आर. 461 :
गुजरात राज्य बनाम **वोरा फिडाली बदुरुद्दीन मीठीबारवाला** ; 645

[1964] ए. आई. आर. 1964 एस. सी. 529 :
शशी कुमार बनर्जी बनाम **सुबोध कुमार बनर्जी** ; 493

[1964] (1964) 2 ए. एन. डब्ल्यू. आर. 457 :
वैंकटरमणा मूर्थी बनाम **श्रीराम मंधीरम** ; 130,148

[1964] [1964] 8 एस. सी. आर. 239 :
मुरारी लाल बनाम **देवकरण** ; 671

[1962] [1962] (सप्ली.) 2 एस. सी. आर. 276 :
द पूहारी फकीर सदावर्थी आफ बॉडीपिपुतरम बनाम **द कमिश्नर्स, हिंदू रिलीजियस इनडाउमेंट्स** ; 130

[1962] ए. आई. आर. 1962 एस. सी. 1329 :
श्री श्री कालीमाता ठकुरानी ऑफ कालीघाट बनाम **जिबंधन मुखर्जी** ; 333,375

[1962] [1962] (सप्ली.) 1 एस. सी. आर. 405 :
प्रमोद चंद्र देब बनाम **उड़ीसा राज्य** ; 643

[1960] [1960] 1 एस. सी. आर. 773 :
नारायण भगवंत राव गोसावी बालाजीवाले बनाम **गोपाल विनायक गोसावी** ; 438

[1959] [1959] (सप्ली.) 2 एस. सी. आर. 583 :
महंत रामस्वरूप दास जी बनाम **एस. पी. शाही, स्पेशल ऑफिसर इंचार्ज आफ द हिंदू रिलीजियस ट्रस्ट** ; 132

[1959] [1959] (सप्ली.) 2 एस. सी. आर. 476 :
बालकृष्ण सावलराम पुजारी बाघमारे बनाम **श्री धानेश्वर महाराज संस्थान** ; 264

[1958] [1958] एस. सी. आर. 895 :
श्री वेंकटरमना देवारु बनाम **मैसूर राज्य** ; 792

[1957] [1957] एस. सी. आर. 488 :
गरीकपाटी वीराया बनाम **एन. सुबइय्या चौधरी** ; 441

[1957] [1957] एस. सी. आर. 195 :
पी. लक्ष्मी रेड्डी बनाम **एल. लक्ष्मी रेड्डी** ; 752

[1956] [1956] एस. सी आर. 756 :
देवकीनंदन बनाम **मुरलीधर** ; 117

[1956] ए. आई. आर. 1956 एस. सी. 713 :
फकीर मोहम्मद शाह बनाम **काजी फसीहुद्दीन अंसारी** ; 738

[1956] ए. आई. आर. 1956 एस. सी. 382 :
विक्रमा दास महंत बनाम **दौलत राम अस्थाना** ; 374,381

[1955] ए. आई. आर. 1955 एस. सी. 228 :
मनोहर दास मोहंता बनाम **चारु चंद्र पाल** ; 764

[1954] [1954] एस. सी. आर. 1005 :
कमिश्नर, हिंदू रिलीजियस इनडाउमेंट्स, मद्रास बनाम **श्री लक्ष्मीन्द्र तीर्थ स्वामियार ऑफ श्री शिरुर मठ** ; 253

[1954] ए. आई. आर. 1954 एस. सी. 316 :
श्री श्री श्री किशोर चंद्र सिंह देव बनाम **बाबू गणेश प्रसाद भगत** ; 493

[1954] [1954] एस. सी. आर. 277 :
सरस्वथी अम्माल बनाम **राजगोपाल अम्माल** ; 176,183

[1954] ए. आई. आर. 1954 पटना 196 :
गौरी शंकर बनाम **अम्बिका दत्त** ; 332

[1954] ए. आई. आर. 1954 एस. सी. 5 :
गोपाल कृष्णजी केतकर बनाम **मोहम्मद जफर मोहम्मद हुसैन** ; 379

[1953] [1953] एस. सी. आर. 1009 :
नामदेव लोकमन लोधी बनाम **नर्मदाबाई** ; 671

[1953] ए. आई. आर. 1953 एस. सी. 195 :
बुद्दू सत्यनारायण बनाम **कोंडूरु वेंकटपय्या** ; 763

[1951] [1951] एस. सी. आर. 1125 :
अंगूरबाला मुलिक बनाम **देवब्रत मुलिक** ; 252,331

[1951] [1951] एस. सी. आर. 277 :
श्रीनिवास रामकुमार बनाम **महावीर प्रसाद** ; 792

[1951] ए. आई. आर. 1951 एस. सी. 247 :
राजा ब्रज सुंदर देव बनाम **मोनी बहेरा** ; 762

[1951] (1951) पृष्ठ 35 :
बाटेर बनाम **बाटेर** ; 506

[1951] [1951] एस. सी. आर 534 :
सुखदेव सिंह बनाम **महाराजा बहादुर ऑफ गिधौर** ; 589

[1950] आई. एल. आर. 1950 मद्रास 799 :
टी. आर. के. रामास्वामी सरवाई बनाम **हिंदू धार्मिक विन्यास के लिए आयुक्तों का बोर्ड, मद्रास** ; 146

[1950] आई. एल. आर. 1950 मद्रास 799 :
टी. आर. के. रामास्वामी सरवाई बनाम **द बोर्ड आफ कमिश्नर्स फार द हिंदू रिलीजियस इनडाउमेंट्स, मद्रास** ; 130

[1950] ए. आई. आर. 1950 प्रिवी कौंसिल 56 :
लक्ष्मीधर मिश्रा बनाम **रंगलाल** ; 761

[1949] ए. आई. आर. 1949 मद्रास 721 :
शंकरनारायणन अय्यर बनाम **श्री पूवानानाथस्वामी मंदिर** ; 368

[1949] ए. आई. आर. 1949 उड़ीसा 1 :
राधाकृष्ण दास बनाम **राधारमण स्वामी** ; 421

[1949] ए. आई. आर. 1949 मद्रास 71 :
इलिप्पा नायकेन बनाम **के. लक्ष्मण नायकेन** ; 269

[1948] ए. आई. आर. 1948 पी. सी. 25 :
एन. शंकर नारायण पिल्लायन बनाम **बोर्ड आफ कमिश्नर्स फार द हिंदू रिलीजियस इनडाउमेंट्स, मद्रास** ; 760

[1947] (1947) 2 आल इंग्लैंड रिपोर्ट 372 :
मिलर बनाम **मिनिस्टर आफ पेंशन्स** ; 506

[1942] ए. आई. आर. 1942 कलकत्ता 99 :
तरित भूषण राय बनाम **श्री श्री ईश्वर श्रीधर शालिग्राम शिला ठाकुर** ; 347,348, 352,421

[1942] (1942-43) 70 आई. ए. 57 :
भाबातारिनी देवी बनाम **आशा लता देवी** ; 331

[1942] ए. आई. आर. 1942 पी. सी. 47 :
राजा राजगन महाराजा जगजीत सिंह बनाम **राजा परताब बहादुर सिंह** ; 618

[1940] ए. आई. आर. 1940 मद्रास 617 :
सुब्रह्मणिया गुरुक्कल बनाम **पूर्णप्रिया ए. श्रीनिवास राव साहेब** ; 366

[1940] ए. आई. आर. 1940 प्रिवी कौंसिल 3 :
चंदन मुल इंद्र कुमार बनाम **चिमन लाल गिरधर दास पारिख** ; 480

[1940] ए. आई. आर. 1940 पी. सी. 116 :
द मॉस्क मस्जिद शहीदगंज बनाम **शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक समिति, अमृतसर** ; 195,421, 424,753

[1939] (1939) 1 मद्रास ला जर्नल 134 :
द बोर्ड आफ कमिश्नर्स फार हिंदू रिलीजियस इनडाउमेंट्स, मद्रास बनाम **पिडागू नरसिम्हन** ; 130

[1939] (1939) 1 मद्रास ला जर्नल 134 :
आयुक्तों का बोर्ड, मद्रास बनाम **पिडूगू नरसिंघम** ; 144

[1937] ए. आई. आर. 1937 कलकत्ता 245 :
आशराबुल्ला बनाम **कियामतउल्ला हाज़ी चौधरी** ; 759

[1937] (1937) 41 सी. डब्ल्यू. एन. 1349 :
पंचकरी राय बनाम **अमोदे लाल वर्मन** ; 364

[1937] ए. आई. आर. 1937 बम्बई 238 :
गुरुशिदप्पा गुरुबप्पा भुसानूर बनाम **गुरुशिदप्पा चेनाविरप्पा चेतनी** ; 443

[1936] (1936-37) 64 आई. ए. 203 :
श्री श्री ईश्वरी भुवनेश्वरी ठकुरानी बनाम **ब्रोजोनाथ डे** ; 420

[1935] ए. आई. आर. 1935 इलाहाबाद 891 :
मीरु बनाम **राम गोपाल** ; 737,744

[1935] (1935-36) 63 आई. ए. 448 :
गणेश चंद्र धूर बनाम **लाल बिहारी धूर** ; 331

[1935] ए. आई. आर. 1935 मद्रास 483 :
पालानियंदी ग्रामीणी मणिकम्मल बनाम **मुरुगप्पा ग्रामीणी** ; 411

[1935] ए. आई. आर 1935 प्रिवी कौंसिल 44 :
महादेव प्रसाद सिंह बनाम **करिया भारती** ; 362,363,364

[1933] आई. एल. आर. (1933) 60 कलकत्ता 452 :
मनोहर मुखर्जी बनाम **भूपेन्द्र नाथ मुखर्जी** ; 330

[1933] (1933) 38 एल. डब्ल्यू. 306 (प्रिवी कौंसिल) : 170,265
सर सेठ हुकुम चंद्र बनाम **महाराज बहादुर सिंह** ; 257,618

[1933] ए. आई. आर. 1933 कलकत्ता 295 :
सुरेन्द्र कृष्ण राय बनाम **श्री श्री ईश्वर भुवनेश्वरी ठकुरानी** ; 420

[1933] ए. आई. आर. 1933 प्रिवी कौंसिल 183 :
कुमारावेलू चेतियार बनाम **पी. पी. रामास्वामी अय्यर** ; 442

[1933] ए. आई. आर. 1933 प्रिवी कौंसिल 75 :
महंत रामचरण दास बनाम **नौरंगी लाल** ; 362,364

[1931] (1931) 61 मद्रास ला जर्नल 285 :
मदुरा तिरुप्परनकुंद्रम बनाम **अलीखान साहेब** ; 130,141,142

[1930] ए. आई. आर. 1930 अवध 245 :
अब्दुल गफूर बनाम **रहमत अली** ; 735

[1926] ए. आई. आर. 1926 इलाहाबाद 392 :
छतरमल बनाम **पंचूमल** ; 418

[1926] ए. आई. आर. 1926 मद्रास 769 :
रमा रेड्डी बनाम **रंगादसान** ; 419

[1925] 1925 एस. सी. सी. ऑनलाइन प्रिवी कौंसिल 12 :
गुलाम रसूल खान बनाम **सेक्रेटरी आफ स्टेट फार इंडिया इन काउंसिल** ; 589

[1924] (1924-25) 52 आई. ए. 245 :
प्रमथ नाथ मुलिक बनाम **प्रद्युम्न कुमार मुलिक** ; 131

[1922] (1922) 36 सी. एल. जे. 478 :
राम ब्रहम चटर्जी बनाम **केदारनाथ बनर्जी** ; 140

[1922] (1922) 36 सी. एल. जे. 478 :
राम ब्रहम बनाम **केदारनाथ** ; 130

[1922] ए. आई. आर. 1922 प्रिवी कौंसिल 123 : 252,327,
विद्या वारुथी तीर्थ बनाम **बालूसामी अय्यर** ; 411,420

[1920] ए. आई. आर. 1920 अवध 258 :
रामपत बनाम **दुर्गा भारती** ; 130,139

[1919] आई. एल. आर. (1919) मद्रास 485 :
चोकलिंगम पिल्लई बनाम **मायंद्दी चेतियार** ; 758

[1918] (1918) 46 आई. सी. 119 :
फरजंद अली बनाम **जफ़र अली** ; 585

[1916] ए. आई. आर. 1916 पटना 146 :
सपनेश्वर पूजापंडा बनाम **रत्नाकर महापात्र** ; 176,183

[1915] आई. एल. आर. (1915) 39 बाम्बे 625 :
सेक्रेटरी आफ स्टेट ऑफ इंडिया इन कौंसिल बनाम **बाई राजबाई** ; 640

[1914] ए. आई. आर. 1914 कलकत्ता 200 :
मोहताब बहादुर बनाम **काली पदा चटर्जी** ; 116

[1913] आई. एल. आर. (1913) 40 कलकत्ता 297 :
द कोर्ट ऑफ वार्ड्स फॉर द प्रोपर्टी ऑफ मखदूम हसन बख्श बनाम **इलाही बख्श** ; 734

[1911] (1911) ए. सी. 623 :
हैरिस एंड अर्ल ऑफ चैस्टरफील्ड ; 758

[1909] आई. एल. आर. (1909-10) 37 कलकत्ता 128 :
भूपतिनाथ स्मृतितीर्थ बनाम **रामलाल मैत्रा** ; 113,130,176

[1909] (1909-10) 37 आई. ए. 147 :
महंत दामोदर दास बनाम **अधिकारी लखन दास** ; 417

[1904] आई. एल. आर. (1904) 27 मद्रास 435 :
विद्यापूर्णा तीर्थ स्वामी बनाम **विद्यानिधि तीर्थ स्वामी** ; 112,122

[1903] (1903-04) 31 आई. ए. 203 :
महाराजा जगदीन्द्र नाथ राय बहादुर बनाम **रानी हिमंता कुमारी देवी** ; 336,416

[1899] (1899) ए. सी. 572 :
थॉमस एंड जेम्स कुक बनाम **सर जेम्स स्प्रिंग** ; 638

[1891] (1891) 13 इलाहाबाद 573 :
राधा किशन बनाम **राज कौर** ; 667

[1888] आई. एल. आर. (1888) 12 बाम्बे 247 :
मनोहर गणेश ताम्बेकर बनाम **लक्ष्मीराम गोविंदराम** ; 107,130, 138,176

[1879] (1879-80) 7 आई. ए. 240 :
महारानी राजरूप कौर बनाम **सैय्यद अब्दुल हुसैन** ; 259,265

[1878] (1878-79) 6 आई. ए. 145 :
राजा किशन दत्त राम बनाम **राजा मुमताज अली खान** ; 668

[1875] (1875) 14 एल. बैंगलोर ला रिपोर्ट 450 :
पोसुन्नो कुमारी देबया बनाम **गोलाब चंद बाबू** ; 324

[1875] (1875) 23 डब्ल्यू. आर. 179 :
गाथाराम मिस्त्री बनाम **मूहिता कोचीन अत्तीह डोमुनी** ; 666

[1873] (1873-74) 1 आई. ए. 209 :
राजा मुट्टू रामलिंगा सेतुपति बनाम **पेरियानायागुम पिल्लई** ; 589

[1868] (1868) 9 डब्ल्यू. आर. 230, 232 :
डेगनबारी डाबी बनाम **ईशान चंदर सेन** ; 666

[1857] (1857-60) 7 मू. आई. ए. (476) :
सेक्रेटरी आफ स्टेट आफ इंडिया इन काउंसिल बनाम **कामाची ब्वाय साहाबा** । 636

क्रमश: शेष आगामी अंक में.....

संसद् के अधिनियम

आपदा प्रबन्धन अधिनियम, 2005

(2005 का अधिनियम संख्यांक 53)

[23 दिसंबर, 2005]

आपदाओं के प्रभावी प्रबन्धन और उससे संबंधित या उसके आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए अधिनियम

भारत गणराज्य के छप्पनवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

अध्याय 1

प्रारम्भिक

1. संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारम्भ – (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम आपदा प्रबन्धन अधिनियम, 2005 है ।

(2) इसका विस्तार सम्पूर्ण भारत पर है ।

(3) यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा जो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, नियत करे ; और इस अधिनियम के भिन्न-भिन्न उपबंधों के लिए और भिन्न-भिन्न राज्यों के लिए भिन्न-भिन्न तारीखें नियत की जा सकेंगी और किसी राज्य के संबंध में इस अधिनियम के किसी उपबंध के प्रारम्भ के प्रति किसी निर्देश का अर्थ यह लगाया जाएगा कि वह उस राज्य में उस उपबंध के प्रारम्भ के प्रतिनिर्देश है ।

2. परिभाषाएं – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ में अन्यथा अपेक्षित न हो :–

(क) "प्रभावित क्षेत्र" से देश का ऐसा क्षेत्र या भाग अभिप्रेत है जो किसी आपदा से प्रभावित है ;

(ख) "क्षमता निर्माण" के अन्तर्गत निम्नलिखित है –

(i) विद्यमान संसाधनों और अर्जित या सृजित किए जाने वाले संसाधनों की पहचान ;

(ii) उपखंड (i) के अधीन पहचान किए गए संसाधनों को अर्जित करना या सृजित करना ;

(iii) आपदाओं के प्रभावी प्रबन्धन के लिए कार्मिक का गठन और प्रशिक्षण तथा ऐसे प्रशिक्षण का समन्वयन ;

(ग) "केन्द्रीय सरकार" से भारत सरकार का ऐसा मंत्रालय या विभाग अभिप्रेत है जिसका आपदा प्रबन्धन पर प्रशासनिक नियंत्रण है ;

(घ) "आपदा" से किसी क्षेत्र में प्राकृतिक या मानवकृत कारणों से या दुर्घटना या उपेक्षा से उद्भूत ऐसी कोई महाविपत्ति, अनिष्ट, विपत्ति या घोर घटना अभिप्रेत है जिसका परिणाम जीवन की सारवान् हानि या मानवीय पीड़ाएं, या संपत्ति का नुकसान और विनाश या पर्यावरण का नुकसान या अवक्रमण है और ऐसी प्रकृति या परिमाण का है, जो प्रभावित क्षेत्र के समुदाय की सामना करने की क्षमता से परे है ;

(ङ) "आपदा प्रबन्धन" से योजना, संगठन, समन्वयन और कार्यान्वयन की निरन्तर और एकीकृत प्रक्रिया अभिप्रेत है जो निम्नलिखित के लिए आवश्यक या समीचीन हैं –

(i) किसी आपदा के खतरे या उसकी आशंका का निवारण ;

(ii) किसी आपदा या उसकी गंभीरता या उसके परिणामों के जोखिम का शमन या कमी ;

(iii) क्षमता निर्माण ;

(iv) किसी आपदा से निपटने के लिए तैयारियां ;

(v) किसी आपदा की आशंका की स्थिति या आपदा से तुरन्त बचाव ;

(vi) किसी आपदा के प्रभाव की गंभीरता या परिमाण का निर्धारण ;

(vii) निष्क्रमण, बचाव और राहत ;

(viii) पुनर्वास और पुनर्निर्माण ;

(च) "जिला प्राधिकरण" से धारा 25 की उपधारा (1) के अधीन गठित जिला आपदा प्रबन्धन प्राधिकरण अभिप्रेत है ;

(छ) "जिला योजना" से धारा 31 के अधीन जिले के लिए तैयार की गई आपदा प्रबन्धन योजना अभिप्रेत है ;

(ज) "स्थानीय प्राधिकारी" के अतंर्गत पंचायती राज संस्थाएं, नगरपालिकाएं, जिला बोर्ड, छावनी बोर्ड, नगर योजना प्राधिकारी या जिला परिषद् या किसी भी नाम से ज्ञात कोई अन्य निकाय या प्राधिकारी है जिनमें तत्समय विधि द्वारा किसी विनिर्दिष्ट स्थानीय क्षेत्र के भीतर आवश्यक सेवाएं प्रदान करने की नागरिक सेवाओं के नियंत्रण और प्रबन्धन सहित शक्तियां विनिहित की गई हैं ;

(झ) "शमन" से किसी आपदा या आपदा की आशंका की स्थिति के जोखिम, समाघात या प्रभाव को कम करने के लिए आशयित उपाय अभिप्रेत है ;

(ञ) "राष्ट्रीय प्राधिकरण" से धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन स्थापित राष्ट्रीय आपदा प्रबन्धन प्राधिकरण अभिप्रेत है ;

(ट) "राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति" से धारा 8 की उपधारा (1) के अधीन गठित राष्ट्रीय प्राधिकरण की कार्यकारिणी समिति अभिप्रेत है ;

(ठ) "राष्ट्रीय योजना" से धारा 11 के अधीन संपूर्ण देश के लिए तैयार की गई आपदा प्रबन्धन योजना अभिप्रेत है ;

(ड) "तैयारी" से किसी आपदा की आशंका की स्थिति या आपदा और उसके प्रभावों से निपटने के लिए तैयार रहने की स्थिति अभिप्रेत है ;

(ढ) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है ;

(ण) "पुनर्निर्माण" से आपदा के पश्चात् किसी संपत्ति का सन्निर्माण या प्रत्यावर्तन अभिप्रेत है ;

(त) "संसाधन" के अन्तर्गत जनशक्ति, सेवाएं, सामग्री और रसद भी हैं ;

(थ) "राज्य प्राधिकरण" से धारा 14 की उपधारा (1) के अधीन स्थापित राज्य आपदा प्रबन्धन प्राधिकरण अभिप्रेत है और उसके अंतर्गत उस धारा के अधीन गठित संघ राज्यक्षेत्र का आपदा प्रबंधन प्राधिकरण भी है ;

(द) "राज्य कार्यकारिणी समिति" से धारा 20 की उपधारा (1) के अधीन गठित राज्य प्राधिकरण की कार्यकारिणी समिति अभिप्रेत है ;

(ध) "राज्य सरकार" से राज्य सरकार का वह विभाग अभिप्रेत है जिसका आपदा प्रबंधन पर प्रशासनिक नियंत्रण है और उसके अंतर्गत राष्ट्रपति द्वारा संविधान के अनुच्छेद 239 के अधीन नियुक्त किया गया किसी संघ राज्यक्षेत्र का प्रशासक भी है ;

(न) "राज्य योजना" से धारा 23 के अधीन संपूर्ण राज्य के लिए तैयार की गई आपदा प्रबन्धन योजना अभिप्रेत है ।

अध्याय 2

राष्ट्रीय आपदा प्रबन्धन प्राधिकरण

3. राष्ट्रीय आपदा प्रबन्धन प्राधिकरण की स्थापना – (1) ऐसी तारीख से जिसे केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस निमित्त नियत करे, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण नाम से ज्ञात एक प्राधिकरण की स्थापना की जाएगी ।

(2) राष्ट्रीय प्राधिकरण में एक अध्यक्ष और नौ से अनधिक उतने सदस्य होंगे जितने केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित किए जाएं और जब तक कि नियमों में अन्यथा उपबंधित न किया जाए, राष्ट्रीय प्राधिकरण में निम्नलिखित होंगे :–

(क) भारत का प्रधानमंत्री, जो राष्ट्रीय प्राधिकरण का पदेन अध्यक्ष होगा ;

(ख) नौ से अनधिक ऐसे अन्य सदस्य जो राष्ट्रीय प्राधिकरण के अध्यक्ष द्वारा नामनिर्देशित किए जाएंगे ।

(3) राष्ट्रीय प्राधिकरण का अध्यक्ष उपधारा (2) के खंड (ख) के अधीन नामनिर्दिष्ट सदस्यों में से एक सदस्य को राष्ट्रीय प्राधिकरण के उपाध्यक्ष के रूप से पदाभिहित कर सकेगा ।

(4) राष्ट्रीय प्राधिकरण के सदस्यों की पदावधि और सेवा की शर्तें वे होंगी जो विहित की जाएं ।

4. राष्ट्रीय प्राधिकरण के अधिवेशन – (1) राष्ट्रीय प्राधिकरण का अधिवेशन जब भी आवश्यक हो, ऐसे समय और स्थान पर होगा, जिसे राष्ट्रीय प्राधिकरण का अध्यक्ष ठीक समझे ।

(2) राष्ट्रीय प्राधिकरण का अध्यक्ष राष्ट्रीय प्राधिकरण के अधिवेशनों की अध्यक्षता करेगा ।

(3) यदि राष्ट्रीय प्राधिकरण का अध्यक्ष किसी कारण से राष्ट्रीय प्राधिकरण के किसी अधिवेशन में उपस्थित होने में असमर्थ है तो राष्ट्रीय प्राधिकरण का उपाध्यक्ष उस अधिवेशन की अध्यक्षता करेगा ।

5. राष्ट्रीय प्राधिकरण के अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति – केन्द्रीय सरकार राष्ट्रीय प्राधिकरण को उतने अधिकारी, परामर्शदाता और कर्मचारी उपलब्ध कराएगी जितने वह राष्ट्रीय प्राधिकरण के कृत्यों के निर्वहन के लिए आवश्यक समझे ।

6. राष्ट्रीय प्राधिकरण की शक्तियां और कृत्य – (1) राष्ट्रीय प्राधिकरण इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, आपदा का समय पर और प्रभावी मोचन सुनिश्चित करने के लिए आपदा प्रबंधन के लिए नीतियां, योजनाएं और मार्गदर्शक सिद्धांत अधिकथित करने के लिए उत्तरदायी होगा ।

(2) उपधारा (1) में अन्तर्विष्ट उपबंधों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, राष्ट्रीय प्राधिकरण,–

(क) आपदा प्रबन्धन के संबंध में नीतियां अधिकथित कर सकेगा ;

(ख) राष्ट्रीय योजना का अनुमोदन कर सकेगा ;

(ग) भारत सरकार के मंत्रालयों या विभागों द्वारा राष्ट्रीय योजना के अनुसार तैयार की गई योजनाओं का अनुमोदन कर सकेगा ;

(घ) राज्य योजना तैयार करते समय राज्य प्राधिकरणों द्वारा अनुसरित किए जाने वाले मार्गदर्शक सिद्धांत अधिकथित कर सकेगा ;

(ङ) भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों या विभागों द्वारा अपनी विकास योजनाओं और परियोजनाओं में आपदा के निवारण या उसके प्रभावों के शमन के उपायों के एकीकरण के प्रयोजनों के लिए अपनाए जाने वाले मार्गदर्शक सिद्धांत अधिकथित कर सकेगा ;

(च) आपदा प्रबन्धन के लिए नीति और योजना के प्रवर्तन और कार्यान्वयन को समन्वित कर सकेगा ;

(छ) शमन के प्रयोजन के लिए निधियों की व्यवस्था करने की सिफारिश कर सकेगा ;

(ज) बड़ी आपदाओं से प्रभावित अन्य देशों को ऐसी सहायता उपलब्ध करा सकेगा, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा अवधारित की जाए ;

(झ) आपदा के निवारण या शमन या आपदा की आशंका की स्थिति या आपदा से निपटने के लिए तैयारी और क्षमता निर्माण के लिए ऐसे अन्य उपाय कर सकेगा, जिन्हें वह आवश्यक समझे ;

(ञ) राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन संस्थान के कार्यकरण के लिए विस्तृत नीतियां और मार्गदर्शक सिद्धांत अधिकथित कर सकेगा ।

(3) राष्ट्रीय प्राधिकरण के अध्यक्ष को, आपात की दशा में, राष्ट्रीय प्राधिकरण की सभी या किन्हीं शक्तियों का प्रयोग करने की शक्ति होगी किन्तु ऐसी शक्तियों का प्रयोग राष्ट्रीय प्राधिकरण द्वारा कार्योत्तर अनुसमर्थन के अध्यधीन होगा ।

7. राष्ट्रीय प्राधिकरण द्वारा सलाहकार समिति का गठन – (1) राष्ट्रीय प्राधिकरण आपदा प्रबंधन के विभिन्न पहलुओं पर सिफारिशें करने के लिए एक सलाहकार समिति का गठन कर सकेगा, जिसमें आपदा प्रबन्धन के क्षेत्र में विशेषज्ञ और राष्ट्रीय, राज्य या जिला स्तर पर आपदा प्रबन्धन में व्यावहारिक अनुभव रखने वाले विशेषज्ञ होंगे ।

(2) सलाहकार समिति के सदस्यों को ऐसे भत्तों का संदाय किया जाएगा जो केन्द्रीय सरकार द्वारा राष्ट्रीय प्राधिकरण के परामर्श से विहित किए जाएं ।

8. राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति का गठन – (1) केन्द्रीय सरकार, धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन अधिसूचना जारी किए जाने के ठीक पश्चात्, राष्ट्रीय प्राधिकरण को इस अधिनियम के अधीन उसके कृत्यों के निर्वहन में सहायता करने के लिए एक राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति का गठन करेगी ।

(2) राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति में निम्नलिखित सदस्य होंगे, अर्थात् :–

(क) भारत सरकार का ऐसा सचिव जो भारत सरकार के ऐसे मंत्रालय या विभाग का भारसाधक है, जिसका आपदा प्रबन्धन पर प्रशासनिक नियंत्रण है और जो पदेन अध्यक्ष होगा,

(ख) भारत सरकार के ऐसे सचिव जो भारत सरकार के ऐसे मंत्रालयों या विभागों के भारसाधक हैं जिनका कृषि, परमाणु ऊर्जा, रक्षा, पीने का जल प्रदाय, पर्यावरण और वन, वित्त (व्यय), स्वास्थ्य, विद्युत, ग्रामीण विकास, विज्ञान और प्रौद्योगिकी, अंतरिक्ष, दूरसंचार, शहरी विकास, जल संसाधन पर प्रशासनिक नियंत्रण है और चीफ्स आफ स्टाफ कमेटी के समन्वित सुरक्षा कर्मचारिवृन्द का प्रमुख, पदेन सदस्य ।

(3) राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति का अध्यक्ष राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति के किसी के अधिवेशन में भाग लेने के लिए केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार के किसी अन्य अधिकारी को आमंत्रित कर सकेगा और ऐसी शक्तियों का प्रयोग तथा ऐसे कृत्यों का निर्वहन कर सकेगा जो केन्द्रीय सरकार द्वारा राष्ट्रीय प्राधिकरण के परामर्श से विहित किए जाएं ।

(4) राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति द्वारा अपनी शक्तियों के प्रयोग और कर्तव्यों के निर्वहन में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया ऐसी होगी जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित की जाए ।

9. उपसमितियों का गठन – (1) राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति, जब भी वह अपने कृत्यों के प्रभावी निर्वहन के लिए आवश्यक समझे, एक या अधिक उपसमितियों का गठन कर सकेगी ।

(2) राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति, अपने सदस्यों में से किसी को उपधारा (1) में निर्दिष्ट उपसमिति का अध्यक्ष नियुक्त करेगी ।

(3) किसी उपसमिति के साथ विशेषज्ञ के रूप में सहयोजित किसी व्यक्ति को ऐसे भत्ते, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित किए जाएं, संदत्त किए जा सकेंगे ।

10. राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति की शक्तियां और कृत्य – (1) राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति, राष्ट्रीय प्राधिकरण को उसके कृत्यों के निर्वहन में सहायता करेगी और राष्ट्रीय प्राधिकरण की नीतियों तथा योजनाओं के कार्यान्वयन के लिए उत्तरदायी होगी तथा देश में आपदा प्रबंधन के प्रयोजन के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा जारी किए गए अनुदेशों का पालन सुनिश्चित करेगी ।

(2) उपधारा (1) अन्तर्विष्ट उपबंधों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति –

(क) आपदा प्रबन्धन के लिए समन्वय और मानिटरी निकाय के रूप में कार्य कर सकेगी ;

(ख) राष्ट्रीय योजना तैयार कर सकेगी जिनका राष्ट्रीय प्राधिकरण द्वारा अनुमोदन किया जाएगा ;

(ग) राष्ट्रीय नीति के कार्यान्वयन का समन्वय और उसे मानिटर कर सकेगी ;

(घ) भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों या विभागों और राज्य

प्राधिकरणों द्वारा आपदा प्रबन्धन योजना तैयार करने के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत अधिकथित कर सकेगी ;

(ङ) राष्ट्रीय प्राधिकरण द्वारा अधिकथित मार्गदर्शक सिद्धांतों के अनुसार अपनी आपदा प्रबन्धन योजना तैयार करने के लिए राज्य सरकारों और राज्य प्राधिकरणों को आवश्यक तकनीकी सहायता उपलब्ध करा सकेगी ;

(च) राष्ट्रीय योजना और भारत सरकार के मंत्रालयों या विभागों द्वारा तैयार की गई योजनाओं के कार्यान्वयन को मानिटर कर सकेगी ;

(छ) मंत्रालयों या विभागों द्वारा उनकी विकास योजनाओं और परियोजनाओं में आपदा निवारण और उसके शमन के लिए उपायों के एकीकरण के लिए राष्ट्रीय प्राधिकरण द्वारा अधिकथित मार्गदर्शक सिद्धांतों के कार्यान्वयन को मानिटर कर सकेगी ;

(ज) सरकार के विभिन्न मंत्रालयों या विभागों और अभिकरणों द्वारा किए जाने वाले शमन और तैयारी, उपायों के संबंध में मानिटर कर सकेगी, समन्वय कर सकेगी और निदेश दे सकेगी ;

(झ) किसी आपदा की आशंका की स्थिति या आपदा के मोचन के प्रयोजन के लिए सभी सरकारी स्तरों पर तैयारी का मूल्यांकन कर सकेगी, और जहां आवश्यक हो, ऐसी तैयारी में वृद्धि करने के लिए निदेश दे सकेगी ;

(ञ) विभिन्न स्तर के अधिकारियों, कर्मचारियों और स्वैच्छिक बचाव कर्मकारों के लिए आपदा प्रबन्धन के संबंध में विशेषीकृत प्रशिक्षण कार्यक्रम की योजना बना सकेगी और उनको समन्वित कर सकेगी ;

(ट) किसी आपदा की आशंका की स्थिति या आपदा की दशा में उसके मोचन के लिए समन्वय कर सकेगी ;

(ठ) भारत सरकार के सम्बद्ध मंत्रालयों या विभागों, राज्य सरकारों और राज्य प्राधिकरणों को उनके द्वारा किसी आपदा की आशंका की स्थिति या आपदा के मोचन के लिए किए जाने वाले उपायों के संबंध में मार्गदर्शक सिद्धांत अधिकथित कर सकेगी या निदेश दे सकेगी ;

(ड) सरकार के किसी विभाग या अभिकरण से राष्ट्रीय प्राधिकरण या राज्य प्राधिकरणों को ऐसे व्यक्ति या तात्विक संसाधन

जो आपातकालीन मोचन, बचाव और राहत के प्रयोजनों के लिए उसके पास उपलब्ध हैं, उपलब्ध कराने की अपेक्षा कर सकेगी ;

(ढ) भारत सरकार के मंत्रालयों या विभागों, राज्य प्राधिकरणों, कानूनी निकायों, अन्य सरकारी या गैर सरकारी संगठनों और आपदा प्रबन्धन में लगे अन्य व्यक्तियों को सलाह दे सकेगी, सहायता प्रदान कर सकेगी और उनके क्रियाकलापों का समन्वय कर सकेगी ;

(ण) राज्य प्राधिकरणों और जिला प्राधिकरणों को इस अधिनियम के अधीन उनके कृत्यों को करने के लिए आवश्यक तकनीकी सहायता उपलब्ध करा सकेगी या उन्हें सलाह दे सकेगी ;

(त) आपदा प्रबन्धन के संबंध में साधारण शिक्षा और जागरूकता का संवर्धन कर सकेगी ; और

(थ) ऐसे अन्य कृत्य कर सकेगी जो राष्ट्रीय प्राधिकरण उससे करने की अपेक्षा करे ।

11. राष्ट्रीय योजना – (1) संपूर्ण देश के लिए आपदा प्रबन्धन के लिए राष्ट्रीय योजना नामक एक योजना तैयार की जाएगी ।

(2) राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति द्वारा राष्ट्रीय नीति को ध्यान में रखते हुए और राज्य सरकारों तथा आपदा प्रबन्धन के क्षेत्र में विशेषज्ञ निकायों या संगठनों के परामर्श से राष्ट्रीय योजना तैयार की जाएगी जिसका राष्ट्रीय प्राधिकरण द्वारा अनुमोदन किया जाएगा ।

(3) राष्ट्रीय योजना में निम्नलिखित होंगे –

(क) आपदाओं के निवारण या उनके प्रभाव के शमन के लिए किए जाने वाले उपाय ;

(ख) विकास योजनाओं में शमन संबंधी उपायों के एकीकरण के लिए किए जाने वाले उपाय ;

(ग) किसी आपदा की आशंका की स्थिति या आपदा का प्रभावी रूप से मोचन करने के लिए तैयारी और क्षमता निर्माण के लिए किए जाने वाले उपाय ;

(घ) खण्ड (क), खण्ड (ख) और खण्ड (ग) में विनिर्दिष्ट उपायों की बाबत भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों या विभागों की भूमिका और उत्तरदायित्व ।

(4) राष्ट्रीय योजना का वार्षिक पुनर्विलोकन किया जाएगा और उसे अद्यतन किया जाएगा ।

(5) केन्द्रीय सरकार द्वारा राष्ट्रीय योजना के अधीन किए जाने वाले उपायों के वित्तपोषण के लिए समुचित उपबंध किए जाएंगे ।

(6) उपधारा (2) और उपधारा (4) में निर्दिष्ट राष्ट्रीय योजना की प्रतियां भारत सरकार के मंत्रालयों या विभागों को उपलब्ध कराई जाएंगी और ऐसे मंत्रालय या विभाग राष्ट्रीय योजना के अनुसार अपनी स्वयं की योजनाएं तैयार करेंगे ।

12. राहत के न्यूनतम मानकों के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत – राष्ट्रीय प्राधिकरण, आपदा से प्रभावित व्यक्तियों को उपलब्ध कराई जाने वाली राहत के न्यूनतम मानकों के लिए मार्गदर्शक सिद्धांतों की सिफारिश करेगा जिनके अंतर्गत निम्नलिखित होंगे, –

(i) राहत कैंपों में आश्रयस्थल, खाद्य, पीने का पानी, चिकित्सा सुविधा और स्वच्छता के संबंध में उपलब्ध कराई जाने वाली न्यूनतम अपेक्षाएं ;

(ii) विधवाओं और अनाथों के लिए किए जाने वाले विशेष उपबंध ;

(iii) जीवन की हानि मद्दे अनुग्रह सहायता और मकानों को नुकसान मद्दे सहायता तथा जीविका के साधनों की बहाली के लिए सहायता ;

(iv) ऐसी अन्य सहायता जो आवश्यक हो ।

13. ऋण प्रतिदाय आदि में राहत – राष्ट्रीय प्राधिकरण, प्रचंड मात्रा की आपदाओं की दशा में आपदा से प्रभावित व्यक्तियों को ऋणों के प्रतिदाय में राहत या ऐसे रियायती निबंधनों पर, जो उचित हों, नए ऋण देने की सिफारिश कर सकेगा ।

अध्याय 3

राज्य आपदा प्रबंधन प्राधिकरण

14. राज्य आपदा प्रबंधन प्राधिकरण की स्थापना – (1) प्रत्येक राज्य सरकार, धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन अधिसूचना जारी किए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा राज्य के लिए ऐसे

नाम से जो राज्य सरकार की अधिसूचना में विनिर्दिष्ट किया जाए राज्य आपदा प्रबंधन प्राधिकरण की स्थापना करेगी ।

(2) राज्य प्राधिकरण में एक अध्यक्ष और नौ से अनधिक उतने सदस्य होंगे जितने राज्य सरकार द्वारा विहित किए जाएं और जब तक कि नियमों में अन्यथा उपबंध न किया जाए, राज्य प्राधिकरण में निम्नलिखित सदस्य होंगे, अर्थात् :–

(क) राज्य का मुख्यमंत्री जो पदेन अध्यक्ष होगा ;

(ख) आठ से अनधिक ऐसे अन्य सदस्य जो राज्य प्राधिकरण के अध्यक्ष द्वारा नामनिर्दिष्ट किए जाएंगे ;

(ग) राज्य कार्यकारिणी समिति का अध्यक्ष, पदेन ।

(3) राज्य प्राधिकरण का अध्यक्ष उपधारा (2) के खंड (ख) के अधीन नामनिर्दिष्ट सदस्यों में से एक सदस्य को राज्य प्राधिकरण के उपाध्यक्ष के रूप में पदाभिहित कर सकेगा ।

(4) राज्य कार्यकारिणी समिति का अध्यक्ष राज्य प्राधिकरण का पदेन मुख्य कार्यकारी अधिकारी होगा :

परंतु ऐसे संघ राज्यक्षेत्र की दशा में, दिल्ली संघ राज्यक्षेत्र को छोड़कर, जिसकी विधान सभा है, मुख्यमंत्री इस धारा के अधीन स्थापित प्राधिकरण का अध्यक्ष होगा और अन्य संघ राज्यक्षेत्रों की दशा में, उपराज्यपाल या प्रशासक उस प्राधिकरण का अध्यक्ष होगा :

परंतु यह और कि दिल्ली संघ राज्यक्षेत्र का उपराज्यपाल राज्य प्राधिकरण का अध्यक्ष होगा और उसका मुख्यमंत्री राज्य प्राधिकरण का उपाध्यक्ष होगा ।

(5) राज्य प्राधिकरण के सदस्यों की पदावधि और सेवा शर्तें वे होंगी जो विहित की जाएं ।

15. राज्य प्राधिकरण के अधिवेशन – (1) राज्य प्राधिकरण का अधिवेशन जब भी आवश्यक हो, ऐसे समय और स्थान पर होगा जिसे राज्य प्राधिकरण का अध्यक्ष ठीक समझे ।

(2) राज्य प्राधिकरण का अध्यक्ष राज्य प्राधिकरण के अधिवेशनों की अध्यक्षता करेगा ।

(3) यदि राज्य प्राधिकरण का अध्यक्ष किसी कारण से राज्य प्राधिकरण के किसी अधिवेशन में उपस्थित होने में असमर्थ है तो राज्य प्राधिकरण का उपाध्यक्ष उस अधिवेशन की अध्यक्षता करेगा ।

16. राज्य प्राधिकरण के अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति – राज्य सरकार, राज्य प्राधिकरण को उतने अधिकारी, परामर्शदाता और कर्मचारी उपलब्ध कराएगी जितने वह राज्य प्राधिकरण के कृत्यों के निर्वहन के लिए आवश्यक समझे ।

17. राज्य प्राधिकरण द्वारा सलाहकार समिति का गठन – (1) राज्य प्राधिकरण, जब भी वह आवश्यक समझे, आपदा प्रबंधन के विभिन्न पहलुओं पर सिफारिशें करने के लिए एक सलाहकार समिति का गठन कर सकेगा जिसमें आपदा प्रबंधन के क्षेत्र में विशेषज्ञों और आपदा प्रबंधन का व्यावहारिक अनुभव रखने वाले विशेषज्ञ होंगे ।

(2) सलाहकार समिति के सदस्यों को ऐसे भत्तों का संदाय किया जाएगा जो राज्य सरकार द्वारा विहित किए जाएं ।

18. राज्य प्राधिकरण की शक्तियां और कृत्य – (1) राज्य प्राधिकरण इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, राज्य में आपदा प्रबंधन के लिए नीतियां और योजनाएं अधिकथित करने के लिए उत्तरदायी होगा ।

(2) उपधारा (1) में अंतर्विष्ट उपबंधों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना राज्य प्राधिकरण,–

(क) राज्य आपदा प्रबंधन नीति अधिकथित कर सकेगा ;

(ख) राष्ट्रीय प्राधिकरण द्वारा अधिकथित मार्गदर्शक सिद्धांतों के अनुसार राज्य योजना का अनुमोदन कर सकेगा ;

(ग) राज्य सरकार के विभागों द्वारा तैयार की गई आपदा प्रबंधन योजनाओं का अनुमोदन कर सकेगा ;

(घ) राज्य सरकार के विभागों द्वारा अपनी विकास योजनाओं और परियोजनाओं में आपदाओं के निवारण और शमन के उपायों के एकीकरण के प्रयोजनों के लिए अपनाए जाने वाले मार्गदर्शक सिद्धांत अधिकथित कर सकेगा और उसके लिए आवश्यक तकनीकी सहायता करा सकेगा ;

(ङ) राज्य योजना के कार्यान्वयन को समन्वित कर सकेगा ;

(च) शमन और तैयारी उपायों के लिए निधियों की व्यवस्था करने की सिफारिश कर सकेगा ;

(छ) राज्य के विभिन्न विभागों के विकास योजनाओं का पुनर्विलोकन कर सकेगा और यह सुनिश्चित कर सकेगा कि निवारण और शमन के उपाय उसमें एकीकृत किए गए हैं ;

(ज) राज्य सरकार के विभागों द्वारा शमन, क्षमता निर्माण और तैयारी के लिए किए जा रहे उपायों का पुनर्विलोकन कर सकेगा और ऐसे मार्गदर्शक सिद्धांत जारी कर सकेगा जो आवश्यक हों ।

(3) राज्य प्राधिकरण के अध्यक्ष को, आपात की दशा में, राज्य प्राधिकरण की सभी या किन्हीं शक्तियों का प्रयोग करने की शक्ति होगी किन्तु ऐसे शक्तियों का प्रयोग राज्य प्राधिकरण के कार्योत्तर अनुसमर्थन के अधीन रहते हुए होगा ।

19. राज्य प्राधिकरण द्वारा राहत के न्यूनतम मानक के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत – राज्य प्राधिकरण राज्य में आपदा से प्रभावित व्यक्तियों को राहत के मानकों का उपबंध करने के लिए विस्तृत मार्गदर्शक सिद्धांत अधिकथित करेगा :

परंतु ऐसे मानक किसी भी दशा में राष्ट्रीय प्राधिकरण द्वारा इस संबंध में अधिकथित मार्गदर्शक सिद्धांतों में न्यूनतम मानकों से कम नहीं होंगे ।

20. राज्य कार्यकारिणी समिति का गठन – (1) राज्य सरकार, धारा 14 की उपधारा (1) के अधीन अधिसूचना जारी किए जाने के ठीक पश्चात् राज्य प्राधिकरण को इस अधिनियम के अधीन राज्य प्राधिकरण द्वारा अधिकथित मार्गदर्शक सिद्धांतों के अनुसार राज्य प्राधिकरण के कृत्यों के निर्वहन में सहायता करने और कार्य का समन्वय करने के लिए तथा राज्य सरकार द्वारा जारी किए गए निदेशों का अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए एक राज्य कार्यकारिणी समिति का गठन करेगी ।

(2) राज्य कार्यकारिणी समिति में निम्नलिखित सदस्य होंगे, अर्थात् :–

(क) राज्य सरकार का मुख्य सचिव, जो पदेन अध्यक्ष होगा ;

(ख) राज्य सरकार के ऐसे विभागों के चार सचिव जिन्हें राज्य सरकार ठीक समझे, पदेन ।

(3) राज्य कार्यकारिणी समिति का अध्यक्ष ऐसी शक्तियों का प्रयोग और ऐसे कृत्यों का निर्वहन करेगा जो राज्य सरकार द्वारा विहित किए जाएं और ऐसी अन्य शक्तियों का प्रयोग और कृत्यों का निर्वहन करेगा जो उसे राज्य प्राधिकरण द्वारा प्रत्यायोजित किए जाएं ।

(4) राज्य कार्यकारिणी समिति द्वारा अपनी शक्तियों के प्रयोग और अपने कृत्यों के निर्वहन में अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया वह होगी जो राज्य सरकार द्वारा विहित की जाए ।

21. राज्य कार्यकारिणी समिति द्वारा उपसमितियों का गठन – (1) राज्य कार्यकारिणी समिति जब भी वह अपने कृत्यों के दक्षतापूर्ण निर्वहन के लिए आवश्यक समझे, एक या अधिक उपसमितियों का गठन कर सकेगी ।

(2) राज्य कार्यकारिणी समिति अपने सदस्यों में से किसी को उपधारा (1) में निर्दिष्ट उपसमिति का अध्यक्ष नियुक्त कर सकेगी ।

(3) किसी उपसमिति के साथ विशेषज्ञ के रूप में सहयोजित किसी व्यक्ति को ऐसे भत्ते जो राज्य सरकार द्वारा विहित किए जाएं, संदत्त किए जा सकेंगे ।

22. राज्य कार्यकारिणी समिति के कृत्य – (1) राज्य कार्यकारिणी समिति राष्ट्रीय योजना और राज्य योजना के कार्यान्वयन के लिए उत्तरदायी होगी और राज्य में आपदा प्रबंधन के लिए समन्वय करने और मानिटरी करने वाले निकाय के रूप में कार्य करेगी ।

(2) उपधारा (1) के उपबंधों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, राज्य कार्यकारिणी समिति –

(क) राष्ट्रीय नीति, राष्ट्रीय योजना और राज्य योजना के कार्यान्वयन का समन्वय और मानिटरी पर सकेगी ;

(ख) आपदाओं के विभिन्न रूपों से राज्य के विभिन्न भागों की भेद्यता की परीक्षा कर सकेगी और उनके निवारण या शमन के लिए किए जाने वाले उपायों को विनिर्दिष्ट कर सकेगी ;

(ग) राज्य सरकार के विभागों और जिला प्राधिकरणों द्वारा आपदा प्रबंधन योजनाओं को तैयार किए जाने के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत अधिकथित कर सकेगी ;

(घ) राज्य सरकार के विभागों और जिला प्राधिकरणों द्वारा तैयार की गई आपदा प्रबंधन योजनाओं के कार्यान्वयन की मानिटरी कर सकेगी ;

(ङ) विभागों द्वारा अपनी विकास योजनाओं और परियोजनाओं में आपदाओं के निवारण और शमन के उपायों के एकीकरण के लिए राज्य प्राधिकरण द्वारा अधिकथित मार्गदर्शक सिद्धांतों के कार्यान्वयन की मानिटरी कर सकेगी ;

(च) किसी आपदा की आशंका की स्थिति या आपदा के मोचन के लिए सभी सरकारी और गैर सरकारी स्तरों पर तैयारी का मूल्यांकन कर सकेगी और जहां आवश्यक हो, ऐसी तैयारियों में वृद्धि करने के लिए निदेश दे सकेगी ;

(छ) किसी आपदा की आशंका की स्थिति या आपदा की दशा में मोचन का समन्वय कर सकेगी ;

(ज) किसी आपदा की आशंका की स्थिति या आपदा के मोचन में किए जाने वाले उपायों के संबंध में राज्य सरकार के किसी विभाग या राज्य में किसी अन्य प्राधिकरण या निकाय को निदेश दे सकेगी ;

(झ) आपदाओं के ऐसे रूपों के संबंध में, जिनसे राज्य के विभिन्न भाग भेद्य हैं, सामान्य शिक्षा, जागरूकता और समुदाय प्रशिक्षण का संवर्धन कर सकेगी और ऐसे उपाय, जो आपदा के निवारण और ऐसी आपदा के शमन और मोचन के लिए ऐसे समुदाय द्वारा किए जा सकेंगे ;

(ञ) राज्य सरकार के विभागों, जिला प्राधिकरणों, कानूनी निकायों और आपदा प्रबंधन में लगे अन्य सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों को सलाह दे सकेगी, उनके क्रियाकलापों में सहायता कर सकेगी और उनका समन्वय कर सकेगी ;

(ट) उनके कृत्यों को प्रभावी रूप से कार्यान्वित करने के लिए जिला प्राधिकरणों और स्थानीय प्राधिकरणों को उनके कृत्यों का प्रभावी रूप से निर्वहन करने में आवश्यक तकनीकी सहायता प्रदान कर सकेगी या सलाह दे सकेगी ;

(ठ) आपदा प्रबंधन से संबंधित सभी वित्तीय विषयों के संबंध में राज्य सरकार को सलाह दे सकेगी ;

(ड) राज्य में किसी स्थानीय क्षेत्र में सन्निर्माण की परीक्षा कर सकेगी और यदि उसकी यह राय है कि आपदा के निवारण के लिए ऐसे सन्निर्माण के लिए अधिकथित मानकों का अनुसरण नहीं किया जा रहा है या नहीं किया गया है तो, यथास्थिति, जिला प्राधिकरण या स्थानीय प्राधिकरण को ऐसी कार्रवाई करने के लिए निदेश दे सकेगी जो ऐसे मानकों के अनुपालन को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक हो ;

(ढ) राष्ट्रीय प्राधिकरण को आपदा प्रबंधन के विभिन्न पहलुओं से संबंधित जानकारी उपलब्ध करा सकेगी ;

(ण) राज्य स्तर की मोचन योजनाओं और मार्गदर्शक सिद्धांतों को अधिकथित, पुनर्विलोकित और अद्यतन कर सकेगी और यह सुनिश्चित कर सकेगी कि जिला स्तर की योजनाएं तैयार, पुनर्विलोकित और अद्यतन की गई हैं ;

(त) यह सुनिश्चित कर सकेगी कि संसूचना तंत्र ठीक है और आपदा प्रबंधन कवायद कालिकत: की जाती हैं ;

(थ) ऐसे अन्य कृत्य कर सकेगी जो उसे राज्य प्राधिकरण द्वारा समनुदेशित किए जाएं या जैसा वह आवश्यक समझे ।

23. राज्य योजना – (1) प्रत्येक राज्य के लिए आपदा प्रबंधन के लिए एक योजना होगी जिसे राज्य आपदा प्रबंधन योजना कहा जाएगा ।

(2) राज्य कार्यकारिणी समिति द्वारा, राष्ट्रीय प्राधिकरण द्वारा अधिकथित मार्गदर्शक सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए और स्थानीय प्राधिकरणों तथा जिला प्राधिकरणों और जनता के प्रतिनिधियों के साथ ऐसा परामर्श करने के पश्चात् जिसे राज्य कार्यकारिणी समिति ठीक समझे, राज्य योजना तैयार की जाएगी ।

(3) राज्य कार्यकारिणी समिति द्वारा उपधारा (2) के अधीन तैयार की गई राज्य योजना का राज्य प्राधिकरण द्वारा अनुमोदन किया जाएगा ।

(4) राज्य योजना के अंतर्गत निम्नलिखित होगा,–

(क) आपदा के विभिन्न रूपों से राज्य के विभिन्न भागों की भेद्यता ;

(ख) आपदाओं के निवारण और शमन के लिए अपनाए जाने वाले उपाय ;

(ग) ऐसी रीति जिसमें शमन के उपाय, विकास योजनाओं और परियोजनाओं के साथ एकीकृत किए जाएंगे ;

(घ) क्षमता निर्माण और तैयारी के लिए किए जाने वाले उपाय ;

(ङ) ऊपर खंड (ख), खंड (ग) और खंड (घ) में विनिर्दिष्ट उपायों के संबंध में राज्य सरकार के प्रत्येक विभाग की भूमिकाएं और उत्तरदायित्व ;

(च) किसी आशंकित आपदा स्थिति या आपदा के मोचन में राज्य सरकार के विभिन्न विभागों की भूमिकाएं और दायित्व ।

(5) राज्य योजना प्रतिवर्ष पुनर्विलोकित और अद्यतन की जाएगी ।

(6) राज्य योजना के अधीन किए जाने वाले उपायों के वित्तपोषण के लिए राज्य सरकार द्वारा समुचित उपबंध किए जाएंगे ।

(7) उपधारा (2) और उपधारा (5) में निर्दिष्ट राज्य योजना की प्रतियां राज्य सरकार के विभागों को उपलब्ध कराई जाएंगी और ऐसे विभाग राज्य योजना के अनुसार अपनी योजनाएं तैयार करेंगे ।

24. आपदा की आशंका की दशा में राज्य कार्यकारिणी समिति की शक्तियां और कृत्य – आपदा द्वारा प्रभावित समुदाय की सहायता और संरक्षा करने के प्रयोजनों के लिए या ऐसे समुदायों को राहत प्रदान करने के लिए या किसी आपदा की आशंका की स्थिति का निवारण करने या उसके विनाश का प्रत्युपाय करने या उसके प्रभावों से निपटने के प्रयोजन के लिए राज्य कार्यकारिणी समिति,–

(क) संवेदनशील या प्रभावित क्षेत्रों को या वहां से उसके भीतर वाहन यातायात को नियंत्रित और निर्बन्धित कर सकेगी ;

(ख) किसी संवेदनशील या प्रभावित क्षेत्र में किसी व्यक्ति के प्रवेश, उसके भीतर, उसके आने-जाने और वहां से प्रस्थान को नियंत्रित और निर्बन्धित कर सकेगी ;

(ग) मलबे को हटा सकेगी, खोज कर सकेगी और बचाव कार्य कर सकेगी ;

(घ) राष्ट्रीय प्राधिकरण और राज्य प्राधिकरण द्वारा अधिकथित मानकों के अनुसार आश्रय, खाद्य, पेयजल, आवश्यक रसद, स्वास्थ्य देखभाल और सेवाएं उपलब्ध करा सकेगी ;

(ङ) राज्य सरकार के संबंधित विभाग और राज्य की स्थानीय सीमाओं के भीतर किसी जिला प्राधिकरण या अन्य प्राधिकरण को जीवन या संपत्ति को बचाने के लिए बचाव, निष्क्रमण या तत्काल राहत पहुंचाने के ऐसे उपाय करने या कार्रवाई करने के निदेश दे सकेगी ; जो उसकी राय में आवश्यक हों ;

(च) राज्य सरकार के किसी विभाग या अन्य किसी निकाय या प्राधिकरण से या किन्हीं सुसंगत संसाधनों के भारसाधक व्यक्ति से आपात मोचन, बचाव और राहत के प्रयोजनों के लिए संसाधन उपलब्ध कराने की अपेक्षा कर सकेगी ;

(छ) आपदाओं के क्षेत्र में विशेषज्ञों और परामर्शियों से बचाव और राहत के लिए सलाह और सहायता देने की अपेक्षा कर सकेगी ;

(ज) जब भी अपेक्षित हो, किसी प्राधिकरण या व्यक्ति से सुख-सुविधाओं के उपयोग को अनन्य रूप से या अधिमानत: उपाप्त कर सकेगी ;

(झ) अस्थायी पुलों या अन्य आवश्यक संरचनाओं का सन्निर्माण कर सकेगी और ऐसी असुरक्षित संरचनाओं को ध्वस्त कर सकेगी जो जनता के लिए परिसंकटमय हों ;

(ञ) यह सुनिश्चित कर सकेगी कि गैर-सरकारी संगठन साम्यापूर्ण रूप में या अविभेदकारी रीति में अपने क्रियाकलाप करें ;

(ट) किसी आपदा की आशंका की स्थिति या आपदा से निपटने के लिए जनता को जानकारी दे सकेगी ;

(ठ) ऐसे उपाय कर सकेगी जिनके लिए केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार इस संबंध में निदेश दे या ऐसे अन्य उपाय कर सकेगी जो किसी आपदा की आशंका की स्थिति या आपदा में अपेक्षित या वांछित हों ।

क्रमशः आगामी अंक में .....

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रयार्थ उपलब्ध पाठ्य पुस्तकों की सूची

क्रम सं.	पुस्तक का नाम, लेखक का नाम एवं प्रकाशन वर्ष (संस्करण)	पृष्ठ सं.	पुस्तक की मूल मुद्रित कीमत (रुपयों में)	विशेष छूट के पश्चात् पुस्तक की कीमत (रुपयों में)
1.	विधि शास्त्र – डा. शिवदत्त शर्मा – 2004	501	580	145
2.	निर्णय लेखन – न्या. भगवती प्रसाद बेरी – 2019	190	175	–
3.	भारत का सांविधानिक इतिहास - (103वां संविधान संशोधन तक) - श्री चन्द्रशेखर मिश्र	340	325	–
4.	भारतीय संविधान के प्रमुख तत्व - डा. प्रद्युम्न कुमार त्रिपाठी	906	750	–

अन्य महत्वपूर्ण प्रकाशन

1. निर्वाचन विधि निर्देशिका (भाग-1 तथा भाग-2)	नवीनतम संस्करण, 2024	कीमत रु. 2,500
2. भारत का संविधान (पाकेट एडीशन)	2024	कीमत रु. 325

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
Website : www.lawmin.nic.in
Email : am.vsp-molj@gov.in

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 16288/68

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं - **उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका** और **उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका** का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित महत्वपूर्ण निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः सिविल और दांडिक के चयनित महत्वपूर्ण निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत क्रमशः ₹ 2,100/-, ₹ 1,300/- और ₹ 1,300/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें । साथ ही यह भी अवगत कराया जाता है कि केन्द्रीय अधिनियमों, विधि शब्दावली, विधि पत्रिकाओं और अन्य विधि प्रकाशनों को ऑन लाइन **https://bharatkosh.gov.in/product/product** पर प्राप्त किया जा सकता है ।

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विक्रेता : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in